Regd. No. A–1154

वर्ष ७, खण्ड १] जनवरी, १९२९ [संख्या ३, पूर्ण संख्या ७५



सम्पादक :—

श्रीरामरखसिंह सहगल

वार्षिक चन्दा ६॥)
छः माही ३॥)

विदेश का चन्दा ८॥)
इस अङ्क का मूल्य ॥)

Printed at the FINE ART PRINTING COTTAGE, Twenty-eight, Elgin Road, Allahabad.

Regd. No. A–1154

वर्ष ७, खण्ड १]   जनवरी, १९२९ [संख्या ३, पूर्ण संख्या ७५



सम्पादक :—

श्रीरामरखसिंह सहगल

वार्षिक चन्दा ६॥)
छः माही ३॥)

विदेश का चन्दा ८॥)
इस अङ्क का मूल्य ॥)

Printed at the FINE ART PRINTING COTTAGE, Twenty-eight, Elgin Road, Allahabad.

चुनी हुई पुस्तकें ! खास रियायत !!

हिन्दी-साहित्य की विख्यात पुस्तकें

स्थायी ग्राहकों के साथ ख़ास रियायत

'चाँद' तथा विद्याविनोद-ग्रन्थमाला के स्थायी ग्राहकों को (जो अपना ग्राहक-नम्बर स्पष्ट लिखेंगे, इसे स्मरण रखिए) अपने यहाँ की प्रकाशित पुस्तकों पर चार आना फ़ी रुपया कमीशन तथा अन्य प्रकाशकों की पुस्तकों पर एक आना फ़ी रुपया कमीशन काट कर पुस्तकें भेज दी जावेंगी। इस कमीशन के अलावा जो लोग १५) रु० की पुस्तकें अथवा इससे अधिक का ऑर्डर ३० मार्च तक देंगे, उनसे डाक अथवा रेल से भेजने का व्यय भी नहीं लिया जायगा। हमें आशा है, पाठक-पाठिकाएँ इस रियायत से स्वयं ही लाभ न उठाएँगे, वरन् इष्ट-मित्रों, सखी-सहेलियों को भी पुस्तकें मँगाने और उपहार-स्वरूप इन्हें वितीर्ण करने की सलाह देकर, हिन्दी की सेवा के अतिरिक्त हमारा उत्साह बढ़ावेंगे !

—व्यवस्थापक 'चाँद'

स्त्रियोपयोगी

		आदर्श लीला	१॥)	गृहिणी-भूषण	॥=)
		सती बिपुला	२।)	सती सीमन्तिनी	॥)
संसार की असभ्य जातियों की स्त्रियाँ	२॥)	पार्वती	२)	पतिव्रता मन्सा	।)
		" (रेशमी जिल्द)	२॥)	सती सुलक्षणा	।)
देवी जोन	।=)	सती मदालसा	१॥)	सती सुलोचना	१।)
सती सारन्धा	॥=)	चन्द्रकला	१॥)	पतिव्रता रुक्मिणी	॥=)
विदुषी खना	२॥)	सती रुक्मिणी	२)	दाम्पत्य विज्ञान	२)
सती शैव्या (उपन्यास)	॥=)	सती चिन्ता	१)	भारतीय वीराङ्गनाएँ	१)
भारत-रमणी	॥)	नारी-विज्ञान	२)	पतिव्रता अरुन्धती	॥=)
विदुषी गार्गी	।)	सती पद्मिनी	॥=)	महासती वृन्दा	१)
सती सीता	१)	जनन-विज्ञान	३)	वीर पञ्चरत्न	३)
सती-सतीत्व	१।)	लीलावती	१॥)	सावित्री-सत्यवान	१॥)
सती बिपुला	॥=)	आदर्श माता	॥)	नल-दमयन्ती	१॥)
सती दमयन्ती	॥)	पतिव्रता रुक्मिणी	॥=)	सीता	२॥)
श्रीकृष्ण	४॥)	सीता देवी	॥=)	शकुन्तला	२)
सती पञ्चरत्न	१॥)	सती ऊषा	।)	सती चिन्ता	१॥)

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, २८ एल्गिन रोड, इलाहाबाद

पढ़ने योग्य अनमोल पुस्तकें

सती पार्वती	२)	मानवती	।–)	भारतीय स्त्रियों की योग्यता (दो भाग)	१।)
सती बेहुला	२।)	दुर्गावती	॥)	नारी तिमिर भास्कर	॥।)
हरिश्चन्द्र शैव्या	२॥)	कृष्णाकुमारी	॥)	रमणी-विनोद	॥।)
सती सुकन्या	१।)	साँवलदेवी	॥)	चतुर गृहिणी	॥।=)
मदालसा	१)	कलावती	।=)	विदुषी स्त्री-चिकित्सक	।=)
सुभद्रा	२)	आदर्श पति	॥)	शिल्प विधान	॥)
आर्य महिला-रत्न	२।)	जच्चा	॥।=)	सीता की अग्नि-परीक्षा	॥=)
वीर-चरितावली	१)	भारतीय स्त्रियाँ	१॥।)	स्त्री-कर्तव्य-शिक्षा	२।)
मुस्लिम-महिला-रत्न	२।)	महिला-रत्न	॥)	स्त्री-उपदेश	।–)
आदर्श चाची	१।)	देवी द्रौपदी	॥)	उपकारिणी	१=)
सुकन्या	१॥।)	दुर्गावती	१)	दम्पति सुहृद	१।)
सती दमयन्ती	॥=)	वनिता-विलास	॥।)	गृह-शिल्प	॥)
सती पार्वती	२।)	भारत की बिदुषी नारियाँ	॥)	लक्ष्मी देवी	॥=)
शिवसती	॥=)	नारी-उपदेश	॥)	आदर्श महिला	१)
हर-पार्वती	॥=)	गुप्त सन्देश	॥=)	" (रेशमी)	१॥)
सीता-बनवास	॥=)	महिलाओं का चक्रवर्त्तित्व	१)	भारत-रमणी	१।)
सती दमयन्ती	॥=)	फूलों का हार	॥।)	जननी और शिशु	॥=)
स्त्री-शिक्षा	।=)	गृहिणी-गौरव (रेशमी)	२)	सन्तान कलपद्रुम	१)
हिन्दू-विधवा	।)	" (सादी)	१॥)	ब्याही बहू	≡)
जया	।–)	शकुन्तला	=॥)	सीता-चरित्र	१॥।)
प्राचीन हिन्दू माताएँ	१)	आदर्श बहू (सजिल्द)	१।)	पतिव्रता गान्धारी	॥=)
सावित्री-सत्यवान	१।)	" (सादी)	॥।)	आदर्श महिला	२)
शकुन्तला	॥।)	भारत-रमणी-रत्न	॥।=)	भारतीय विदुषी	॥)
द्रौपदी-सत्यभामा	≡)	नवीन शिल्पमाला	२॥)	पतिव्रता	१)
सती पार्वती	।=)	सावित्री-सत्यवान	॥)	सौभाग्यवती	।)
गिरवी का लड़का	।=)	नल-दमयन्ती	॥)	भारत की देवियाँ	।–)
माता और पुत्र	१॥=)	शैव्या हरिश्चन्द्र	॥)	ललना-बुद्धि-प्रकाशिनी	।=)
अञ्जना देवी	॥=)	सीता देवी	॥=)	जननी-जीवन	॥।)
पतिव्रता दमयन्ती	=)	सती पार्वती	॥)	" (सजिल्द)	१।)
गृह-धर्म्म	॥।)	शकुन्तला	॥=)	सफल माता	२)
महिला-महत्व	२)	देवी द्रौपदी	॥=)	पाकचन्द्रिका	४)
अहिल्याबाई	।)	शर्मिष्ठा देवयानी	॥)	विधवा-विवाह-मीमांसा	३)
वीर और विदुषी स्त्रियाँ	॥)	सुभद्रा	॥=)	शान्ता	॥।)
नारी-महत्व	।)	संयुक्ता	॥=)		

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, २८ एल्गिन रोड, इलाहाबाद

मेहरुन्निसा	॥)
उमा सुन्दरी	॥।)
कमला के पत्र (हिन्दी)	३)
प्राणनाथ	२॥)
मनोरमा	३॥)
सतीदाह	२॥)
निर्मला	२॥)
दाम्पत्य जीवन	२॥)
शैलकुमारी	२)
उपयोगी चिकित्सा	१॥)
हिन्दू-त्योहारों का इतिहास	१।)
घरेलू चिकित्सा	॥।)
स्मृति-कुञ्ज	३)
अबलाओं का इन्साफ़	३)
बनमाला	३)
अबलाओं पर अत्याचार	२॥)
अञ्जनादेवी	॥=)

उपन्यास

बलिदान	२)
वज्राघात	२॥)
गोरा	३)
घर और बाहर	१।)
रमणी-रहस्य	॥-)
भ्रमर	१॥=)
रामप्यारी	१।)
वीर बाला वा जयश्री	॥)
पत्नी-प्रभाव	॥।)
सुरबाला	॥।)
अनन्त	≡)
सुलोचना	=)
हिरण्यमयी	≡)
नारी-हृदय	॥)
निराला नक़ाबपोश	॥)

सती सावित्री	॥)
सोने की कण्ठी (दोनों भाग)	२।)
दर्प-दलन	॥।=)
सती-सामर्थ्य	॥।)
भयानक भेदिया	॥)
आँख के आँसू	॥=)
महामाया	॥=)
रावण-राज्य	२॥।)
रमणी-कर्तव्य	॥=)
सती सुनीति	॥।)
काला चाँद	।=)
सीताराम	१।)
आग की चिनगारी	॥।)
सुकुमारी	१॥।)
गुप्त रहस्य	॥।-)
भूतों का डेरा	।)
वीर वाराङ्गना	॥)
भूतों की लड़ाई	-)॥
प्रवासिनी	१।)
दो खून	=)
दो बहिन	॥=)
देवी या दानवी	॥)
राजदुलारी	१)
सोने की राख	॥=)
नवाबी महल	१)
माया रानी	=)
सुलोचना	=)
वीर बाल-पञ्चरत्न	२)
वीर दुर्गादास	२)
नूरजहाँ बेगम व जहाँगीर	।-)
राजरानी	=)
लँगड़ा खूनी	≡)
कालग्रास	।)
नवाब-नन्दिनी (दो भाग)	१॥)

पिशाचपुरी	॥।)
रानी दुर्गावती	=)
उमा	१।)
सती सावित्री	॥)
भोजपुर की ठगी	॥=)
वीर लवकुश	॥)
नवलखा हार	=)
चन्द्रशाला	।=)
ज़हर का प्याला	१)
दिल का काँटा	१)
लाल चिट्ठी	१।)
कनकलता	१)
बड़े घर की बड़ी बात	१)
मायापुरी	२॥)
विचित्र समाज-सेवक	३)
आदर्श लीला	१॥।)
शैतानी जाल	१॥।)
कोहनूर	१॥)
शोणित-तपण	२)
शीशमहल	२)
साहसी सुन्दरी	१॥।)
सुन्दरी डाकू	१॥।)
टापू की रानी	१॥।)
सुन्दरी अमेलिया	१॥।)
गुलाब में काँटा	१॥।)
जर्मन जासूस	१॥)
क़ैदी की करामात	१॥)
पिशाचिनी	१॥।)
चीना सुन्दरी	१॥।)
चालाक चोर	१॥)
घटना-चक्र	२।)
शोणित-चक्र	२)
डबल जासूस	१॥)
लाल चिट्ठी	१॥।)

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, २८ एल्गिन रोड, इलाहाबाद

पीतल की मूर्ति ७।)
जासूसी पिटारा ।॥)
जासूसी गुलदस्ता १)
ख़ूनी सरपञ्च ।॥)
बोलशेविक-रहस्य १॥)
भूलभुलैयाँ =)
जवाहरात का गोला ॥)
अङ्गरेज़ डाकू ॥=)
गुलबदन १॥)
बनबीर १॥)
ख़ूनी औरत १)
नक़ली रानी १)
पुतली-महल (पाँच भाग) ३॥)
जासूसी चक्कर २॥)
पिशाचिनी १॥)
कर्म-क्षेत्र ३)
नराधम १=)
चण्डाल-चौकड़ी १॥)
वीरव्रत-पालन २)
,, (रेशमी) २॥)
जासूस के घर ख़ून १॥)
डॉक्टर साहब १॥)
आत्महत्या का ख़ून ।॥)
योगिनी या जादूगरनी ॥)
डबल जासूस १॥)
मयङ्क मोहिनी १)
भूतलीला ।॥)
दुरङ्गी दुनिया =)
अमीरअली ठग ।॥=)
लन्दन-रहस्य (४५ भाग) २८=)
बड़े घर की बहू का सर्वनाश ॥)
सहधर्मिणी ।॥)
उर्वशी १)
शान्ति-निकेतन १)
प्रेम-प्रतिमा २)
कायाकल्प ३॥)
लोकवृत्ति १)
पति-पत्नी प्रेम ।॥)
शाही लकड़हारा २)
शैलबाला १)
मधुमती ≡)॥
विधवा ।–)
शाही चोर ।)
शाही पतिपरायण ॥=)
दुर्गा ।=)
भाग्यवन्ती २)
शाही डाकू १॥)
शाही जादूगरनी १॥)
लक्ष्मी-चरित्र १)
शैतानी चक्कर १॥)
शैतानी लीला १॥)
शैतानी फन्दा १॥)
समाज-कण्टक २॥)
वाराङ्गना-रहस्य (रेशमी) ५)
वन्देमातरम् १॥)
नन्दन-भवन ॥=)
लीलावती १॥)
भारती २॥)
रमणी-रहस्य ३॥)
विचित्र जासूस उपन्यास १)
स्वामि-भक्ति १)
विचित्र जासूस १)
आलोक-लता १॥=)
अभागा १॥)
दुर्गेश नन्दिनी १)
प्रेमकान्त १॥)
कुसुम-संग्रह १॥)
विवाह-कुसुम १॥)
एम० ए० बना के क्यों मेरी मिट्टी ख़राब की २)
रजनी ॥=)
जीवन-ज्योति १)
खरा सोना १)
सीताराम १॥)
विचित्र डाकू १)
महामाया ॥=)
सेवाश्रम २॥)
भीषण सन्देह ॥)
पिशाचपति ॥)
शशिप्रभा २॥)
कलङ्किनी ।॥=)
सूर्यग्रहण २॥)
मदन-विलाप ॥)
दानवी लीला ।॥=)
विचित्र परिवर्तन २)
लक्ष्मी ॥=)
कमला कुसुम १)
विदा २॥)
विजया १॥)
हृदय की प्यास १॥)
पवित्र पापी ३)
संसार-रहस्य १॥)
बहता हुआ फूल २॥)
,, ,, (सजिल्द) ३)
रङ्गभूमि (दो भाग) ५)
,, ,, (सजिल्द) ६)
विचित्र वीर ॥)
दम्पति-रहस्य १॥)
जापान-रहस्य ॥=)
अपूर्व आत्मत्याग १॥=)
(सुर सुन्दरी या सात कौड़ी में राज्य) ।–)

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, २८ एल्गिन रोड, इलाहाबाद

पाप की छाप	२)	भयानक विपत्ति	=)	कल्याण-मार्ग का पथिक	१॥)
विश्राम बाग़	१॥)	मनोरमा	≡)	अन्याय का प्रतिकार	२।)
अहङ्कार	॥)	भीषण डाकू	॥)	प्रायश्चित्त	३)
वरधन	१)	छिपा कटार	–)	रहस्य-भेद	१॥)
अजेय तारा	१॥)	माधवी	=)	जादू का महल	१॥)
विलासिनी	१॥)	श्रीदेवी	=)	कामिनी और काञ्चन	३)
कार्य-क्षेत्र	१॥)	चोर की बहादुरी	=)	अधखिली कली	२॥)
विचित्र डाकू	१।)	रत्नप्रभाकर	≡)	कृष्ण वसना सुन्दरी	१॥
अत्याचार का अन्त	।)	गङ्गादास डाकू	॥)	भयानक बदला	१।)
विचित्र घटना	।)	आशिक़ों की कमबख़्ती	=)	विचित्र जाल	॥=)
रूपनगर की राजकुमारी	३)	चोर से बढ़ कर चोर	=)	शैतानी करामात	१॥)
कृष्णकान्त का दान-पत्र	१॥)	ठगों का बाज़ार	=)	हेमलता (चार भाग)	२)
दुर्गेशनन्दिनी	॥।=)	दुख के बाद सुख	।)	आदर्श डाकू	३)
इन्दिरा	॥।)	विराज बहू	॥≡)	प्रेम का फल	१)
सौन्दर्योपासक	॥।)	रोहिणी	।≡)	मोती-महल	३॥)
मृणालिनी	॥=)	मोहिनी	॥=)	चन्द्रनाथ	॥।)
देवी चौधरानी	॥।)	संसार-चक्र	१।)	प्रतिभा	१।)
मृण्मयी	॥।)	विषाक्त प्रेम	१।)	आँख की किरकिरी	१॥)
कलिकौतुक रूपक	=)॥	सत्यानन्द	१॥)	शान्ति कुटीर	१=)
रजनी	॥)	राजपूत-बाला	१॥)	अन्नपूर्णा का मन्दिर	१)
कपाल-कुण्डला	॥=)	चरित्रहीन (खद्दर की जिल्द)	३।)	लाल फ़ीता	–)
राधारानी	।)	,, (रेशमी जिल्द)	३॥)	रामदुलारी	१)
सीता-बनवास	॥=)	सप्त-सरोज	॥)	कादम्बरी	॥।)
हत्या-रहस्य	=)	प्रेम-पचीसी	२॥।)	आश्चर्य घटना	१॥)
बैरिस्टर	॥)	रानी जयमती	॥)	डाकघर	।–)
आसमानी लाश	=)	सुभद्रा	॥)	माधवी-कङ्कण	१)
यमालय से लौटा हुआ मनुष्य	=)	सेवा-सदन	२॥)	षोड़शी	१।)
युगल मालती	।=)	प्रेम-पूर्णिमा	२)	वन कुसुम	।=)
अद्भुत हत्याकारी	=)	प्रेमाश्रम	३॥)	तारा	१)
बीर कुमारी	=)	ऊषा-काल (दो भाग)	५॥)	स्वर्ण-लता	१॥।)
चोर की तीर्थयात्रा	–)	,, (रेशमी)	६॥)	धोखे की टट्टी	॥)
सूरजमुखी	।=)	आनन्द-मठ	॥।)	टामकाका की कुटिया	२॥)
कुमारसम्भव	।)	विष-वृक्ष	१)	रामलाल	१)
जङ्गल की मुलाक़ात	–)	युगलाङ्गुरीय	=)	पण्डित जी	१॥)

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, २८ एल्गिन रोड, इलाहाबाद

'चाँद' के ग्राहकों को फ़ी रुपया एक आना कमीशन

बड़ी दीदी	१)
परिणीता	१)
मँझली दीदी	१)
शीलादेवी	२)
अधःपतन	-)॥
सुरसुन्दरी	१॥)
लाल पञ्जा	१॥)
हवाई डाकू	१॥)
क़िले की रानी	।॥)
चन्द्रकान्ता (चार भाग)	१॥)
,, (रेशमी)	२)
चन्द्रकान्ता सन्तति (२४ भाग)	७॥)
मेम और साहब	≡)
प्रोफ़ेसर भोंदू	≡)
बसन्त का सौभाग्य	।)
चित्र	≡)
रामरखा का ख़ून	≡)
विचित्र ख़ून	।)
अत्याचार	।)
गर्म राख	।)
विषविवाह	।)
रूप का बाज़ार	।)
श्यामा	।)
सफ़ेद घोड़ा	।)
लैला-मजनू	।)
बङ्गाली बाबू	।
विधाता की लीला	।)
कठपुतली	।)
माधुरी	।)
योगिनी विद्या	।)
खोई हुई दुलहिन	।)
मित्र	।)
चित्रकार	।)
देवता का प्रचार	।)
प्रतिज्ञा-पालन	।)
आत्मत्याग	।)
विचित्र चोर	।)
समझ का फेर	।)
ख़ूनी की आत्मकथा	।)
ग़रीब की लड़की	।)
संसार-विजयी	॥)
कुसुम-लता	१॥)
प्रेम का मूल्य	।॥)
कुमारी रत्नगर्भा	।=)
प्रतिशोध	॥)
वीरेन्द्र वीर (दो भाग)	॥=)
रूप-ज्वाला	॥)
परिणाम	१)
कोकिला	।)
राजेन्द्रकुमार	।)
लावण्यमयी	=)
मरता क्या न करता	=)
बिना सवार का घोड़ा	≡)
छाती का छुरा	-)॥
कुसुम-लता	१॥)
चन्द्रमाला	१॥)
ललिता	॥)
उपन्यास-सागर प्रथम खण्ड (एक से सात भाग तक)	४)
उपन्यास-सागर दूसरा खण्ड (आठ से चौदह-भाग तक)	४)
काजर की कोठरी	।॥)
नरेन्द्रमोहिनी (पहिला भाग)	॥)
,, (दूसरा भाग)	॥)
बलिदान	१)
कुसुमकुमारी	१।)
सिद्धेश्वरी	।)
समझ का फेर	।)
दलित कुसुम	॥)
अनुताप	।)
अभागिनी	॥)
बनकन्या	।=)
रक्त-मण्डल	१॥)
मनोरमा	।॥)
चन्द्रमुखी	॥)
अबदुल्ला का ख़ून	=)
जीवन-सन्ध्या	१॥)
पद्मिनी	=)
किरण-शशी	।-)
कुलटा	≡)
विद्याधरी	=)
ज़बरदस्त की लाठी	॥)
कमलिनी	।)
साहसी डाकू	१।)
कान्तिमाला	।-)
हृदय-कण्टक	।)
संसार-दर्पण	३॥)
सत्यवीर	१॥)
बदरुन्निसा की मुसीबत	≡)
मदालसा	।-)
प्रेम का फल	।)
अनङ्ग-रङ्ग (दो भाग)	१॥)
पुष्पवती	।=)
अवध की बेगम	।-)
क़िस्मत का खेल	॥)
चुड़ैल	॥)
चन्दकुमार	=)
सरला	=)
महेन्द्र-माधुरी	॥)
अद्भुत भूत	।)
मेम और साहब	≡)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, २८ एल्गिन रोड, इलाहाबाद

मूर्ख और बुद्धिमान् ।≡)
सुलोचना =)
हवाई नाव ।)
मङ्गल-प्रभात ५)
अमृत और विष ५)
अपराधी २॥)
मानिक-मन्दिर २)
सखाराम १)
देवदास १)
ग्रह का फेर ॥)
आश पर पानी ॥)
समाज की चिनगारियाँ ३)
दक्षिण अफ़्रिका के अनुभव २॥)

नाटक

कृष्णार्जुन-युद्ध ॥=)
भीष्म नाटक ॥)
भक्त सुदामा १)
सत्यविजय ॥।)
काशी विश्वनाथ ॥।)
धर्मंजय १)
तेरो-सितम ॥।)
धर्मयोगी ॥।)
देश-दशा ॥।)
सम्राट् अशोक ॥।)
देशोद्धार ॥)
पत्नीव्रत ॥।)
द्रौपदी चीर-हरण ।)
बगुला भगत ॥)
द्रौपदी स्वयम्बर ॥।)
सत्य हरिश्चन्द्र ॥=)
विश्वामित्र ॥।)
ग़रीब किसान ॥।)

महाभारत ॥=)
आँखों का गुनाह ॥।)
गोरखधन्धा ॥)
विक्रम-चरित्र ।≡)
काली नागिन ॥=)
ज़ईफ़े हिर्स ॥=)
सैदे हवस ॥)
डुप्लीकेट ।-)
शकुन्तला ॥।)
दाग़ी माल ।=)
नल-दमयन्ती ॥।)
ख़ूबसूरत बला ॥)
भारतवर्ष ॥।)
भक्त प्रह्लाद ॥।)
दिल फ़रोश ।=)
ख़्वाब-हस्ती ।≡)
भूलभुलैयाँ ।≡)
महात्मा कबीर १)
भक्त सूरदास ।=)
भक्त विदुर ॥)
ध्रुव-लीला ॥।)
बालकृष्ण ॥)
वीर बाला ॥)
सीता-बनवास ॥।)
कलियुग का बुख़ार ≡)
सङ्गीत-थियेटर ।-)
कलियुगागमन ≡)
कलियुग ।=)
धूप-छाँह ॥)
ख़ून का ख़ून ॥)
वीर बादल ।=)
दुखिया भारत ॥)
आतशी नाग ॥)
संयोगिता-हरण ॥)

पत्नी-प्रताप ॥=)
सावित्री-सत्यवान ॥।)
हिन्दू-ललना ॥।)
सुनहरी ख़ञ्जर ॥=)
परशुराम ॥।)
गङ्गावतरण ॥=)
यहूदी की लड़की ॥)
वीर छत्रसाल ॥।)
भीष्म-प्रतिज्ञा ॥।)
बहोर थियेटर ।=)
हुब्बे-वतन ॥)
ऊषा अनिरुद्ध ॥)
सती सुलोचना ॥।)
पाण्डव-प्रताप नाटक ॥।)
भक्त सुदामा १)
सत्य विजय ॥।)
मीराबाई ॥=)
संसार-चक्र ॥।)
संग्रामसिंह ॥।)
रामलीला ॥=)
हिन्दू-स्त्री ॥।)
सौभाग्य सुन्दरी ॥।)
एक प्याला १)
दानी कर्ण ॥)
श्रीमती मञ्जरी ॥।)
ज़हरी साँप ॥)
सफ़ेद ख़ून ॥)
सिलवर किङ्ग ॥)
गोपीचन्द्र ॥)
नूर की पुतली ॥)
दर्दे-जिगर ॥।)
सौभाग्य सुन्दरी ॥।)
शरीफ़ बदमाश ॥)
चन्द्रावली ॥)

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, २८ एल्गिन रोड, इलाहाबाद

बहुत सी पुस्तकें एक साथ मँगाने से लाभ रहता है

दुश्मने-ईमान ॥=)
स्वर्णकान्ता २।)
पाप-परिणाम १)
कृष्ण-सुदामा १)
विश्वामित्र १)
कन्या-विक्रय १)
विपद्-कसौटी १)
मोरध्वज १)
देवयानी १)
भयङ्कर भूत १।)
महामाया १)
रेशमी रूमाल ॥)
हिन्दू नाटक १)
धर्मावतार ॥)
प्रेम-पुष्प ॥)
भक्त सूरदास १)
जनक-नन्दिनी २)
सम्राट् परीक्षित १।)
रणबाँकुरा चौहान १।)
विसर्जन ॥)
राजा-रानी ॥।)
भारत-गौरव १॥)
चाँदबीबी १॥।)
शकुन्तला ॥।)
नर-हत्या १)
बलिदान १।)
भक्त तुलसीदास १।)
अनोखी लीला ॥)
देश-दीपक ॥)
भारत दर्पण १)
अत्याचार का अन्त ॥।)
अत्याचार का परिणाम। ॥।-)
महात्मा ईसा ॥।=)
धर्माधर्म युद्ध ॥।)

कृष्णापमान ॥)
महाराज राजसिंह ॥-)
बुद्ध-चरित्र ॥।)
मूर्ख-मण्डली ॥=)
कर्बला १॥)
वर माला ॥।)
जयद्रथ-बध ॥।=)
पतिव्रता १।=)
खाँजहाँ १=)
वीर भारत ॥।)
पूर्व भारत ॥।=)
ईश्वरी न्याय ॥)
रानी सुन्दरी १।)
महात्मा विदुर १)
गौतम-अहिल्या ॥)
दोधारी तलवार ॥)
गौतम-अहिल्या ॥)
भक्तशिरोमणि ॥।)
पतिभक्ति ॥।)
भक्त सूरदास ॥=)
तलवार की करतूत -)॥।
ऊषाङ्गिनी १)
दुर्लभ बन्धु ॥)
सुलोचना सती ॥)
श्रवणकुमार ॥।)
नेत्रोन्मीलन ≡)
संग्राम १॥।)
रणवीर और प्रेममोहनी ॥।=)
सत्यनारायण १।)
भारत-रमणी ॥।=)
मुक्त धारा ॥≡)
नूरजहाँ १=)
शाहजहाँ १)
उस पार १=)

राणा प्रतापसिंह १॥)
भीष्म १।)
सीता ॥-)
मेवाड़-पतन ॥।=)
चन्द्रगुप्त १)
पाषाणी ॥।)
कर्मवीर १॥)
अज्ञात बात १)
सुनहरा विष ।=)
नाट्यसम्भव ।=)
पुरअसर जादू (उर्दू) ॥=)
सरोजनी नाटक ॥)
जै नारसिंह की =)
सप्तम प्रतिमा १॥)
कपटी मुनि ।)
नागानन्द ।)

प्रहसन, गल्प और कहानियाँ

सटक सीताराम ।)
भूखा मसखरा -)
हँसाने की कल =)
हरि ओ३म् तत्सत् ।)
सम्पादक की दुम ।)
काठ का उल्लू ।)
घोटाला पर घोटाला ।)
गड़बड़ घोटाला ≡)
चौपटानन्द ।)
ख़ुशामदी टट्टू ।)
क़हक़हे दीवार =)
कञ्जूस की खोपड़ी ॥)
वेटिङ्गरूम ≡)
दुमदार सितारा ।)
शैतान-पार्टी ॥।)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, २८ एल्गिन रोड, इलाहाबाद

विषय-सूची

चित्र-सूची

आचार्य श्री० चतुरसेन शास्त्री के

तजवीज़ किए हुए दो उत्तम नुसख़े

शीतकाल में सेवन करने योग्य उत्कृष्ट बाल्य-रसायन

बनाने और बेचने का सर्वाधिकार सञ्जीवन फ़ार्मेस्युटिकल वर्क्स ने प्राप्त किया है

बादाम पाक

स्वाद, सुगन्ध, स्वरूप, और गुणों में राजाओं के सेवन करने योग्य है। सर्वथा पवित्र और हानिरहित होने की गारण्टी है।

प्रधान अवयव जोकि चुनकर उत्तम डाले गए हैं:—बादाम, अम्बर, मोती [गुलाब-जल में पिसे हुए] कस्तूरी, अम्बर, चन्द्रोदय, मकरध्वज [सिद्ध], अभ्रक भस्म [सहस्त्रपुटी] स्वर्ण भस्म, ज़हरमोहराखताई, मूँगा, माणिक, अकीक, पुखराज [गुलाब के जल में घुटे] केसर, मेवाजात, मिश्री [पवित्र स्वदेशी] अर्क़-गुलाब, अर्क़-बेदमुश्क़ [चाशनी] कुछ फुटकर दवाइयाँ।

गुण—(१) आरोग्य शरीर हो तो सर्दी के दिनों में १५ दिन नियम से सेवन करने से शरीर पर बहार आवेगी, चेहरे की रङ्गत सुर्ख़ होगी। नेत्रों और मस्तक का तेज बढ़ेगा। शरीर पुष्ट और कान्तिमय होगा तथा प्रति सप्ताह दो से चार पाउण्ड तक वज़न बढ़ेगा। (२) रक्त का पीला और पतला पड़ जाना, नेत्रों की निर्बलता, शिर का भारीपन, मृगी, उन्माद, हिस्टीरिया, स्मरण-शक्ति का नाश, नींद न आना, दुःस्वप्न आना, पसली का दर्द, वीर्य की कमी और पुरुषार्थ का नाश आदि दुखों को दूर करने में चमत्कारिक प्रभाव रखता है। (३) पाचन शक्ति इतनी प्रबल हो जाती है कि रोज़ ४।५ सेर तक दूध हज़म हो जाता है। (४) सन्तान-प्रसव के बाद नाज़ुक-मिजाज़ स्त्रियों को यह पाक देने से १५ ही दिन में उनका शरीर कुन्दन की भाँति दमकने लगता है और दूध ख़ूब उतरता है। (५) युवावस्था में अपरिमित वीर्यक्षय के कारण जो रोगपुञ्ज एकदम शरीर का नाश कर डालते हैं, जिसके परिणाम में बड़े-बड़े घरानों में प्रायः आत्म-हत्या तक हुआ करती है, उनके लिए बादाम पाक जीवन-मूल है। निर्बल बच्चों को तरह-तरह की मिठाई न खिलाकर यह पाक सेवन कराना अमृत के तुल्य हितकारी है। मूल्य ६०) सेर।

१ सेर = ८० तोला, एक पाव से कम नहीं भेजा जाता।

कस्तूरी अवलेह

उपयोग—साधारण शक्ति वाले को एक बार में दो रत्ती से अधिक नहीं खाना चाहिए। खाने की सब से उत्तम रीति तो यह है कि आधा सेर गर्म दूध में उसे घोल कर पी जाना चाहिए और ऊपर से एक पान खा लेना चाहिए। यदि यह न बन सके तो सिर्फ़ एक ख़ुराक चाटकर पान खा लेना चाहिए। दवा दिन भर में सिर्फ़ दो बार लेनी चाहिए। दूध में घोलने से दूध अत्यन्त स्वादिष्ट और सुगन्धित हो जायगा। १५ मिनट में ही दवा का चमत्कार शरीर में दीखने लगता है। हृदय, नेत्र और मस्तक में हलकापन और आनन्द सा मालूम देगा। स्नायुमण्डल [नसों] में तत्काल उत्तेजना होगी। रक्त की गति तेज़ हो जायगी। प्रतिक्षण कुछ खाने की और कुछ करने की इच्छा मालूम होगी। घी, दूध, मलाई, मेवा प्रत्येक वस्तु बिना तकलीफ़ पचेगी, और साधारण भोजन के सिवा दिन भर में ४-५ सेर दूध पचेगा। ज्ञान-तन्तुओं में निरन्तर एक उत्तम मस्ती बनी रहेगी। यदि धैर्यपूर्वक ब्रह्मचर्य पालन किया जाय तो १ मास में ३ पौण्ड [पौण्ड=४० तोला] तक वज़न बढ़ेगा। सर्दी में वृद्धावस्था के कारण कफ, खाँसी, जुकाम, और दुर्बलता जब सताती है, तथा वायु का ज़ोर होने से जोड़ों और छाती में दर्द होता है, तब कस्तूरी-अवलेह की एक ही मात्रा बहुत आराम दिखाती है। हँसली से ऊपर के रोग जैसे नेत्रों की कमज़ोरी, सिर का भारीपन, मृगी, उन्माद, हिस्टीरिया, स्मरण-शक्ति का ह्रास, नींद न आना, दुःस्वप्न आदि रोगों में श्री० शास्त्री जी इस उत्तम औषधि का अपने रोगियों पर बराबर उपयोग करते हैं। बहुमूत्र के रोग में कस्तूरी-अवलेह ख़ासतौर से अद्भुत काम करता है।

१ तोला औषधि का मूल्य ६) है, ३ तोला एक साथ मगाँने से १५) में मिलेगी। डाक-ख़र्च अलग। एक तोला से कम नहीं भेजा जायगा।

सञ्जीवन फ़ार्मेस्युटिकल वर्क्स, दिल्ली

कमला के पत्र

छप गई !
मूल्य ३) रु०

छप गई !!
मूल्य ३) रु०

[सुनहरी जिल्द, तिरङ्गा कवर]

यह पुस्तक कमला नामक एक शिक्षित मद्रासी महिला के द्वारा अपने पति के पास लिखे हुए पत्रों का हिन्दी-अनुवाद है। इन गम्भीर, विद्वत्तापूर्ण एवं अमूल्य पत्रों का मराठी, बँगला तथा कई अन्य भारतीय भाषाओं में बहुत पहले अनुवाद हो चुका है। पर आज तक हिन्दी-संसार को इन पत्रों के पढ़ने का सुअवसर नहीं मिला था। इस अभाव की पूर्ति करने के लिए ही हमने इसका हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित किया है।

इन पत्रों में कुछ पत्रों को छोड़, प्रायः सभी पत्र सामाजिक प्रथाओं एवं साधारण घरेलू चर्चाओं से परिपूर्ण हैं। उन पर साधारण चर्चाओं में भी जिस मार्मिक ढङ्ग से रमणी-हृदय का अनन्त प्रणय, उसकी विश्व-व्यापी महानता, उसका उज्ज्वल पत्निभाव और प्रणय-पथ में उसकी अक्षय साधना की पुनीत प्रतिमा चित्रित की गई है, उसे पढ़ते ही आँखें भर आती हैं और हृदय-वीणा के अत्यन्त कोमल तार एक अनियन्त्रित गति से बज उठते हैं। दुर्भाग्यवश रमणी-हृदय की उठती हुई सन्दिग्ध भावनाओं के कारण कमला की आशा-ज्योति अपनी सारी प्रभा छिटकाने के पहले ही सन्देह एवं निराशा के अनन्त तम में विलीन हो गई। इसका परिणाम वही हुआ जो होना चाहिए—कमला को उन्माद-रोग हो गया। उसके अन्तिम पत्र प्रणय की स्मृति और उन्माद की विस्मृति की सम्मिलित अवस्थाओं में लिखे गए हैं। जो हो, इन पत्रों में जिन भावों की प्रतिपूर्त्ति की गई है, वे विशाल और महान् हैं। अनुवाद बड़ी योग्यता के साथ किया गया है और उसमें इस बात का विशेष रूप से ध्यान रक्खा गया है कि भाषा सरल, सरस और सुबोध हो और मूल लेखिका की स्वाभाविकता किसी प्रकार नष्ट न होने पाए। पुस्तक अपने ढङ्ग की अनोखी है। काग़ज़ ४० पाउण्ड एण्टिक, पृष्ठ-संख्या ३००, छपाई-सफ़ाई दर्शनीय, मूल्य केवल ३) रु०! स्थायी ग्राहकों के लिए २।) मात्र! पुस्तक सुनहरी सजिल्द है और ऊपर तिरङ्गा Protecting Cover भी है !!

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

चाँद



टीपू सुलतान

[टीपू सुलतान के पर-प्रपौत्र शहज़ादे अहमद हलीमुज़्ज़माँ और उनके भतीजे शहज़ादे ग़ुलामहुसेन शाह की कृपा द्वारा, एक तत्कालीन चित्र से]

'भारत में अङ्गरेज़ी-राज्य' से

Highly appreciated and recommended for use in Schools and Libraries by Directors of Public Instruction, Punjab, Central Provinces and Berar, United Provinces and Kashmir State etc.. etc.

वर्ष ७ खण्ड १	जनवरी, १९२९	संख्या ३ पूर्ण संख्या ७५

वरदान

[रचयिता—श्रीमती महादेवी जी वर्मा]

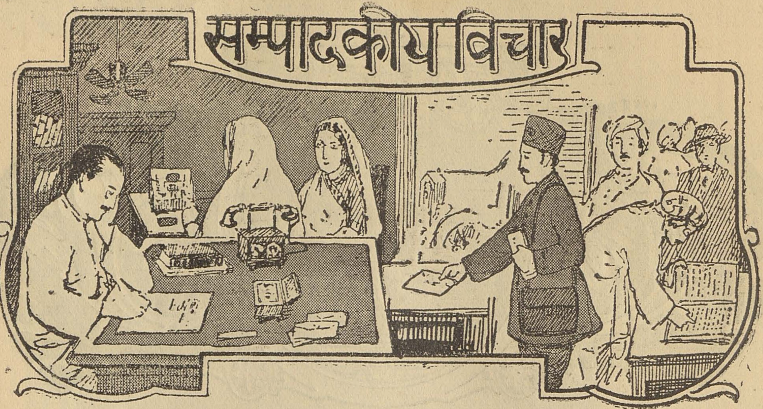
तरल आँसू की लड़ियाँ गूँथ,
इन्हींने काटी काली रात।
निराशा का सूना निर्माल्य,
चढ़ा कर देखा फीका प्रात ! । १ ।

सजग लखती थीं तेरी राह,
सुला कर प्राणों में अवसाद ।
पलक-प्यालों से पी पी देव,
मधुर आसव-सी तेरी याद ! । २ ।

इन्हीं पलकों ने कण्टकहीन,
किया था वह मारग बेपीर !
जहाँ से छूकर तेरे अङ्ग,
कभी आता था मन्द समीर ! । ३ ।

असन जल का जल ही परिधान,
रचा था बूँदों में संसार ।
इन्हीं नीले तारों में मुग्ध,
साधना सोती थी साकार ! । ४ ।

आज आए हो हे करुणेश,
इन्हें जो तुम देने वरदान !
गला कर मेरे सारे अङ्ग,
करो दो आँखों का निर्माण ! । ५ ।



चाँद

जनवरी, १९२९

हिन्दुओं का भयङ्कर ह्रास

आज हिन्दू-समाज के अन्तस्तल में पतन की जो भयानक शक्तियाँ काम कर रही हैं, उनका स्मरण कर एक बार ही हृदय दहल जाता है और नेत्रों से गर्म आँसुओं की दो बूँदे टपक पड़ती हैं—आत्मा प्रकम्पित हो उठती है और इस निर्लज्जतापूर्ण जीवन से घृणा होने लगती है, इसका कारण है। हिन्दुओं का पतन बड़े ढङ्ग से हो रहा है और जिस प्रगति से हो रहा है, यदि कुछ दिनों के भीतर ही—निकट-भविष्य में ही, इसके कारणों को रोका न गया तो इस विशाल जाति का पतन एक निश्चित-सत्य है! इस जटिल प्रश्न पर प्रत्येक भारतवासी को ठण्ढे दिल से विचार करना चाहिए और इस पतन के वास्तविक कारणों का पता लगाना चाहिए।

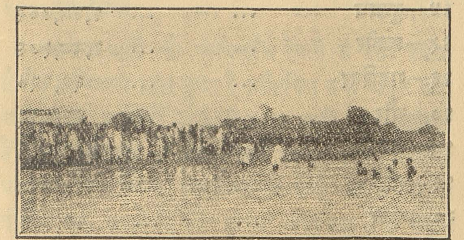
हिन्दू सबसे पहले धर्म से गिरे, उनका नैतिक पतन हुआ, फिर आध्यात्मिक पतन हुआ और आज? वर्त्तमान युग उनके सामूहिक पतन का युग है। इसके सर्वनाश का यह विध्वंसात्मक चक्र आज से नहीं, बहुत दिनों से चल रहा है और उसका प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ है कि हिन्दू-जाति का जीर्ण-शीर्ण कलेवर आज अन्धकूप के किनारे पर खड़ा हुआ अपने अन्तिम घड़ियों की प्रतीक्षा कर रहा है। उसकी सारी शक्तियाँ छिन्न-भिन्न हो गई हैं, अङ्ग अस्त-व्यस्त हो गया है, स्वतन्त्रता नष्ट हो गई है और उसका अन्तिम अवलम्ब—उसकी विशाल जन-संख्या भी, जिसका उसे सबसे अधिक गर्व था, उत्तरोत्तर क्षीण होती जा रही है। हिन्दुओं की उदासीनता, उनकी स्थिति-पालकता और अपरिवर्त्तनशीलता ने इस रोग की जड़ को इतना पुष्ट कर दिया है कि वह क्रमशः असाध्य होता जा रहा है। हिन्दुओं के इस महान् रोग की तुलना क्षय के रोगी से की जा सकती है, जिसके प्राण घुल-घुल कर निकलते हैं, पर प्राणान्त होना जिस प्रकार क्षय के रोगी का निश्चित है, ठीक उसी प्रकार अभागे हिन्दुओं का सर्वनाश भी एक निश्चित-सत्य है!! जिन विनाशकारी कीटाणुओं ने हमारे पतन का रास्ता इतना विस्तृत कर दिया है, हमारी जड़ खोखली कर दी है और हमें राह का भिखारी बना दिया है, उन्हीं पर आज हम विचार करना चाहते हैं। अस्तु—

समस्त संसार की जन-संख्या इस समय, सरकारी रिपोर्ट के अनुसार १,६४,६४,७१,००० है, जिसमें से ५४,४५,१०,००० ईसाई हैं, ४६,३८,००,००० बौद्ध हैं, २२,१८,२५,००० मुसलमान हैं और २१,६७,३४,५८६



अछूत-बालकों का नारकीय जीवन (हिन्दू-धर्म की गोद में)

अभागे हिन्दू हैं। यहूदियों की संख्या १,१२,०५,०००, अन्यान्य मतानुयायियों की संख्या १,५२,८०,००० और जङ्गली जातियों की संख्या है १५,८२,७०,०००। इन अङ्कों को देखने से स्पष्टतया पता चलता है कि संसार के चार



४५ अभागे हिन्दुओं के धर्म-परिवर्तन का उत्सव। ये भाग्यशाली स्त्री-पुरुष ईसाई-धर्म में दीक्षित हो रहे हैं!!

प्रमुख धर्मावलम्बियों में हिन्दुओं की ही संख्या सब से कम है! इस स्थल पर एक बात और भी विचार करने की है, वह यह कि जहाँ अन्य धर्मावलम्बियों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है, वहाँ हिन्दुओं का ह्रास बड़ी तीव्र गति से हो रहा है। इसका भी प्रमाण लीजिए—सन् १८८१ में समस्त भारत की आबादी में ७४'६ फ़ी सदी हिन्दू थे, जो सन् १८९१ की मनुष्य-गणना के अनुसार ७३'४ फ़ी सदी रह गए। सन् १९०१ में यह औसत घट कर ७१'८ हो गया और १९११ में वे रह गए ६९'२, और १९२१ में? हमें आश्चर्य न होना चाहिए, आज समस्त भारत में हिन्दुओं का औसत केवल ६८'६ फ़ी सदी रह गया है! इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि हिन्दुओं के ह्रास का यदि यही क्रम जारी रहा तो आगामी क़रीब ४०० वर्षों में हिन्दुओं का चिन्ह



वे हिन्दू-बालिकाएँ, जो हिन्दू रहने पर नंगी सड़कों पर घूमा करती थीं और हलवाइयों की दूकान के नीचे गिरे हुए जूठे टुकड़ों पर ही जिनका जीवन निर्वाह होता था, अब ईसाई होने पर लज्जा-निवारणार्थ बेचारियों को धोतियाँ नसीब हुई हैं।

केवल इतिहास के रक्त-रञ्जित पृष्ठों में ही मिलेगा—हमें तो इसमें भी सन्देह है!

हिन्दुओं की अकाल-मृत्यु ही इस ह्रास का एकमात्र कारण हो, सो बात भी नहीं है। इसका भी अकाट्य प्रमाण हम देने को तैयार हैं। १९११ की मनुष्य-गणना की रिपोर्ट के अनुसार समस्त भारत में हिन्दुओं की

संख्या थी २१, ७५, ८६, ८९२, जो सन् १९२१ ई० में घट कर २१, ६७, ३४, ५८६ रह गई अर्थात् केवल १० वर्षों में साढ़े आठ लाख हिन्दू घट गए ! यह कहाँ गए, इसका एक छोटा सा प्रमाण तो यहीं ले लीजिए, शेष कारणों पर हम आगे चल कर विचार करेंगे। सन् १९११ की मनुष्य-गणना के अनुसार भारत में ईसाइयों की संख्या ३८, ७६, २०३ थी और १९२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार इनमें ९ लाख की वृद्धि हुई, अर्थात् इनकी संख्या ४७, ५४,०७९ हो गई अथवा यों कहिए कि १० वर्षों में साढ़े आठ लाख हिन्दू घटे और इन्हीं १० वर्षों में ९ लाख ईसाई बढ़े !! इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि प्रति दिन क़रीब २४४ नए ईसाई बढ़ते हैं और प्रति दिन क़रीब-क़रीब इतने ही हिन्दू घटते हैं !!



वे हिन्दू, जो हिन्दू-समाज के अमानुषिक अत्याचारों से त्रस्त होकर ईसाई हो गए थे, आज वे ही ईसाई-धर्म के प्रचार का कार्य कर रहे हैं और लाखों हिन्दुओं को ईसाई बनाने में सहायक हो रहे हैं ! पर दोषी कौन है ?

ऊपर जो ब्योरा दिया गया है, वह केवल भारतवर्ष का है, किन्तु समस्त हिन्दुओं की संख्या जो पिछले १० वर्षों में घटी है, वह है लगभग सवा करोड़ !! इस समय भारतीय हिन्दुओं की ८५ प्रमुख जातियाँ हैं, जिनमें नीचे दिए ५२ जातियों का ह्रास बड़ी तीव्र गति से हो रहा है:—

क्रमाङ्क जाति			१० वर्षों में कितने घटे ?
१—ब्राह्मण	...	...	३,४०,७१७
२—अहीर	...	...	४,१५,६२५
३—बाँभन (महापात्र)	...	...	९८,६०९
४—बागदी	...	...	१,४६,४२५
५—बाउरी	...	...	४,३३,०२८
६—भूमिहार	...	...	२,११,२२७
७—बारूई	...	...	४,१५,१६६
८—चमार	...	...	२,३०,०८५
९—चाला	...	...	९४,५५२
१०—चूहड़	...	...	२२,४७१
११—धानुक	...	...	१,०६,५७४
१२—धोबी	...	...	५३,८७४
१३—डोम	...	...	५,००,८७०
१४—दुसाध	...	...	१,४८,७०२
१५—फ़क़ीर	...	...	१,८८,५७९
१६—गड़रिया	...	...	६९,२२०
१७—गौर	...	...	४३,६५६
१८—गेल्ला	...	...	१,२१,२६१
१९—गौड़	...	...	१५,३५८
२०—गूजर	...	...	१९,१७३
२१—हज्जाम	...	...	१,०७,६७५
२२—जोगी	...	...	१,५२,९०५
२३—जुलाहा	...	...	२,००,२६७
२४—काछी	...	...	७९,३०६
२५—कहार	...	...	१,३१,४७५
२६—करन	...	...	६०,५६४
२७—क़साई	...	...	६,७६,३६५
२८—केवट	...	...	६५,१८९

२९—कोरी	...	...	८६,१८१
३०—कोली	...	...	६,७२,७८४
३१—कुँभार	...	...	७१,७८६
३२—कुनबी	...	...	१२,८३,७०९
३३—कुरुमवान	...	...	९२,३४०
३४—लिङ्गायत	...	...	२,३८,७१६
३५—लोध	...	...	१,१५,५६८
३६—लोहार	...	...	५,२४,०६४
३७—मादिगा	...	...	२,४३,१६४
३८—महार	...	...	३,४०,१६४
३९—माल	...	...	१,४८,९१५
४०—माली	...	...	१,६०,२४३
४१—मोची	...	...	९४,६५२
४२—पल्ली	...	...	१८,८२३
४३—परिया	...	...	४०,९४६
४४—पासी	...	...	११,२४३
४५—पाटन	...	...	२,४८,९४८
४६—राजबन्सी	...	...	२,३०,७८०
४७—साइजिद	...	...	५४,२७८
४८—साही	...	...	१,४४,०६९
४९—सिद्धी	...	...	८,४३,१०४
५०—सुनार	...	...	१,२५,३६७
५१—तेली	...	...	७३,७६२
५२—बक्कालिपी	...	...	२,०४,५४१

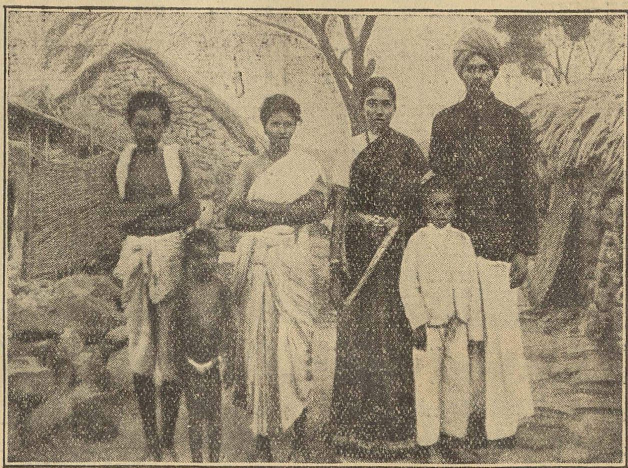
उपरोक्त अङ्कों को ध्यानपूर्वक देखने से पता चलता है कि अधिकतर ह्रास हुआ है अशिक्षित तथा अछूत कही जाने वाली जातियों का। ये प्रायः सभी ऐसी जातियाँ हैं, जिन्हें आसानी से बहकाकर—साधारण से साधारण प्रलोभन देकर अन्य धर्म्मावलम्बी उन्हें अपने धर्म में दीक्षित कर सकते हैं, और हो भी यही रहा है। अछूत जाति के लोग आज उच्च जाति कहे जाने वाले हिन्दुओं के अत्याचारों से पिसे जा रहे हैं—आज से नहीं, हज़ारों वर्षों से उन्हें पददलित किया गया और उनके मनुष्योचित सभी अधिकार शनैः शनैः उनसे छीन लिए गए। पर अब ज़माना बदल रहा है, इस उन्नति और विकास के युग ने उनके हृदयों में भी क्रान्ति उत्पन्न कर दी है और अब वे अपने पशुता का जीवन परित्याग कर मनुष्यों का सा जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। सम्भव है, अभी बहुत दिनों तक उनके नेत्र-पट न खुलते, पर अन्य धर्म्मावलम्बियों के सङ्गठित प्रचार (Propaganda) का प्रभाव भी इनके जीवन पर कम नहीं पड़ रहा है। अन्य धर्म्मावलम्बी प्रचारकों की तर्कपूर्ण युक्तियों के सामने बेचारे अशिक्षित अछूतों को निरुत्तर हो जाना पड़ता है, और उत्तर दिया ही क्या जा सकता है? ये प्रचारक उनकी दीनावस्था दिखा कर उन्हें इतना उत्तेजित कर देते हैं कि बेचारों को क्षणिक आवेश में आकर अपने बाप-दादों के धर्म्म को तिलाञ्जलि दे देनी पड़ती है। और ये धर्म्म-प्रचारक झूठ भी तो नहीं कहते। वे ऐसे शिकार को पाकर उनसे पूर्ण सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं और हर



'उच्च-जाति' के हिन्दुओं की बर्बरता और अत्याचारों से त्रस्त अछूत-परिवार ईसाई-दीक्षा लेने जा रहे हैं!

प्रकार के सहयोग और सहानुभूति का विश्वास दिलाते हैं। मुसलमान-प्रचारक एक ओर कहते हैं—"लात मार दो इन बुज़दिल हिन्दुओं के नाजायज़ ग़ुरूर पर, यह कुफ़्र के पुतले जब अपनी कनीज़ों की—अपनी बहू-बेटियों की इमदाद नहीं कर सकते तो तुम्हारी इमदाद क्या ख़ाक करेंगे? जो तुम्हारा छुआ हुआ पानी पीना नाजायज़ समझते हैं वह तुम्हारी आफ़ियत की फ़िक्र हो क्यों करने लगे? हमारा कुशादा धरम देखो और इसकी ख़ूबियों की परिस्तिश करो। नाचीज़ से नाचीज़ इन्सान—ख़्वाह वह किसी मज़हब का मानने वाला रहा हो, एक मर्तबा अगर इस्लाम क़ुबूल कर ले तो हम उसके हुक़ूक़ों (स्वत्वों) की हिफ़ाज़त के लिए ज़मीन-आसमान एक कर सकते हैं। देखो, हमारे भिश्ती तक नवाबों के साथ हुक़्क़ा पी सकते हैं। हमारी मस्जिदों का दरवाज़ा हक़ीर से हक़ीर मुसल-

मान के लिए हमेशा खुला रहता है और तुम अपने मन्दिरों में अपने ख़ुदा की परिस्तिश से भी महरूम रक्खे जाते हो ! हमारे दस्तरख़्वानों पर ग़रीब और अमीर एक साथ हम-नवाला हो सकते हैं और तुम्हारे काफ़िर हिन्दू तुम्हारे साथ कुत्तों से भी बदतर सुलूक करते हैं, जूठे रोटी के टुकड़े जिस तरह कुत्तों के आगे फेंके जाते हैं, तुम्हारे सामने भी उसी तरह फेंके जाते हैं । ऐसी ज़िन्दगी पर लानत है ! क़सम क़ुरान-शरीफ़ की, अगर इस हक़ीर ज़िन्दगी को ठुकरा कर रसूल-पाक का बनाया हुआ इस्लाम क़बूल कर लो, तो वल्लाह हैवान से इन्सान नज़र आओगे ! यही बुज़दिल और काफ़िर, जो आज तुम्हें दुत-कारते हैं, क़सम क़ुरान-शरीफ़ की, आदाब अर्ज़ करेंगे—मिन्नतें करेंगे । तुम्हीं से ख़ौफ़ खाएँगे, इसलिए नहीं कि तुम मुसलमान हो, बल्कि इसलिए कि वे बुज़दिल जान जाएँगे कि तुम्हारे पुश्त पर सारी क़ौम का साया है × × इत्यादि।" दूसरी ओर ईसाई-धर्म-प्रचारक इन्हीं बातों को अपने शब्दों में सुझा कर उन अभागों को अपनी अतुल शक्ति और अपने पीछे ब्रिटिश साम्राज्य की छत्र-छाया का प्रलोभन देते हैं । उन्हें प्रत्यक्ष दिखाया जाता है—'वसीटा' चमार जब से ईसाई होकर 'मिस्टर टॉम' के नाम से प्रसिद्ध हुआ है, तब से उसकी कितनी प्रतिष्ठा बढ़ गई है । रेलवे में नौकरी भी मिल गई है । काम तो करता है इञ्जन में कोयला झोंकने का, लेकिन जहाँ हिन्दुस्तानियों को १५) रु० वेतन मिलता है, वहाँ उसको मिलता है ८०)रु० मासिक !! तुम्हारे ऐसे तीन ख़ानसामा-बावर्ची उसकी सेवा में उपस्थित रहते हैं । दूसरा उदाहरण दिया जाता है 'कलुआ' पासी का, जो अब 'रॉस रिचार्ड्स' (Ross Richards) के नाम से प्रसिद्ध है और बड़ी लाईन में ट्रेवलिङ्ग टिकट कलक्टर हो गया है, अब जिसे १४०) रु० मासिक वेतन मिलता है और जो बड़े से बड़े हिन्दुस्तानी को जब चाहे 'डेम, ब्लडी, काला आदमी' कह सकता है और कोई उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता । इसी प्रकार के अनेक 'डिक' और 'हेरी' के उत्थान की कथा सुनाकर बेचारे अशिक्षित अछूतों को ईसाई-मिश्नरी अपने कपट-जाल में फँसा कर हिन्दू-जाति के विनाश-लीला में प्रवृत्त हैं । शायद हमें बतलाना न होगा कि बी० एन० रेलवे आदि की हड़तालों में रेलवे-आत्म-रक्षिणी सेना (Railway Defence Force) के जिन एङ्ग्लोइण्डियनों ने बेचारे स्वयं दुख के मारे हड़तालियों पर गोलियों की वर्षा की थी, उनमें से कौन कह सकता है, अनेक 'कलुआ' पासी 'घुरई' ठाकुर और 'वसीटा' चमार के वंशज न होंगे ?



बाईं ओर अछूतावस्था में एक हिन्दू-परिवार ! दाहिनी ओर ईसाई होने पर उसी परिवार की काया-पलट—पशु से मनुष्य !!

पाठकों को जान कर आश्चर्य न होना चाहिए कि इस समय भारत में केवल हिन्दुओं का धर्म-परिवर्त्तन करने के लिए—उन्हें ईसाई-धर्म में दीक्षित करने के लिए १३७ ईसाइयों की मिश्नरी जमायतें बड़े ज़ोरों से काम कर रही हैं, जिनमें १८,७७६ पादरी और ५०० डॉक्टर भी काम करते हैं । मिश्नरियों की ओर से खुले हुए ४०३ अस्पताल निर्धन भारतीयों की सेवा (?) कर रहे हैं । ४३ प्रेस हैं और भिन्न-भिन्न भाषाओं के ९९ पत्र-पत्रिकाएँ निकलती

हैं। भारत की लगभग सभी शिक्षा-सम्बन्धी अच्छी संस्थाएँ ईसाइयों द्वारा प्रचलित हैं, जिनमें बाइबिल का पढ़ना अनिवार्य होता है, पादरियों का व्याख्यान सुनना अनिवार्य होता है और न जाने क्या-क्या करना अनिवार्य होता है। सरकारी और जातीय इतने स्कूल और कॉलेज हैं नहीं, जिनमें भारतीय बालक स्वतन्त्र होकर पढ़-लिख सकें; अतएव बाध्य होकर उन्हें इन संस्थाओं की शरण लेनी ही पड़ती है। समस्त भारत में ईसाई-मिश्नरियों के ५१ कॉलेज, ६१० मिशन-स्कूल और ६१ ट्रेनिङ्ग स्कूल और कॉलेज हैं। इन संस्थाओं में ४८,०४४ छात्र आज शिक्षा पा रहे हैं।

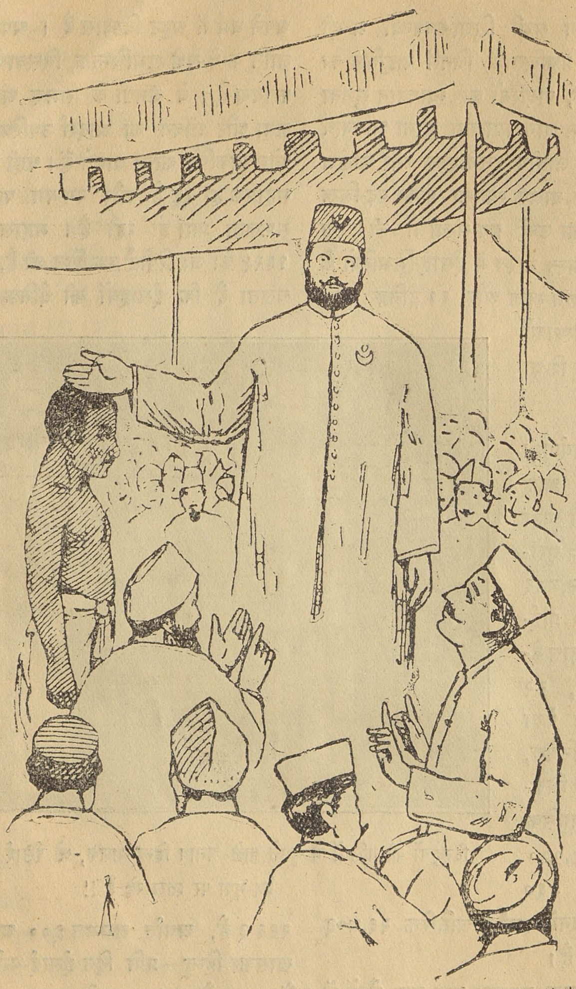
मुक्ति-सेना की कार्यवाही और उसकी संलग्नता आज भारतवासियों से छिपी नहीं है। इसके आधीन ३०८ यूरोपियन ऑफ़िसर, २,८८६ भारतीय प्रचारक, ५०७ प्राइमरी स्कूल, १४,६७५ छात्र डे-स्कूलों में पढ़ने वाले, २२ बोर्डिङ्ग, ९०० जरायम पेशा के लोग, १७ उपनिवेश, ३,२४२ एकड़ भूमि, ७ भिन्न-भिन्न भाषाओं में ११ मासिक पत्र, जिनके पढ़ने वाले १५,००० हैं और इनकी कुल ५६७ सामाजिक संस्थाएँ हैं, जिनमें कार्य के अतिरिक्त २६,८०३ मनुष्यों का पालन होता है।

इन साधनों के अलावा साधारणतया सब मेलों में और विशेष कर उन मेलों में जो नीच-जाति के होते हैं, जिस प्रकार ईसाई-धर्म-प्रचारक अपनी दूकानें सजा कर बैठते हैं सो सभी जानते हैं, बतलाने की आवश्यकता नहीं। हमारा अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि सारे मिश्नरी बेईमानी से, दग़ाबाज़ी, से फ़रेब से या ढोंग रच कर जनता को धोखा देते हों, बल्कि इनमें से बहुतेरे बड़े सच्चरित्र, मिलनसार, नेक और निस्स्वार्थ समाज-सेवी होते हैं, जो अपनी संस्थाओं द्वारा भारतीय जनता की बहुत उपयोगी सेवाएँ कर रहे हैं। बात यह है, ईसाइयों का अपने धर्म में अटूट विश्वास है। अपने देश, समाज और जाति के वे सच्चे शुभचिन्तक, निस्स्वार्थ सेवी और कर्त्तव्य-परायण हैं। वे जनता के समक्ष अपने धर्म की विशालता और जीवन का आदर्श उपस्थित कर उन्हें अपनी ओर आकर्षित करना जानते हैं। यही कारण हैं, जो उनके सहायक हो रहे हैं और पग-पग पर उन्हें आशातीत सफलता प्राप्त हो रही है। मद्रास के बड़े पादरी ने १९२५ की जो रिपोर्ट प्रकाशित की है, उसे देखने से पता चलता है कि ईसाइयों की दैनिक वृद्धि का औसत २९९३ है, अर्थात् लगभग ३०० अन्य धर्मावलम्बी—ख़ासकर हिन्दू—प्रति दिन ईसाई-धर्म में दीक्षित हो रहे हैं। एक और उदाहरण भी हम इस स्थल पर देना चाहते हैं। पञ्जाब प्रान्त में सन् १८८१ में केवल ३,७७९ ईसाई थे, सन् १८९१ में इनकी संख्या एकाएक १,६३,९९४ हो गई और १९२१ की गणना के अनुसार केवल इस प्रान्त के ईसाइयों की संख्या बढ़ कर ३,४६,२५९ हो गई है और दिनोंदिन इस संख्या में वृद्धि होती जा रही है, अर्थात् ३०० नए ईसाई प्रति दिन बढ़ते जा रहे हैं !!



हिन्दुओं की गलियों में घूमने वाले अनाथ हिन्दू-बालक, जो ईसाई होकर अपने नए वेष-भूषा पर इतरा रहे हैं !!

ईसाई-मिश्नरियों की इन कार्यवाहियों को और इनकी सफलता को देख कर मुसलमानों ने भी इधर कुछ दिनों से हिन्दुओं की मूर्खता, उनकी अकर्मण्यता



लावारिस माल—Unclaimed Property

राष्ट्रपति मौलाना मुहम्मदअली (कॉङ्ग्रेस के प्लेटफ़ॉर्म से)

भाइयो ! अछूतों का सवाल हिन्दू-मुसलमान दोनों का ही सवाल है ! बेहतर तो यही हो कि हिन्दू और मुसलमान मिल कर—समझौता करके—इन्हें आपस में आधा-आधा बाँट लें। इससे हिन्दू-मुस्लिम इत्तहाद हमेशा के लिए क़ायम हो जायगा !

स्वराजिस्ट—जनाब, बिलकुल ठीक और बजा फ़र्माते हैं। हम लोग क़तई मुत्तफ़िक़ राय हैं। आख़िर इन अछूत बेचारों का भी तो ठिकाना लगना ही चाहिए।

कॉङ्ग्रेस का प्रतिनिधि-मण्डल—आमीन ! आमीन !!

और बढ़ती हुई विलासिता से पूरा-पूरा लाभ उठाया है। यह सच है कि ईसाइयों के समान अभी इन्हें उतनी सफलता प्राप्त नहीं हुई है और न इनके पास पर्याप्त



हिन्दू रहने पर ये अछूत-बालिकाएँ मारी-मारी फिरती थीं। ईसाई होकर इन्होंने नवीन जीवन प्राप्त किया है। ये अब मिशन-स्कूल में शिक्षा पा रही हैं और टोकरी बनाने का कार्य सिखा कर इन्हें स्वावलम्बी बनाया जा रहा है। हिन्दुओ, देखो और इनके भाग्य की सराहना करो !!

साधन ही हैं, पर फिर भी हम इस जाति की ज़िन्दादिली, देश और समाज-प्रेम की खुले दिल से प्रशंसा करते हैं। पाठकों को यह जान कर भी आश्चर्य न करना चाहिए कि केवल जनवरी १९२७ से ७ अगस्त सन् १९२७ तक अर्थात् ८ महीनों में केवल देहली की जामा मस्जिद में ३,९३६ आदमी मुसलमान बनाए गए !! इसका अर्थ यह हुआ कि औसत के हिसाब से केवल एक देहली शहर में प्रति दिन १६ व्यक्ति मुसलमान बनाए गए। सन् १९११ से सन् १९२१ तक—केवल १० वर्षों में २४½ लाख नए मुसलमान भारत में पैदा हुए। हिन्दुओं की आज जो मनोवृत्ति है, उसे दृष्टि में रखते हुए हम तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि हिन्दू निकट-भविष्य में अपनी संख्या बढ़ा नहीं सकते। कारण स्पष्ट है; ७ करोड़ मुसलमान अरब, ईरान और तुर्किस्तान से नहीं आए थे। उन आने वालों की संख्या लगभग ७०० मात्र थी—हिन्दुओं ने ही अपनी बहू-बेटियाँ उन्हें देकर उनकी संख्या में वृद्धि की है! जब ७०० से वे ७ करोड़ हो गए और उनकी वृद्धि कोई नहीं रोक सका तो आज ७ करोड़ धर्म के नाम पर मर-मिटने वालों की वृद्धि कौन माई का लाल रोक सकता है? धर्म का प्रश्न उपस्थित होने पर मुसलमानों का बच्चा-बच्चा मरने को प्रस्तुत रहता है। मुसलमान मरना जानते हैं, इसलिए उन्हें कोई मार नहीं सकता। हिन्दुओं को अपनी जान धर्म से प्यारी है, इसलिए वे जी नहीं सकते, उनका विनाश एक निश्चित-विषय है। यदि हम जीना चाहते हैं तो हमें मृत्यु का भय त्याग देना होगा और यदि हम मृत्यु चाहते हैं तो हमें जीवन का लोभ ही मृत्यु प्रदान कर सकता है। किसी भी राष्ट्र अथवा समाज के सारे उत्थान और पतन का यही सारमय निष्कर्ष है—यही उसके इतिहास का संक्षिप्त, किन्तु अकाट्य परिचय है? अस्तु।

पर अपनी इस पतितावस्था से त्राण पाने के लिए लम्बी-नाक वाले हिन्दू क्या कर रहे हैं? वे अपनी सङ्कुचित जातीय सभाओं में ईसाइयों तथा मुसलमानों के धर्म-परिवर्तन की निन्दा करते हैं। उन्हें गालियाँ देते हैं और सरकार से उन्हें दण्ड दिलाने की प्रार्थना के प्रस्ताव पास करने की प्रार्थना कर, अपने सारे कर्त्तव्य की 'इति-श्री' समझते हैं। अभागे हिन्दुओं के आज



मद्रास के 'पारिया' नामधारी अछूतों के लड़के, जो ईसाई होने पर मिशन-स्कूल में शिक्षा पा रहे हैं

सात करोड़ अछूत कहे जाने वाले भाई पशुओं से बुरा जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनकी लगभग तीन करोड़ अभागिनी विधवा बहिनें राह की भिखारिनी बनी घुट-घुट कर अपना जीवन व्यतीत कर रही हैं। इनमें से

अधिकांश प्रकृति से युद्ध न कर सकने के कारण पराजित होकर आज अपना नारकीय जीवन व्यतीत कर रही हैं, जिसके फल-स्वरूप न जाने कितने वेदव्यास, न जाने कितने कर्ण, न जाने कितने कालिदास और न जाने कितने कबीर आज कूड़ों के ढेरों पर, पेड़ों के नीचे और नदी के तट पर उचित देख-भाल न हो सकने के कारण हिन्दू-समाज को कोसते हुए अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देते हैं! यदि इन्हीं लावारसी बच्चों को उठाकर, इन्हीं अभागिनी अनाथ विधवाओं का हाथ पकड़ कर बेचारे मुसलमान अथवा ईसाई अपनी संख्या बढ़ाते हैं, यदि उन्हें पशु से मनुष्य बनाने का प्रयत्न करते हैं तो हिन्दू-महासभा के रङ्ग-मञ्च से उनकी निन्दा की जाती है, उन्हें गालियाँ दी जाती हैं और उनका अपमान किया जाता है। यदि



मिशन-स्कूल की वे बालिकाएँ, जो कभी अछूत थीं, अब स्कूल के लिए पानी भरने जा रही हैं।

हिन्दुओं के इन्हीं विनाशकारी छिद्रों की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया जाता है, उसकी आँखों में उँगली डालकर उसके इस भयङ्कर पतन की ओर इशारा किया जाता है तो धन्यवाद देने के बदले 'चाँद' के बहिष्कार का फ़तवा दिया जाता है! उस पर क़ानूनी काररवाई करने की धमकी दी जाती है और सम्पादक महाशय के ख़ून कर डालने के लिए नवयुवकों को प्रोत्साहित किया जाता है, यह है अभागे हिन्दुओं का सच्चा स्वरूप और यह है उसके भावी पतन का नग्न-चित्र !!

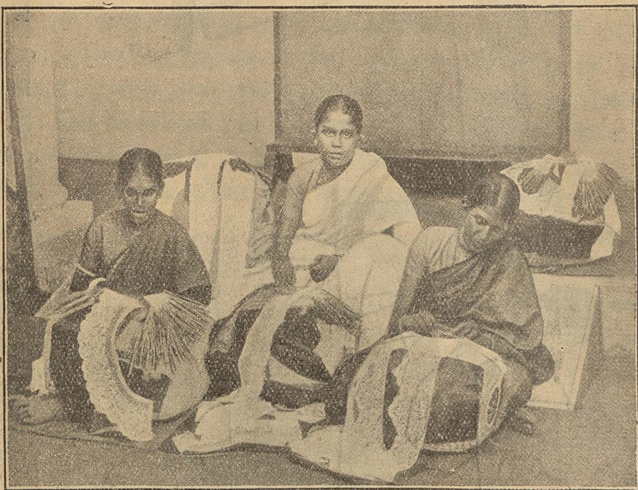
भारतीय मनोवृत्ति का व्यापक स्वरूप यदि कोई देखना चाहता है, तो उसे जातीय आन्दोलनों की तह में देखना चाहिए—चाहे वह हिन्दू-महासभा हो या ख़िलाफ़त का व्यवसाय। हमारी अधिकांश ज़िल्लत के लिए, हमारे भयानक पतन के लिए और हमारी वर्त्तमान पतितावस्था के लिए ज़िम्मेदार हैं हमारे सुधार के लिए बर्फ़ के समान घुलने वाले हमारे अधिकांश नेतागण, जिन्होंने देश और समाज-सुधार के पवित्र कार्य को अपने पेट पालने का व्यवसाय बना रक्खा है! हमारे इस आक्षेप को निराधार कहने का प्रयत्न करना, अपनी अनुभव-शून्यता का परिचय देना होगा! आज हिन्दू-महासभा के नाम पर यदि करोड़ों नहीं, तो लाखों रुपए हिन्दू-सङ्गठन के पवित्र आन्दोलन को कलङ्कित करने के लिए एकत्र किए जा चुके हैं, पर क्या हम इस बात को पूछने का साहस कर सकते हैं कि इस विपुल धन का आज तक क्या उपयोग हुआ है? कितनी व्यायामशालाएँ, कितने संरक्षण-गृह, कितनी पाठशालाएँ और कौन-कौन सी संस्थाओं का निर्माण किया गया है? हम दावे के साथ कह सकते हैं कि ऐसा एक भी उपयोगी कार्य पिछले ५ वर्षों में नहीं हुआ है और न निकट-भविष्य में होने की सम्भावना ही है। पर भोली जनता को धोखा देने के लिए, सर्व-साधारण का मुण्डन करके अपनी उदर-पूर्ति के लिए—हमारे अधिकांश नेतागण, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान—देश का रक्त चूस रहे और कोठियाँ खड़ी कर रहे हैं। जिनके बाप-दादे कौड़ी-कौड़ी को मुहताज थे—दिन में जिनके एक भी भोजन का ठिकाना नहीं था और गलियों में दूकान-दूकान पर भिक्षा माँगते फिरते थे—उन्हीं की सन्तान आज जातीय आन्दोलन के नाम पर मालामाल हो रही है! जिनके पिता दिन में एक दाता के यहाँ भोजन कर दूसरे दिन के लिए दूसरे दाता की तलाश करते हुए सड़कों पर भटकते थे, उन्हीं की सन्तान आज हिन्दू-सङ्गठन के पवित्र नाम को कलुषित करने के कारण सैकड़ों और हज़ारों रुपए मासिक आय (Honorarium) का प्रबन्ध कर चैन की बंसी बजा रही है! वे दिन-भर शतरञ्ज खेलकर अपना तथा अपने मित्रों का मनोविनोद करते हैं और कभी-कभी सन्ध्या को भूले-भटके प्रेसों में पहुँच कर सीधे-सादे अशिक्षित कम्पोज़िटरों और प्रेस के अन्य कार्यकर्त्ताओं को हिन्दू-सभा की मेम्बरी के लिए प्रोत्साहित करते हैं। इसी श्रेणी के देशद्रोही नेताओं की आवभगत में—उनके पूजा-सत्कार में—देश के कोने-कोने



अछूतों का फ़ुटबॉल

पण्डित जी अछूतों के बहिष्कार का फ़तवा देकर उसे ठुकरा रहे हैं और मौलवी तथा पादरी साहब अछूत रूपी गेंद को लोक रहे हैं !

से एकत्रित किया हुआ सारा धन स्वाहा हो रहा है, यही कारण है कि हमारी स्थिति आज भी उतनी ही दयनीय है—उससे कहीं अधिक शोचनीय है, जैसी सङ्गठन और हिन्दू-महासभा का ढोंग रचने के पूर्व थी। सन् १९२३ से इन थोथे आन्दोलनों की नींव पड़ी और सन् २३ से २७ के अन्त तक केवल इस प्रान्त में २८ जातीय झगड़े



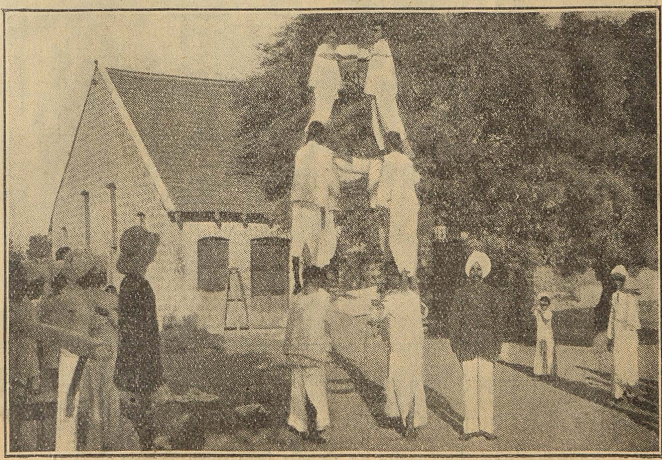
यदि ये महिलाएँ हिन्दू होतीं तो आज कोठों पर बैठी दिखाई देतीं और जिनका एकमात्र कार्य होता हिन्दुओं की पाप-वासना और व्यभिचार की प्रज्वलित अग्नि में अपना सदाचार स्वाहा करना ! आज ईसाई होने पर अपनी शिक्षा और शिल्प-कला के ज्ञान द्वारा सदाचार-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर रही हैं !!

हुए, जिनमें ३९ हिन्दू और ४२ मुसलमान तो जान से गए और न जाने कितनों की हड्डी-पसली आज तक दुख रही होगी। इस स्थान पर हम इस बात की विवेचना नहीं करना चाहते कि इन झगड़ों के जन्म-दाता हिन्दू थे या मुसलमान। हम तो केवल जातीय नेताओं की स्वार्थ-लिप्सा और उनकी कलुषित मनोवृत्ति से देशवासियों को सचेत कर देना चाहते हैं। हमने कई ऐसे उदाहरण देखे हैं कि शाम को हिन्दू-सभा का विशेष अधिवेशन कर हिन्दू-नेताओं ने रङ्ग-मञ्च से गर्ज कर उन्हें केवल शक्तिशाली बनने के लिए उत्साहित ही नहीं किया, बल्कि सच तो यह है कि उन्हें उद्दण्ड होने को उकसाया भी गया; और जब दूसरेदिन हिन्दू-मुसलमानों का मोर्चा लगा तब वही नेता दुम दबाकर बन्द गाड़ी में (जिसका नम्बर भी हमारे पास है) देहली के लिए भाग खड़े हुए। क्या हिन्दू-नेताओं के पतन का, उनकी कलुषित मनोवृत्ति का और उनकी चरित्र-हीनता का इससे दारुण और इससे मार्मिक उदाहरण दिया जा सकता है ?

हम सङ्गठन के क़ायल हैं—चाहे वह हिन्दुओं का हो, मुसलमानों का अथवा ईसाइयों का। हम क्रियात्मक शक्ति (Creative Force) के कट्टर पक्षपाती हैं, किन्तु जिस सङ्गठन के नाम पर हिन्दू-नेता मालामाल हो रहे हों—वे फ़र्स्ट क्लास के डिब्बे में बैठ कर गुलछर्रे उड़ाते हों और हमारे भाग्यहीन ९९.८ प्रति शत भाई दाने-दाने के लिए तड़प रहे हों, जिस हिन्दू-सङ्गठन का उद्देश्य भोले-भाले नागरिकों की आँखों में धूल झोंक कर—उन्हें झूठे सब्ज़ बाग़ दिखा कर—भाँति-भाँति से बहका कर, काउन्सिल अथवा एसेम्बली-प्रवेश के लिए वोट प्राप्त करने का साधन बनाना हो, जिस हिन्दू-सङ्गठन के नेताओं का उद्देश्य मृदुल भाषणों द्वारा सभा के रङ्गमञ्च से—हिमालय की चोटी से—जनता को आर्द्र करके अपने लिए—अपने बाल-बच्चों के लिए—अनुचित सम्मान, धन, कीर्ति, ऐश्वर्य और लम्बे-चौड़े सरकारी ख़िताब प्राप्त करना हो, उस हिन्दू-महासभा और उस हिन्दू-सङ्गठन को हम हृदय की समस्त शक्ति से धिक्कारते हैं और शिक्षित समाज को भी, ऐसा ही करने का आह्वान करते हैं। यदि हमारे हिन्दू-भाई वास्तव में अपनी रक्षा करना चाहते हैं, अपना सङ्गठन करना चाहते हैं और संसार में जीवित रहना चाहते हैं तो उनका सबसे पहला कर्त्तव्य है इस प्रकार के स्वार्थी नेताओं के कपट-जाल से अपने को दूर रखना।

अनेक भारतीय नेताओं की ईमानदारी में हमें सन्देह रहा है और समय-समय पर इस सन्देह की पुष्टि भी होती गई है। हमारा विश्वास है कि सभा-सोसाइटियों के रङ्गमञ्च से ललित, मुहावरेदार और सुन्दर भाषा में व्याख्यान देने की अपेक्षा यदि हमारे नेताओं में आत्म-विश्वास होता, यदि वे अपने स्वार्थ की आहुति देकर, किसी विषय का अध्ययन कर, उतना ही कहते जितना वे स्वयं कर सकते हैं, तो आज की अपेक्षा हमारे समाज तथा देश-सुधार का कार्य कहीं सुगम हो गया होता, पर परिस्थिति ऐसी नहीं है। जिन नेताओं के हृदय के कोने-कोने में विधवा-विवाह का विरोध भरा हुआ है, वे ही सामाजिक परिषद् के प्लेट-फ़ॉर्म पर खड़े होकर विधवाओं की दशा पर आँसू बहाते हैं और उनके (विधवाओं के) जीवन का करुणापूर्ण दृश्य श्रोताओं के सामने उपस्थित करते हैं; जो नेता बाल-विवाह की कलुषित प्रथा को ही देश की दुर्बलता का कारण समझते हैं, अवसर पड़ने पर वे ही नेता बाल-विवाह जैसे महत्व-पूर्ण बिल का विरोध प्रदर्शित करने में आत्म-ग्लानि का अनुभव तक नहीं करते, लज्जा से उनका मस्तक नत नहीं होता, जब चाहे, निमन्त्रित कर किसी भी प्लेटफ़ॉर्म से फिर बाल-विवाह का विरोध उनसे करा लीजिए! जो नेता अछूतों को मानवीय अधिकार प्रदान करने के लिए गला फाड़-फाड़ कर व्याख्यान देते फिरते हैं, उनके स्वत्वों को कुचलने वाले उच्च जाति के लोगों पर घृणा और रोष प्रकट करते हैं और शास्त्रों की तथा धर्म-ग्रन्थों की दुहाई देकर यह बात साबित करते फिरते हैं कि अछूत और उच्च जाति में किसी भी प्रकार का भेद-भाव जगन्नियन्ता ने निर्माण नहीं किया है, वे ही नेता अछूत कहे जाने वाले भाई से स्पर्श हो जाने पर तीन बार स्नान करते हैं और गोबर और लीद—न जाने क्या-क्या खाकर अपनी आत्म-शुद्धि करते हैं!

हम यहाँ पर एक उदाहरण भी देकर अपने आशय को और भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं। गत वर्ष काशी में हिन्दू-महासभा का अधिवेशन था। सार्वजनिक सभा में महामना मालवीय जी अछूतों की पतितावस्था का चित्र खींच रहे थे। बेचारों की आँख में सदा की भाँति आँसू आगए। तब काशी में बिजली नहीं थी, गर्मी का दिन था। कोनों में खड़े हुए बेचारे अछूत नेताओं को पङ्खा झल रहे थे। महामना आत्म-विस्मृति के कारण—अथवा न जाने कैसे बड़े जोश में आगए और व्याख्यान के सिलसिले में "तू ही तो मेरा राम है" कह कर एक अछूत के पैर पर गिर पड़े और ख़ूब रोए, फिर क्या था करतलध्वनि से सारी सभा गूँज उठी, बड़ी चहल-पहल रही, बड़ा जोश फैला, महामना की अछूत-प्रियता का नारा बुलन्द होने लगा और वह सभी बातें हुईं जो ऐसे मौक़ों पर हुआ करती हैं; पर क्या महामना में इतना आत्म-बल है कि उसी 'राम' के हाथ का छुआ हुआ एक लोटा जल ग्रहण कर सकें, अथवा एक ही फ़र्श पर बैठ कर कुछ भोजन ही कर लें? यदि नहीं, तो फिर इस प्रपञ्चता की क्या आवश्यकता थी? हमारा तो पूर्ण विश्वास है कि महामना अछूत-रूपी 'राम' के चरणों पर न गिर कर, उस अछूत को अच्छी तरह स्नान करा कर, हाथ ख़ूब साफ़ करा कर और लोटा बालू से मँजवा



वे लावारिस हिन्दू-बालक, जिनके शरीर के ढाँचों में हिन्दुओं की बर्बरता का चित्र दिखाई देता था, अब ईसाई होकर मिशन-स्कूल में व्यायाम की शिक्षा पा रहे हैं!!

कर यदि महामना उससे पानी मँगा कर, बिना प्यास के भी दो घूँट पी लिए होते, तो आज अछूतों के सुधार का मार्ग कहीं अधिक सरल हो गया होता। हमारा दृढ़ निश्चय है, महामना के आँसू गिराने की अपेक्षा यह विशेष क्रियात्मक सहानुभूति प्रदर्शित हुई होती और दर्शकों तथा श्रोताओं पर इस बात का वह प्रभाव पड़ता जो महामना के जीवन भर इसी प्रकार का व्याख्यान देने से नहीं पड़ सकता!



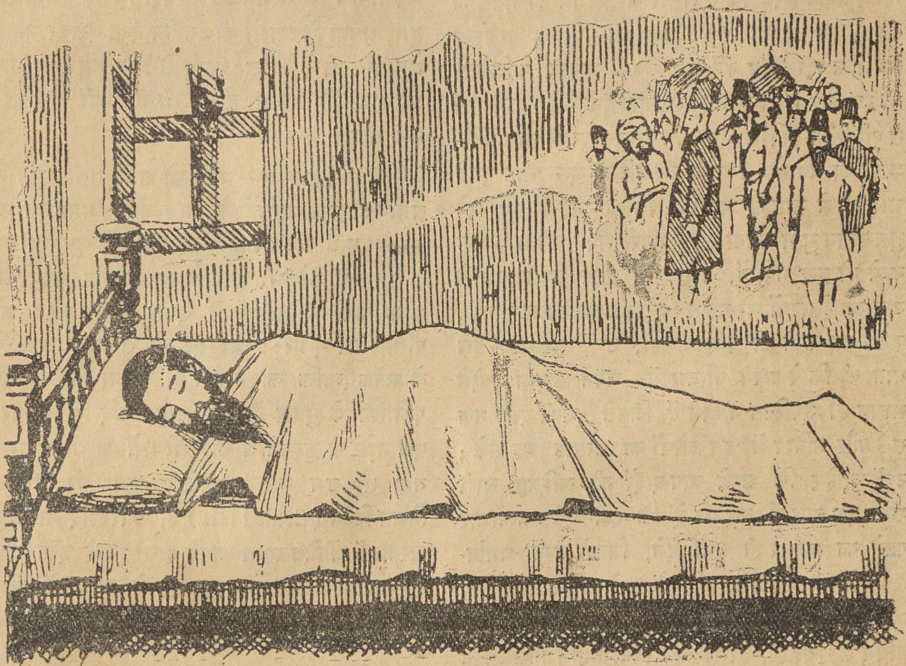
यह चित्र 'पारिया' नामधारी मद्रास के उन अछूतों का है, जो भूखों मरते थे। उच्च-जाति के हिन्दुओं का अत्याचार ही जिनका सारा वैभव था। अब ईसाई होकर बड़ी स्वच्छन्दता-पूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे और हिन्दू-समाज को कोस रहे हैं !!

इसी प्रकार की एक मनोरञ्जक घटना महामना के सम्बन्ध में पाठकों को और स्मरण होगी। विगत ६ठी अप्रैल, सन् १९२७ को कुम्भ के अवसर पर हरिद्वार में महामना मालवीय जी के सभापतित्व में सनातनधर्म का एक विराट् अधिवेशन हुआ था। महामना ने अपनी स्वाभाविक ओजस्वी वक्तृता में सनातनधर्म की मर्यादा, उसकी विश्वव्यापी महानता एवं उसके सौन्दर्य की व्याख्या की; और कहा कि सनातनधर्म का सबसे सुन्दर स्वरूप वर्ण-व्यवस्था ही है! तत्पश्चात् महामना ने बाल-विवाह की दूषित प्रथा को एक बार ही बन्द करने का आदेश दिया और अन्त में विधवाओं की दारुण अवस्था का वर्णन करते हुए महामना बिलख-बिलख कर रोने लगे और उनके साथ ही रोने लगे भोले-भाले श्रोतागण! श्रोताओं पर महामना के इन आँसुओं का चाहे कुछ भी प्रभाव पड़ा हो, पर हमारे पत्थर-से वज्र कलेजे पर महामना के इन सारहीन आँसुओं का किञ्चित प्रभाव भी नहीं पड़ सका। अपनी इस कमज़ोरी को हम जून, १९२७ के एक नोट में स्वीकार भी कर चुके हैं!

इस टिप्पणी से हमारा मन्तव्य यह कदापि नहीं है कि महामना अछूतों के सुधार के पक्षपाती अवश्य हों, उनका छुआ हुआ खाना खाएँ और उनके हाथ का मँगाया हुआ पानी पीवें, और हम यह भी नहीं चाहते कि महामना अपने निजी विश्वास के विरुद्ध बाल-विवाह का विरोध अवश्य करें, हम एक क्षण के लिए यह भी नहीं चाहते कि महामना अपनी इच्छा तथा सिद्धान्त के विरुद्ध विधवा-विवाह का भारतवर्ष में प्रचार करें; पर इतना हम अवश्य चाहते हैं कि वे भारतीय जनता के भोलेपन से अनुचित लाभ न उठावें—केवल उन्हीं सुधारों के लिए आँसू बहावें और केवल उन्हीं सुधारों के लिए व्याख्यान दें अथवा चन्दा इकट्ठा करें जिसे उनकी अन्तरात्मा खुले-दिल से स्वीकार करती है, क्योंकि हमारा पूर्ण विश्वास है कि ऐसा करने से महामना, जिन्होंने अपना प्रायः सारा जीवन देश-सुधार के कार्य में व्यय कर दिया है, जो पिछले ३६ वर्षों से सार्वजनिक कार्य में रत रहे हैं—अपने देशवासियों का विशेष कल्याण कर सकेंगे!

हिन्दू-जनता से भी हमें कुछ निवेदन करना है, वह यह कि यदि वास्तव में वे अपने को शक्तिशाली, सुदृढ़

एवं सङ्गठित करना चाहते हैं तो उन्हें किसी भी नेता की आवश्यकता न होनी चाहिए—उन्हें चाहिए समस्त भारत के हिन्दू-सङ्गठन का क्षणिक विचार परित्याग कर अपने अधीनस्थ परिवार का सङ्गठन करना और उन्हें शक्तिशाली तथा कर्तव्य-परायण बनाना। उन्हें समस्त भारत के हिन्दुओं की क्षणभङ्गुर सङ्गठन-आशा को एक बार ही तिलाञ्जलि देकर, अपनी सारी शक्ति अपने आश्रित व्यक्तियों के सुधार में, अपने परिवार वालों पाएगा; उन्हें इस बात की चिन्ता न करनी चाहिए कि ३००हिन्दू आज प्रति दिन ईसाई अथवा १६ हिन्दू केवल देहली की जामा मस्जिद में प्रति दिन मुसलमान हो रहे हैं, बल्कि उन्हें यह देखना चाहिए कि उनके परिवार में वे कारण ही उत्पन्न न हों, जिनसे खीज कर किसी को धर्म-परिवर्त्तन करने की आवश्यकता उपस्थित हो। जो लोग वास्तविक सङ्गठन करना चाहते हों, उन्हें यह भूल जाना चाहिए कि समस्त भारत लगभग तीन करोड़



ख़्वाजा हसन निज़ामी का सुख-स्वप्न

सोते ख़्वाजा हसन निज़ामी, स्वप्नों का है तना वितान !
छोड़ अछूत राम-गंगा को, कलमे में लाते ईमान !!

की शिक्षा में और अपने कुटुम्बियों को बलिष्ठ करने में व्यय कर देनी चाहिए। सारे भारत में बाल-विवाह की कुप्रथा के कारण जो भयङ्कर हानियाँ हो रही हैं, उन्हें एक बार ही विस्मरण कर देना चाहिए और यह देखना चाहिए, इस बात का दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिए कि हमारे परिवार में इस प्रकार का अनिष्ट कदापि न होने अभागिनी विधवाओं के करुण-क्रन्दन से गूँज रहा है, बल्कि उन्हें इस बात पर विचार करना चाहिए कि इस अकाल वैधव्य और बलात् निर्यातन का कारण क्या है और इन कारणों को ढूँढ़ कर इस पर विचार करना चाहिए—इस बात का अनुसन्धान करना चाहिए कि वैधव्य-जीवन का परिपीड़न इतना हाहाकार क्यों उत्पन्न

कर रहा है, और इन्हीं कारणों को अपने परिवार से समूल नष्ट कर देना चाहिए। जो लोग वास्तव में सामाजिक सुधार के पक्षपाती हैं, जो लोग देश की शक्ति को सुदृढ़ एवं शक्तिशाली बनाना चाहते हैं, उन्हें अपने सात करोड़ अछूत भाइयों की दयनीय दशा पर आँसू बहाने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि उनका कर्त्तव्य यह है कि वे अपने परिवार में ऐसे वायुमण्डल का सञ्चार करें—अपने आश्रित व्यक्तियों को ऐसी आदर्श शिक्षा प्रदान करें—कि वे संसार भर के धर्म कोआदर की दृष्टि से देखें, प्राणिमात्र में ईश्वर का—परब्रह्म परमेश्वर का अस्तित्व स्वीकार करें और उनके मानवी अधिकारों की रक्षा करें। जो लोग मुसलमान गुण्डों के अत्याचारों से परिपीड़ित हों; जिन्हें पग-पग पर इन गुण्डों की नादिर-शाही का भय हो; जिनकी बहू-बेटियाँ मुसलमान गुण्डे आसानी से भगा ले जाते हों; जिनके भाई-बान्धवों को मुसलमान मुल्ला अथवा ईसाई पादरी अपने धर्म में दीक्षित करने को तुल गए हों, उन्हें मुसलमान अथवा प्रभू के उपासक ईसाइयों को गाली देने की आवश्यकता नहीं, उनसे जङ्ग करने की ज़रूरत नहीं, उन्हें ज़रूरत है इस बात की कि वे अपने परिवार में—अपने कुटुम्ब में ऐसे साधन ही उपस्थित न होने दें, जिनसे इनकी दाल गल सके और भविष्य में इन लोगों का उत्साह बढ़ सके; उन्हें चाहिए कि अपने बाप-दादों की सञ्चित सारी शक्ति इस बात में व्यय कर दें कि हम ऐसे अत्याचार करने का अवसर ही नहीं देंगे, जिनसे अन्य धर्माव-लम्बियों की शक्ति में वृद्धि हो सके। जिन लोगों को पण्डे-पुजारियों और मठाधिपतियों के विलासितापूर्ण जीवन से घृणा हो, और उनका विनाश ही जिनके जीवन का ध्येय हो, वे भी बड़ी सुगमता से अपने इस पवित्र सङ्कल्प की पूर्ति कर सकते हैं। इनके छिद्रान्वेषण करने की अपेक्षा यह कहीं उपयुक्त होगा कि प्रत्येक हिन्दू-परि-वार इन धूर्तों का—ऐसे कलुषित तीर्थस्थानों का, जहाँ ऐसे काण्ड उपस्थित होते हों, जब तक पूर्ण सुधार अथवा संहार न हो ले, तब तक इनका बहिष्कार कर देना ही समाज के लिए श्रेयस्कर है, इसी प्रकार अन्य सभी बातों का भी—अन्य सभी कुरीतियों का भी—सुधार किया जा सकता है। पर सामाजिक परिषदों चिकने-चुपड़े प्रस्तावों द्वारा अथवा विधवाओं की दयनीय दशा देखकर महामना मालवीय जी के आँसू बहाने से ही समाज का किसी प्रकार का भी उपकार होना सम्भव नहीं है—हो भी नहीं सकता। अस्तु—

हिन्दू-सङ्गठन का—अपने को शक्तिशाली, सुदृढ़ और संसार की अन्य जातियों के समक्ष जीवित प्रमाणित करने का एकमात्र यही उपाय है कि प्रत्येक हिन्दू-परिवार देश के सुधार की ठेकेदारी का प्रलोभन छोड़ कर, अपनी सारी शक्ति अपने परिवार के ही सुधार में व्यय करे। अपने परिवार का सुधार इच्छानुकूल हो लेने पर उस परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य हो जायगा कि वह अपने पड़ोसियों के सुधार में हाथ बटावे। यदि किसी नगर के एक छोटे से मुहल्ले में चार परिवारों का भी सुधार हो गया तो उस सारे मोहल्ले का सुधार हो जाना एक निश्चत-विषय (Settled fact) है, और यदि भारतवासी वास्तव में जीवित रहना चाहते हैं तो उन्हें इसी उपाय का अवलम्बन करना होगा—चाहे वे आज करें अथवा और भी क्षीण होकर !

भीख

[रचयिता—श्री० रामाज्ञा जी द्विवेदी 'समीर' एम० ए० (ऑनर्स)]

कौन सा किया था अपराध आज मैंने प्रभु ! दरशन देके मुँह आपने लिया जो मोड़।
एक दिन वह भी था जब आप आपे से, अपने निकल के चुके थे मर्यादा तोड़॥
छोड़ दी है मैंने जब अपनी निराशा प्रभु, सकते नहीं क्या आप अपनी रुठाई छोड़ ?
प्रेम की तो भीख दे दी आपने बिना ही माँगे, माँगता हूँ दर्शन की भीख और हाथ जोड़॥

त्योहारों का इतिहास

[ले० श्री० शीतलासहाय जी, बी० ए०]

हिन्दू-त्योहार इतने महत्वपूर्ण होते हुए भी, लोग इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते ! स्त्रियाँ जो विशेष रूप से इन्हें मानती हैं, वे भी अपने त्योहारों की वास्तविक उत्पत्ति से बिलकुल अनभिज्ञ हैं। कारण यही है कि हिन्दी-संसार में अब तक एक भी ऐसी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है। वर्त्तमान पुस्तक के सुयोग्य लेखक ने छः मास कठिन परिश्रम करने के

अबलाओं पर अत्याचार

[ले० श्री० जी० एस० पथिक, बी० ए०, बी० कॉम०]

इस पुस्तक में भारतीय स्त्री-समाज का इतिहास बड़ी रोचक भाषा में लिखा गया है। इसके साथ स्त्री-जाति के महत्व, उससे होने वाले उपकार, जाग्रति एवं सुधार को बड़ी उत्तमता और विद्वत्ता से प्रदर्शित किया गया है। पुस्तक में वर्णित स्त्री-जाति की पहली अवस्था, उन्नति एवं जाग्रति को देख कर हृदय छटपटा उठता है और उस काल को देखने के लिए लालायित हो जाता है। साथ ही साथ वर्त्तमान स्त्री-समाज की करुणा-जनक स्थिति का सच्चा और नग्न चित्र चित्रित किया गया है। मूल्य केवल २॥); स्थायी ग्राहकों से १॥।=) मात्र !

बाद यह पुस्तक तैयार कर पाई है। शास्त्र-पुराणों की खोज कर त्योहारों की उत्पत्ति लिखी गई है। इन त्योहारों के सम्बन्ध में जो कथाएँ प्रसिद्ध हैं, वे वास्तव में बड़ी रोचक हैं। ऐसी कथाओं का भी सविस्तार वर्णन किया गया है। प्रत्येक त्योहार के सम्बन्ध में जितनी अधिक खोज से लिखा जा सकता था, लिखा गया है। पुस्तक सजिल्द है, ऊपर आर्ट-पेपर का प्रोटेक्टिङ्ग कवर (Protecting Cover) भी दिया गया है, जिस पर देवी सावित्री का तिरङ्गा चित्र है। काग़ज़ ३२ पाउण्ड ऐण्टिक; मूल्य केवल १॥); स्थायी ग्राहकों से १=) मात्र ! पुस्तक का तीसरा संशोधित संस्करण अभी-अभी प्रकाशित हुआ है। ६,००० पुस्तकें हाथोंहाथ बिक चुकी हैं !

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

स्मृति कुञ्ज

[लेखक—'एक निर्वासित ग्रेजुएट']

नायक और नायिका के पत्रों के रूप में यह एक दुःखान्त कहानी है। प्रणय-पथ में निराशा के मार्मिक प्रतिघातों से उत्पन्न मानव-हृदय में जो-जो कल्पनाएँ उठती हैं और उठ-उठकर चिन्ता-लोक के अस्फुट साम्राज्य में विलीन हो जाती हैं, वे इस पुस्तक में भली-भाँति व्यक्त की गई हैं। हृदय के अन्तःप्रदेश में प्रणय का उद्भव, उसका विकाश और उसकी अविरत आराधना की अनन्त तथा अविच्छिन्न साधना में मनुष्य कहाँ तक अपने जीवन के सारे सुखों की आहुति कर सकता है, ये बातें इस पुस्तक में एक अत्यन्त रोचक और चित्ताकर्षक रूप से वर्णन की गई हैं। जीवन-संग्राम की जटिल समस्याओं में मानवी उत्कण्ठाएँ किस प्रकार विधि के कठोर विधान से एक अनन्त अन्धकार में अन्तर्हित हो जाती हैं एवं चित्त की सारी सञ्चित आशाएँ किस प्रकार निराशा के भयानक गह्वर में पतित हो जाती हैं—इसका जो हृदय-विदारक वर्णन इस पुस्तक में किया गया है, वह सर्वथा मौलिक एवं नवीन है। आशा-निराशा, सुख-दुख, साधन-उत्सर्ग एवं उच्चतम आराधना का सात्विक चित्र पुस्तक पढ़ते ही कल्पना की सजीव प्रतिमा में चारों ओर दीख पड़ने लगता है। इस पुस्तक में व्यक्त वाणी की अनुपम विलीनता एवं अव्यक्त स्वरों के उच्चतम सङ्गीत का एक हृदयग्राही मिश्रण है। छपाई-सफ़ाई दर्शनीय हुई है। तिरङ्गा आर्ट पेपर का Protecting Cover भी दिया गया है। सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३) स्थायी ग्राहकों से २)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

रोमाञ्चकारी पुस्तक ! ऐतिहासिक उपन्यास !!

मुग़ल-दरबार-रहस्य

उपनाम

अमृत और विष

[ले० प्रोफ़ेसर रामकृष्ण जी शुक्ल, एम० ए०]

यह ऐतिहासिक उपन्यास मुग़ल-दरबार-रहस्य के आधार पर लिखा गया है। यदि नूरजहाँ के शासन-काल के दाँव-पेच देखना हो; यदि देखना हो कि हिन्दुओं के ख़िलाफ़ मुसलमानों के शासन-काल में कैसे-कैसे भीषण षड्यन्त्र रचे जाते थे; यदि मुसलमान बादशाहों की काम-पिपासा, उनकी प्रेम-लीला और विलासिता का नग्न चित्र देखना हो, तो इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास को अवश्य पढ़िए। बहादुर राजपूत-नवयुवकों की वीरता का भी आदर्श नमूना आपको इसमें मिलेगा। जुलेखा नामधारिणी एक हिन्दू-महिला की वीरता, साहस और राज-नीतिक दाँव-पेच की सत्य घटनाएँ पढ़कर आपको दाँतों तले उँगली दबानी पड़ेगी, उस समय का सारा इतिहास बाइस्कोप के तमाशे की तरह आपकी आँखों के सामने नाचने लगेगा। यह एक ऐतिहासिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसे एक मनोरञ्जक उपन्यास के आवरण में पढ़कर प्रत्येक स्त्री-पुरुष, बच्चा और बूढ़ा अपनी ज्ञान-वृद्धि कर सकता है।

समस्त कपड़े की जिल्द से मण्डित

पुस्तक की भाषा बड़ी ललित, सुन्दर और मुहावरेदार है। पुस्तक पर दो तिरङ्गे चित्रों सहित सुन्दर प्रोटेक्टिङ्ग कवर भी चढ़ा हुआ है।

मूल्य केवल ५) रुपए

लगभग ८५० पृष्ठ की अमूल्य पुस्तक

बड़ी ही खोज से लिखी हुई मोती के समान साफ़ अक्षरों में छपी हुई है।

स्थायी ग्राहकों के लिए ३॥) मात्र

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

जननी जीवन

स्त्रियों के लिए अनमोल पुस्तक

पुस्तक की उपयोगिता नाम ही से प्रकट है। इसके सुयोग्य लेखक ने यह पुस्तक लिखकर महिला-जाति के साथ जो उपकार किया है, वह भारतीय महिलाएँ सदा स्मरण रक्खेंगी। घर-गृहस्थी से सम्बन्ध रखने वाली प्रायः प्रत्येक बातों का वर्णन पति-पत्नी के सम्वाद-रूप में किया गया है। लेखक की इस दूरदर्शिता से पुस्तक इतनी रोचक हो गई है कि इसे एक बार उठाकर छोड़ने की इच्छा नहीं होती। पुस्तक पढ़ने से "गागर में सागर" वाली लोकोक्ति का परिचय मिलता है।

६,००० प्रतियाँ हाथोंहाथ बिक चुकी हैं!

इस छोटी सी पुस्तक में कुल २० अध्याय हैं, जिनके शीर्षक ये हैं :—

(१) अच्छी माता
(२) आलस्य और विलासिता
(३) परिश्रम
(४) प्रसूतिका स्त्री का भोजन
(५) आमोद-प्रमोद
(६) माता और धाय
(७) बच्चों को दूध पिलाना
(८) दूध छुड़ाना
(९) गर्भवती या भावी माता
(१०) दूध के विषय में माता की सावधानी
(११) मल-मूत्र के विषय में माता की जानकारी
(१२) बच्चों की नींद
(१३) शिशु-पालन
(१४) पुत्र और कन्या के साथ माता का सम्बन्ध
(१५) माता का स्नेह
(१६) माता का सांसारिक ज्ञान
(१७) आदर्श माता
(१८) सन्तान को माता का शिक्षा-दान
(१९) माता की सेवा-शुश्रूषा
(२०) माता की पूजा

इस छोटी-सी सूची को देखकर ही आप पुस्तक की उपादेयता का अनुमान लगा सकते हैं। इस पुस्तक की एक प्रति प्रत्येक सद्गृहस्थ के घर में होनी चाहिए। साफ़ और सुन्दर मोटे काग़ज़ पर छपी हुई इस परमोपयोगी सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १।); स्थायी ग्राहकों से ॥≈) मात्र! पुस्तक तीसरी बार छपकर तैयार है!

'चाँद' कार्यालय,
इलाहाबाद

नेत्राञ्जन

[ले० प्रोफ़ेसर कन्हैयाप्रसाद सिंह जी, एम० ए०]

विधवा-आश्रम का मन्त्रि-पद स्वीकार कर मैं विनोद बाबू के व्यङ्गों का लक्ष्य बन गया। जब कभी भेंट होती तो वे ऐसे वाक्यों से मेरा स्वागत करते कि जिनको सुनकर मैं भीतर ही भीतर कटकर रह जाता। यदि कोई दूसरा व्यक्ति मुझे इस प्रकार छेड़ता, तो मैं उसकी अच्छी ख़बर लेता, अथवा यों कहिए कि मैं उससे घोर वाक्-युद्ध ठानता और सैकड़ों युक्तियों द्वारा यह सिद्ध करके दिखला देता कि वर्त्तमान परिस्थिति में समाज को और गहरे पतन से बचाने के लिए विधवा-आश्रमों की कितनी आवश्यकता है, जिससे विपक्षी को फिर जीभ हिलाने का साहस तक न हो सकता। पर विनोद बाबू से मेरी लाचारी थी। विनोद बाबू मेरे स्कूल-काल के सहपाठी और मित्र होकर भी मेरे सीनियर थे और मैं उनसे सङ्कोच खाता था। जब कभी किसी विषय पर वाद-विवाद होता तो मैं उनके सामने दबकर ही बोलता। किन्तु जब उस दिन विनोद बाबू ने भेंट होते ही जैसे मेरे भावों की एकदम उपेक्षा करते हुए ताना दिया—'कहिए मन्त्री जी, आज कोई नई चिड़िया फँसी या नहीं?' तो मैं ऊब उठा। अब और शील-सङ्कोच के फेर में पड़कर अपने व्यक्तिगत विचारों को स्वतन्त्र रूप से उन पर प्रकट न करना, मुझे अनुचित प्रतीत होने लगा। मैंने कुछ रुखाई और दृढ़ता से कहा—'विनोद बाबू, वैसे हँसी में आप जो चाहे कह लीजिए, मुझे कुछ आपत्ति नहीं होगी। पर मैं अपने मत पर दृढ़ हूँ और आप से भी अनुरोध करता हूँ कि विषय को गम्भीरता-पूर्वक सोचकर किसी सिद्धान्त पर पहुँचें। मुझे विश्वास है कि यदि आप परम्परा को अनुचित महत्व नहीं देंगे तो आपको मेरे विचारों से सहानुभूति हो ही जायगी।'

विनोद बाबू ने हँसकर कहा—आज तो तुम जैसे मुझे दीक्षा देने को तुल गए हो। पर यह तुम्हारा भ्रम है कि मैं परम्परा का अन्ध-भक्त हूँ। तुमने जो यह समाज की बहकी स्त्रियों को चराने और रूठी स्त्रियों को मनाने का ठेका लिया है, इसका स्त्री-समुदाय की मनोवृत्ति पर कैसा असर होगा, इसे भी कभी सोचा है? स्त्रियाँ स्वभाव से ही चञ्चल हुआ करती हैं, फिर उनके लिए सभाओं में चिल्ला-चिल्लाकर रोना, उनके लिए नगर-नगर में विधवा-आश्रम खोलना, उनकी चञ्चलता से सहानुभूति करना है—उनको कर्त्तव्य-पथ से भीरु बनाना है। पुराने रिवाजों के अनुसार उन पर जो बन्धन डाले जाते हैं, उनके साथ जो कड़ाइयाँ की जाती है, वे क्षम्य हैं; क्योंकि इन सबके मूल में यही सिद्धान्त है कि उन्हें अपने शेष जीवन के उत्तरदायित्व का बोध होता रहे। पर नई रोशनी के बाबू लोग इसे अन्याय समझते हैं। मेरी बुद्धि में इस विचार के दो कारण हैं, एक तो पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क से हमारे नव शिक्षित भाइयों के नैतिक आदर्श का पतन और दूसरा उनके हृदय की अनुचित कोमलता।

मैंने आवेश में आकर उत्तर दिया—विनोद बाबू, कदाचित् आपको समाज की भीतरी अवस्था से परिचय नहीं है। यदि आपको वास्तविकता का पता रहता तो आपके ऐसे विचार कभी न होते। भला आज विधवाओं के साथ जैसी कठोरता के व्यवहार किए जा रहे हैं, उन्हें कौन अन्याय नहीं कहेगा? आप समाज की बागडोर थामने वाले भद्र नामधारियों को उच्च-नैतिक आदर्श के भक्त समझते हैं, यह आपकी सरासर भूल है। आपको यह जानने की आवश्यकता है कि ये ही लोग हमारी देवियों के अकाल-वैधव्य को लाने वाले तथा उनके धर्माचरण को नष्ट करने वाले हैं। पर जब ये ही अपने न्यायासन पर विराजमान होते हैं तो ढकोसला बनाए रखने के लिए उनके लिए कठिन से कठिन दण्ड का विधान करते हैं। ऐसे अन्यायियों से पीड़ित अबलाओं को आश्रय देना, उनको अपने स्वत्वों का बोध कराना, मैं अपना नितान्त कर्त्तव्य समझता हूँ। ऐसा करना हृदय की अनुचित कोमलता का परिचायक नहीं है

बल्कि ऐसा न करना नृशंसता का द्योतक है। आपने यह भी बिना सोचे कह दिया कि नव-शिक्षित दल का नैतिक आदर्श नीचे गिर गया है। हमारा आदर्श ज्यों का त्यों है। मगर हम आदर्श को व्यवहार में लाना चाहते हैं, आदर्श का स्वाँग नहीं रचना चाहते।

विनोद बाबू ने फिर व्यङ्ग की शरण लेकर कहा—तुम स्त्रियों के माया-जाल में फँस गए हो। कुछ विधवाओं के मुँह से समाज की झूठी शिकायतें सुनी होंगी, बस ले उड़े। क्या तुमने स्त्रियों को बात-बात में रोते नहीं देखा है?

इतने में हम दोनों स्टेशन पहुँच गए। जेठ की कड़ी दुपहरी थी, गाड़ी के आने में घण्टे भर की देर थी। विनोद बाबू को इसी गाड़ी से इलाहाबाद जाना था। मैं तो हर ट्रेन के समय इस उद्देश्य से स्टेशन जाता था कि कहीं समाज की पद-दलित किसी अबला को विक्षिप्त पाऊँ तो उसे आश्रम में शरण दूँ। विनोद बाबू से चौराहे पर मेरी भेंट हो गई थी। स्टेशन पर मुसाफ़िरों के शोर-ग़ुल के कारण विनोद बाबू के साथ जो विचार-विनिमय हो रहा था, उसमें बाधा पड़ गई। हम दोनों एक दूसरे को अपने मत की श्रेष्ठता दिखलाना चाहते थे। मैंने विनोद बाबू से कहा—अभी तो गाड़ी के आने में विलम्ब है। चलिए गोदाम में चलकर बैठें। वहाँ कोई आदमी नहीं दीखता।

हम लोग जल्दी-जल्दी वहाँ पहुँचे। स्थान की निर्जनता देखकर हम दोनों को कुछ सन्तोष हुआ। बस, बोरों की ढेर पर गाढ़ी नींद में सोए हुए एक कुली को छोड़कर वहाँ कोई जीवधारी नहीं था। हम दोनों अपनी धुन में मस्त थे, अतएव बड़ी तत्परता से एक बेञ्च पर बैठकर बहस के लिए तैयार हो गए। मैंने विनोद बाबू के अन्तिम व्यङ्ग का उत्तर देना ही चाहा था कि मेरी दृष्टि बरामदे के दूसरे किनारे की ओर दौड़ गई। मैंने देखा, हम लोगों के सामने ही एक मलिनवस्त्रा युवती सिर नीचा किए दीवार के सहारे बैठी है। मेरे हृदय में सन्देह का उदय हुआ। मैंने विनोद बाबू का ध्यान उधर आकर्षित करते हुए उससे पूछा—'आप कौन हैं?' युवती ने धीरे से सिर उठाकर मेरी तरफ़ देखा। युवती का सौन्दर्य देखकर मैं विस्मित होकर रह गया। विनोद बाबू मेरा मुँह ताकने लगे। मेरे हृदय ने कहा—अरे, यह तो किसी निर्दय ने सम्पूर्ण खिले गुलाब के पुष्प को जड़ से तोड़ और मसल कर कूड़े-करकट में फेंक दिया है! शरीर की उज्ज्वल कान्ति चिन्ता की मलिन छाया पड़ने पर भी मेघ को चीरकर छिटकने वाली चाँदनी की तरह चमक रही है! सिन्दूरहीन भाल, बिखरे काले-काले लम्बे बाल, कङ्कणों से शून्य सुकुमार कलाइयाँ—हाय, इसका पाणि-पल्लव हाथ में लेने वाले किस छलिया ने इसे ठगा है! मैंने बड़े प्रेम और सहानुभूति के स्वर में फिर पूछा—'आप कौन हैं?' कुछ देर तक युवती मुझे एकटक निहारती रही। उसकी आँखों में आँसू सूख गए हों, ऐसा मालूम पड़ता था। मेरे मुख का भाव देखकर उसे मुझ पर कुछ विश्वास-सा हुआ। उसने नैराश्य के स्वर में धीरे से कहा—'बाबू जी, मैं एक अबला हूँ।' इस उत्तर से सन्तुष्ट न होकर मैंने फिर प्रश्न किया—'क्या आप हम लोगों पर विश्वास रखकर अपना पूरा परिचय बतला सकती हैं?'

युवती—'मेरा पूरा परिचय एक पूरी करुण कहानी है, उसे क्या सुनाऊँ?' वाक्य समाप्त होते-होते युवती की आँखें डबडबा आईं और उसका कण्ठ अवरुद्ध हो गया।

मैंने फिर अनुरोध किया—तो फिर आप अपना वृत्तान्त अवश्य कह डालें। हम लोग आपकी यथाशक्ति सहायता करेंगे।

युवती की आँखों से आँसू निकल कर उसके कपोलों पर बहने लगे? उसने रोने के स्वर में कठिनता से कहा—नहीं बाबू जी, मैं आपको अपने लिए कष्ट नहीं देना चाहती। परमात्मा आपका भला करें।

मैं समझ गया कि मेरे सहानुभूति के शब्दों ने युवती की दुरवस्था-जनित वेदना को और भी तीव्र कर दिया है। उसकी मुखाकृति से यह स्पष्ट झलक रहा था कि मेरा 'सहायता दान' का वचन उसके घायल स्वाभिमान को तीर की तरह लगा है। वास्तविक निरावलम्ब अवस्था भी आत्म-गौरव को उतना नहीं खलती, जितना परावलम्बन की निरी कल्पना! युवती के हृदय की कोमलता को ध्यान में रखते हुए मैंने बड़े स्नेह से कहा—'आप मुझे पराया समझती हैं, इससे मेरे जी को दुख हो रहा है। धर्म की दृष्टि से मैं आपको अपनी बहिन समझता हूँ, अतएव आपके कष्टों के निवारण

का प्रयत्न करना तो मेरा कर्त्तव्य ही है। आप मेरे सामने अपने जीवन की दुर्घटनाओं का वर्णन करने तथा मुझसे आपकी जो कुछ सेवा हो सकेगी, उसे स्वीकार करने में तनिक भी ग्लानि न मानें।' मेरे इस कथन का युवती पर अच्छा असर हुआ। उसके मुख की चेष्टा से मैंने अनुमान किया कि वह मेरी प्रार्थना पर कुछ सोच रही थी। कुछ देर बाद उसने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर हृदय के आवेग को रोका, आँचल से आँसू पोंछे और कुछ सँभल-कर बैठी। फिर मानों मेरा मन रखने के लिए उसने मेरी ओर देखते हुए इस प्रकार अपना परिचय देना प्रारम्भ किया :—

"बाबू जी, मेरा घर इसी ज़िले के अन्तर्गत है। मैं जाति की ब्राह्मणी हूँ। आठ ही वर्ष की उम्र में मेरा विवाह हुआ और सोलहवें वर्ष में मैं काल-चक्र की महिमा से विधवा हो गई। मेरे पतिदेव को यक्ष्मा का रोग हो गया था। वैधव्य-काल से लेकर आज तक मैंने पति-शोक के भार को वहन करती हुई जिन बाहरी दुखों को भोगा है, उनका वर्णन ही मेरा पूर्ण परिचय है।"

युवती सहसा रुक गई। वह आगे का हाल कहना चाहती थी, पर आँसू कलेजे से उमड़ कर उसके कण्ठ और आँखों में पहुँच चुके थे। मैंने सान्त्वना देते हुए कहा—आपको धीरज धारण करना चाहिए। आप पर जो कुछ बीत चुका है, वह तो बीत ही चुका, अब आप भविष्य के लिए चिन्ता न करें।

युवती थोड़ी देर तक मौन रही, फिर रुँधे हुए कण्ठ से कहने लगी—"बाबू जी, मेरे प्राणाधार के परलोक-गमन के बाद कुछ दिनों तक घर में दारुण शोक छाया रहा। घर में तीन ही प्राणी बच रहे थे। बाहर दरवाज़े पर पण्डित जी सिर थामे बैठे रहते, भीतर माता जी और मैं विलाप करतीं। पण्डित जी का अनुज सहोदर छिन गया था; माता जी का लाल उठ गया था; इस निर्धनी का सर्वस्व खो गया था। पर जब दिन-रात हाथ-पैर पटकते रहने पर भी क्रूर काल नहीं पसीजा तो हम लोगों ने झूठी आशा को छोड़कर नैराश्य की शरण ली। किन्तु मेरा तथा माता जी का नैराश्य असन्तोष का था, अतएव हम दोनों अशान्त ही रहीं। हाँ, पण्डित जी ने पूर्ण रूप से सन्तोष ग्रहण कर लिया और गृहस्थी के धन्धों में लग गए। पण्डित जी ने स्वयं शोक से छुट्टी लेकर हम लोगों को समझाना शुरू किया। उन्होंने कितनी कथाएँ कहीं, कितने दृष्टान्त दिए और कितने शास्त्रोक्त वचनों के अर्थ बतलाकर इस संसार की क्षणभङ्गुरता सिद्ध की, यह मुझे स्मरण नहीं है। मेरे कहने का तात्पर्य यही है कि पण्डित जी बहुत यत्न करने लगे कि हम लोग भी शोक को भूलकर घर के काम-धन्धों में लग जाएँ। समय की गति की सहायता मिल जाने से पण्डित जी को अपने प्रयत्न में धीरे-धीरे सफलता मिलने लगी। माता जी को और मुझको भी सन्तोष-पथ पर अग्रसर होना पड़ा। हम लोग पहले की तरह घरेलू कामों में जी बहलाने लगीं। पर सच पूछिए तो यह जी बहलाना नहीं था, दिन काटना था। पण्डित जी को हम लोगों की—विशेष कर मेरी—उदासीनता से दुख होता था। इसलिए वे तरह-तरह के ढङ्ग लगा कर मेरी उदासीनता दूर करने के प्रयास में प्रविष्ट हुए। भीतर आते ही वे माता जी से मेरे सम्बन्ध में भाँति-भाँति के प्रश्न करते—'दुलहिन ने भोजन किया या नहीं? दुलहिन का स्वास्थ्य कैसा है? उसकी साड़ी तो फटी नहीं है?' मैं पण्डित जी की आन्तरिक इच्छा के विरुद्ध चिन्तित भाव बनाए रखने में कर्त्तव्य की हानि तो समझती थी, पर लाख चेष्टा करने पर भी मुख पर उल्लास नहीं ला सकती थी। तथापि मैंने पण्डित जी को अपनी चिन्ता से मुक्त करने के उद्देश्य से अपने को इतना योग्य अवश्य बना लिया था कि दौड़-धूप कर घर के काम कर सकती थी; और कभी-कभी मुझे पण्डित जी को सन्तुष्ट हो जाने के लिए मेरा इतना ही करना काफ़ी जान पड़ता था। आगे चल कर मैंने देखा कि पण्डित जी अब एक नए ही ढङ्ग से मुझे ख़ुश करने की चेष्टा कर रहे हैं। ज़मींदार बाबू के यहाँ से जब आते तो सीधे माता जी के पास चले जाते और कोई न कोई चर्चा चला कर मेरी प्रशंसा करने लगते। भोजन के समय माता जी से कहते—मैया, दुलहिन के हाथ की तरकारी बहुत अच्छी बनती है। तुमने इतने दिनों तक तरकारी बनाया, पर दुलहिन की बनाई तरकारी में जो स्वाद है, वह तुम्हारी बनाई में कहाँ?

"माता जी मेरी इस प्रशंसा को सुन कर गर्व करतीं, पर मेरे वैधव्य का स्मरण हो आने से उनका गर्व तुरन्त शोक में परिणत हो जाता और उनकी आँखों से

आँसू की दो बूँदें टपक पड़तीं। कभी-कभी पण्डित जी का यह उद्योग अनावश्यक प्रतीत होता और मुझे कुछ झुँझलाहट-सी हो जाती; पर दूसरे ही क्षण यह भाव हृदय में दौड़ जाता कि पण्डित जी मेरा शोक भुलाने के लिए ही इतना प्रयत्न कर रहे हैं।

"पर बाबू जी, कुछ दिन और बीतने के बाद पण्डित जी की एक नई चेष्टा देखने में आई। वे अपने पूर्व-अभ्यास के प्रतिकूल आवाज़ दिए बिना ही बेधड़क अन्दर चले आते, जिससे कोठरी में भागते-भागते मेरी जान पर आ बीतती। तब मैं बहुत करके कोठरी में ही बैठने लगी। पर जब कभी माता जी पड़ोस में जातीं और पण्डित जी दरवाज़े पर रहते, तो वे कोई न कोई वस्तु ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उस कमरे में घुस जाते जहाँ मैं बैठी होती। मैं उनको देखते ही कोने में छिपने को दौड़ती तो वे अनावश्यक आश्चर्य प्रकट करके लौट जाते। बड़ी दीदी (पण्डित जी की स्त्री) का देहान्त हो जाने के बाद माता जी को घर के काम-काज में सहायता देने का भार मेरे ही ऊपर आ पड़ा था, अतः रसोई आदि के समय मेरा आँगन में घूमना-फिरना अनिवार्य हो जाता था। ऐसी परिस्थिति में पण्डित जी की समझ में यह मोटी सी बात क्यों नहीं आती कि वे बेधड़क भीतर घुस जाते हैं? यह प्रश्न प्रायः मेरे दिल में उठा करता और इसके उत्तर में पण्डित जी के प्रति सन्देह का भाव उदय हो जाता। पर वह तत्काल विलीन हो जाता। मुझे अपने आप पर क्रोध होता; मुझे अपनी क्षुद्रता ही इस सन्देह का कारण जान पड़ती। बाबू जी, क्या देवालय में भूत की शङ्का हो सकती है? क्या यज्ञाग्नि से गाँव के जल जाने का सन्देह भी किसी को होगा? पर हाय! पण्डित जी की चेष्टा कुछ ऐसी अस्वाभाविक होने लगी कि मेरा क्षीण सन्देह विश्वास के रूप में बदल गया। मैं अच्छी तरह समझ गई कि पण्डित जी पाप के गर्त्त में गिरने के लिए मार्ग ढूँढ़ रहे हैं। अब पण्डित जी कभी-कभी सन्ध्या के अँधेरे में भी मेरे कमरे में कोई चीज़ लाने के बहाने चले आते और मुझे घबरा कर भागती देख आश्चर्य का भाव दिखला, पर कुछ उदास-सा होकर, लौट जाते। कई बार तो ऐसा हुआ कि मेरा उनसे स्पर्श होते-होते बच गया। मैं भविष्य की चिन्ता में पड़ गई। वह मुझे बड़ा ही भयङ्कर दीख पड़ता था। मैं रात-दिन परमात्मा से अपनी धर्म-रक्षा के लिए प्रार्थना करती रहती। एक दिन पण्डित जी ने माता जी से आकर कहा—मैया, मालकिन दुलहिन को अपने यहाँ लड़कियों को सीने-पिरोने की शिक्षा देने के लिए कुछ दिन तक रखना चाहती हैं। बाबू साहब ने डोली भिजवा दी है।

"माता जी ने भोलेपन से कहा—'क्या हर्ज है बेटा, जब तुम्हारी इच्छा है तो दुलहिन को भेज दो। वहाँ अपनी वयस वालियों के साथ रहेगी तो उसका जी भी लगेगा।' मैं डोली में सवार हुई और ज़मींदार बाबू की हवेली में पहुँचाई गई। पहले तो मुझे पण्डित जी की इस नई चाल का कुछ अर्थ ही नहीं जँचा। मैं कुछ न समझ सकी कि पण्डित जी क्योंकर मुझे ज़मींदार बाबू के यहाँ भेज रहे हैं। पर वहाँ कुछ दिन रहने के बाद मेरा जो अनुभव हुआ उसे विचारने पर मुझे पण्डित जी के नीच उद्देश्य का पता चल गया। वे मुझे वैभव का सुनहरा रङ्ग और विलास का मतवाला ढङ्ग दिखला कर मेरी विरक्ति को तोड़ना चाहते थे। उन्होंने जान-बूझ कर मुझे प्रलोभनों में फेंक दिया था। वे चाहते थे कि मेरी प्रवृत्ति ही पापोन्मुख हो जाय जिससे उनको अपनी दुष्ट कामना की पूर्ति में कठिनाई न हो। माता जी के घर में रहने तथा मुझसे अनुज-बधू का सम्बन्ध होने के कारण वे मुझे विचलित करने के सभी साधनों का उपयोग नहीं कर सकते थे। एक बात और थी। वे अपनी सदाचार-सुख्याति को भी बड़ी ईर्ष्या से सुरक्षित रखना चाहते थे। वे ज़मींदार बाबू के पुरोहित, सजातीयों के नेता और ग्राम के प्रतिष्ठित विद्वान् हैं। उद्दण्डता से कुछ कर बैठने में कलङ्क का भय था, चतुरता से चलने में दोनों काम निकलते थे। वे इसीलिए तरह-तरह की चाल चलते थे। हाय री दुर्बुद्धि!"

युवती हठात् चुप हो गई। उसका मुख घृणा का व्यञ्जक हो रहा था। उसके फड़कते हुए होठों से मानों पुरुष-जाति के प्रति धिक्कार के अनगिनत शब्द निकल रहे थे। वह ऐसी मुद्रा से मेरी ओर देखने लगी कि मैंने लज्जा से सिर नीचा कर लिया। पर कुछ ही क्षणों के बाद उसका भाव बदल गया और वह पहले के स्वर में बोली—

"बाबू जी, ज़मींदार बाबू के यहाँ दो ही चार दिन रहने के बाद मुझे विश्वास हो गया कि यहाँ का वातावरण

1929-01 -Chand Magazine (1333)

दूषित है। अन्तःपुर में मैंने जिस दासी को देखा, वही नवयस्का, आभूषणों से लदी हुई और रूपवती। उनके हाव-भाव, रहन-सहन और बातचीत को देखकर मैं क्षुब्ध हो उठी। मुझे अपने भविष्य की चिन्ता बेतरह सताने लगी। पर प्रकाश में मुझे वहाँ के लोगों की रुचि रखने के लिए प्रसन्न ही रहना पड़ता। थोड़े दिनों में मैं सभी दासियों से हिल-मिल गई। इसके बाद मुझे इन दासियों के द्वारा भूषण, वस्त्र और द्रव्य का प्रलोभन कितनी बार और कितने ढङ्ग से दिया गया, उसका वर्णन करने के लिए मुझमें यथेष्ट धैर्य नहीं है। हाँ, इतना अवश्य था कि मेरे स्वभाव से परिचित हो जाने के कारण कोई दासी मुझसे खुल कर अपना मतलब नहीं कह सकती। कभी कोई आकर कहती—'मिसराइन जी, बड़े बाबू बड़े हौसले के आदमी हैं। उनसे क्यों नहीं पत्र लिख कर गहनों के लिए प्रार्थना करती हो? विधवा हो, कुछ आगे का ध्यान रख कर पूँजी कर लो। तुम्हारे भी क्या स्वामी हैं कि उन पर भरोसा करोगी! बड़े बाबू ढल गए तो निहाल हो जाओगी। दो ही चार गहने ऐसे बनवा देंगे कि तुम्हें घर से सरोकार न भी रहे तो तुम उनको बेच कर जीवन भर निर्वाह कर लो।' कभी दूसरी आकर कहती—'देखो मिसराइन जी, आज त्योहार है। तुम भी एक बढ़िया साड़ी के लिए सरकार में अर्ज़ी भेजो। रँगी-रँगाई साड़ी पहनना पसन्द नहीं है तो एक सफ़ेद रेशम की साड़ी माँग भेजो। उनके लिए यह कोई बड़ी चीज़ नहीं है, पर तुम्हारे लिए तो एक रखने की चीज़ हो जायगी।' दासियों को तो मैं यह कह कर टाल देती कि मुझे गहने-कपड़ों से कुछ मतलब नहीं है, मेरे भाग्य में उनका भोग बदा होता तो मेरा माँग ही क्यों जलता? पर जब खुली तौर पर उपहार के रूप में मुझे कोई वस्तु दी जाती तो मुझे पण्डित जी के डर से उसे स्वीकार करना पड़ता। पण्डित जी ने मुझे यहाँ आने ही के पहले सावधान कर दिया था—'देखो दुलहिन, बाबू साहब की रुचि के प्रतिकूल आचरण मत करना। वे जो कुछ देवें, उसे स्वीकार कर लिया करना।'

"माता जी को इसी बीच में उन्होंने मायके भेज दिया। मैं भाग कर दुखड़ा सुनाती तो किसको? पण्डित जी प्रति-दिन पूजा करने के लिए हवेली आते तो बड़ी मालकिन से देर तक घुल-घुल कर बातें करते। उनको प्रसन्न करने के लिए केवल गोपी-विरह-सम्बन्धी श्लोकों को ही पढ़कर सुनाते, उनका अर्थ बतलाते। उनके पारस्परिक बर्ताव से अब मुझे सारी बातें पूरी तौर से समझ में आगईं। पण्डित जी मुझे वहाँ रख कर ज़मींदार बाबू को भुलाए रखना चाहते थे। बड़ी मालकिन भी मेरे रहने से अपना रास्ता साफ़ देखती थीं।

"बाबू जी, जब मैं प्रलोभनों के वश न हुई तो एक नई चाल चली गई। मेरा डेरा हवेली के पिछले खण्ड में स्नानागार के बग़ल वाली कोठरी में दे दिया गया और मेरे साथ सोने के लिए एक दासी नियुक्त कर दी गई। मैं समझ गई कि बाबू साहब दुस्साहस की चरम-सीमा लाँघना चाहते हैं। मैं सशङ्क रहने लगी। मैं भाग जाना चाहती थी, पर दासी की उपस्थिति से लाचार हो जाती। एक रात दासी नहीं आई। मैंने अच्छा सुयोग पाकर निश्चय किया कि भाग चलूँ और कुएँ में कूद कर सारी विपत्तियों से मुक्त हो जाऊँ। बारह बजने को था। मैं निकल कर भाग जाना ही चाहती थी कि एक ऐसी दुर्घटना हुई, जिसके स्मरण-मात्र से मेरा हृदय ग्लानि से भर आता है। बाबू साहब का मुसलमान-सईस खिड़की के द्वार से कमरे में घुस आया। उसे इतनी हिम्मत देने वाला कौन था? जब यह प्रश्न मेरे दिल में उठता है, तो बस एक ही उत्तर आता है—चरित्र-हीनता के दोष से दूषित ज़मींदार बाबू के दरबार का वायु-मण्डल! बाबू जी, उस दुष्ट मुसलमान ने कोठरी में प्रवेश कर × × ×"

करुण-कथा के इस स्थल पर पहुँच कर युवती ने दीर्घ साँस ली। वह ग्लानि और शोक से अभिभूत हो गई। वह आगे का वृत्तान्त कहना चाहती थी, पर कह नहीं सकती थी। ऐसा प्रतीत होता था कि उसका हृदय व्यथाग्नि से जल रहा है। मानों उसने कलेजे को ठण्ढक पहुँचाने के लिए ही बग़ल में रक्खे लोटे को उठाया और दो-तीन घूँट पानी पीकर एक ठण्ढी साँस ली!

मैंने कहा—'आपके पास ठण्ढा जल तो न होगा, मँगवा दूँ?' युवती ने लोटे को नीचे रखते-रखते उत्तर दिया—'बाबू जी, यह जल बहुत ठण्ढा है।' यह कह कर वह फिर आत्म-कथा में प्रवृत्त हुई। बोली—"हाँ, उस दुरात्मा के प्रवेश करते ही मैं मारे भय के एक क्षण के लिए संज्ञा-शून्य-सी हो गई। पर दूसरे क्षण मुझे

ही अपने भीतर एक अज्ञात शक्ति की प्रेरणा का अनुभव हुआ। मैंने अपूर्व साहस से उसका सामना किया और दाँतों के प्रयोग से उसके सारे प्रयत्न विफल कर दिए। घर में कुछ हल्ला-सा हुआ। वह नारकीय पकड़े जाने के डर से खिड़की से कूद कर भागा। ड्योढ़ी के पिछवाड़े वैद्यराज का मकान है। उनके दरवाज़े पर घर के पाँच-सात व्यक्ति लेटे नींद को बुला रहे थे। उसको भागते देख सब उठ पड़े और 'चोर-चोर' कह कर शोर मचाते हुए उसका पीछा किया। ड्योढ़ी और गाँव के प्रायः सभी लोग जग गए। वह दुष्ट बात की बात में पकड़ लिया गया। ड्योढ़ी पर लोगों की भीड़ लग गई। ज़मींदार बाबू दो-चार गण्य-मान्य व्यक्तियों के साथ मेरी कोठरी की जाँच में आए। उस समय मेरी दशा विचित्र हो रही थी। मुझसे बिना कुछ पूछताछ किए ही सब वापस चले गए। मैं रात-भर जड़वत् बैठी रह गई।

"बाबू जी, दूसरे दिन ज़मींदार बाबू की कचहरी में उस मुसलमान-सईस ने अपनी सफ़ाई में कहा कि उसका मुझसे महीनों का सम्बन्ध है। मेरे बयान की तो आवश्यकता भी न समझी गई। बाबू साहब अपनी असफलता के कारण ईर्ष्या के वशीभूत हो गए थे, इसलिए उन्हें उस नराधम के कथन पर विश्वास होने में देर न लगी। एक साधारण स्त्री की इतनी मजाल कि मेरा तिरस्कार करके मेरे क्षुद्र नौकर की कामना पूर्ति करे—कदाचित् इसे अपना घोर अपमान समझ कर ही बाबू साहब ने मुझे दोषी ठहरा कर मेरा अभियोग जातीय पञ्चायत में अन्तिम निर्णय के लिए भेज दिया। बाबू जी, हर एक मनुष्य दूसरे को अपने ही जैसा समझता है।

"जातीय पञ्चायत ने निर्णय दिया कि जब तक मैं पण्डित जी के घर से न निकाल दी जाऊँ, तब तक पण्डित जी जाति से बहिष्कृत रहेंगे। पञ्चों ने कहा—"पण्डित जी, प्रस्तुत मामले से कम गम्भीर मामलों में भी आपने कई बार 'जातिच्युत' का निर्णय दिया है। आशा है, आप इस कुलटा को घर से निकाल कर अपने सिद्धान्त की रक्षा करेंगे।" पण्डित जी को इस निर्णय का विरोध करने का साहस नहीं हुआ। मेरा अनुमान है कि उन्होंने अपने जातीय नेतृत्व को बनाए रखने के लिए पञ्चों के निर्णय को सिर-आँखों पर रख लिया। पण्डित जी ख़ूब समझते थे कि मुझ पर जो दोष लगाया गया था, वह झूठा था। पर मामला इतना तूल हो गया था, इतनी हद तक पहुँच चुका था कि पण्डित जी से कुछ करते-धरते नहीं बनता था।

"बाबू जी, जिस दिन निर्णय सुनाया गया, मैंने उसी रात को वहाँ से प्रस्थान कर दिया। तीन दिन की लम्बी सफ़र तय करके यहाँ आ गई हूँ। कहाँ हूँ, कहाँ जा रही हूँ, यह नहीं जानती। लज्जा, क्षोभ और ग्लानि के कारण मैंने अपनी विपत्ति कभी किसी परिचित व्यक्ति से नहीं कही। आपने मुझसे बहिन का धार्मिक सम्बन्ध जोड़ लिया, इसलिए आपके अनुरोध को न टाल सकी।"

आत्म-कथा समाप्त करते-करते युवती की आँखें मुँद गईं। कोई एक मिनट के बाद उसने फिर हम लोगों की तरफ़ देखा। विनोद बाबू ने उसके मनोभावों की कुछ भी परवाह न करते हुए मानो उसकी परीक्षा लेने के उद्देश्य से कहा—आप भविष्य की चिन्ता न करें। आपको हिन्दू-जाति में रखने में हम लोगों को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। इतना ही नहीं, यहाँ तो जिन विधवाओं की इच्छा होती है, उनका विवाह भी कर दिया जाता है।

विनोद बाबू देखना चाहते थे कि उसके आन्तरिक भाव कहाँ तक शुद्ध हैं, उसका यह सब ढङ्ग त्रिया-चरित्र तो नहीं है।

पर उनके इस भूमिकाबद्ध प्रस्ताव को सुनते ही युवती फूट-फूट कर रोने लगी। जब उतना आँसू बह चुका, जितना हृदय के एक आवेग में बहना चाहिए, तब वह आकाश की ओर ताकने लगी। आकाश को थोड़ी देर तक टकटकी लगा कर देखते रहने के बाद उसने हम लोगों पर दृष्टि डाली। उसकी साँस वेग से चल रही थी। उसके होठ बिलकुल सूख गए थे, क्योंकि वह रह-रह कर उसे जीभ से चाटती थी। एकाएक उसने लोटे को उठा कर फिर दो-तीन घूँटें लगाईं। अनन्तर बड़ी गम्भीरता से बोली—बाबू जी, आज आपको हम अबलाओं के लिए ऐसा प्रबन्ध करने को भी लाचार होना पड़ा?

इसके बाद मैंने विधवा-आश्रम में रहने से क्या लाभ है, इसको थोड़े शब्दों में समझा कर युवती से कहा—आप से मेरा अनुरोध है कि वहीं चल कर रहें।

आपके सम्बन्धियों को भी हम लोग समझा-बुझाकर आपको घर में रखने के लिए राज़ी कर लेंगे।

युवती ने मेरे कथन को बड़े ध्यान से सुना। वह कृतज्ञ दीख पड़ती थी, पर उसकी कृतज्ञता कुछ और ही प्रकार की थी। वह अपनी सहायता के लिए हम लोगों को मानों बिलकुल अयोग्य समझ रही थी? वह हम लोगों को दया की दृष्टि से देख रही थी—ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार बीच नदी में डूबता हुआ कोई सहृदय वीर उसे बचाने के विफल प्रयास में किनारे पर खड़े चिल्लाने वाले छोटे बालकों को देखता है!

युवती के कुछ देर तक मौन रहने पर मैंने फिर कहा—आपको मेरी प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ेगी। आप आश्रम में चल कर रहें!

मैंने देखा, युवती का कलेजा फिर उमड़ आया, पर इस बार आँसुओं के न निकलने के कारण उसे अधिक कष्ट हो रहा था। आँखों से आग-सी निकल रही थी, साँस जैसे फूल रही थी।

मैंने पूछा—कहिए तो गाड़ी ले आऊँ, आश्रम यहाँ से दूर है। युवती बेसुध भाव से मुझे देख रही थी। वह 'हाँ' या 'नहीं' कुछ नहीं कहना चाहती थी।

मैं समझ गया कि उसे घोर सन्ताप हो रहा है। अतएव अब उससे कुछ पूछना उचित नहीं! आश्रम में शीघ्र पहुँचाना ही कर्त्तव्य है।

विनोद बाबू और मैं तेज़ी से स्टेशन आए। पर तब तक वहाँ कोई गाड़ी नहीं आई थी, इसलिए चौराहे तक जाना पड़ा। कोई पन्द्रह मिनट में हम दोनों किराए की एक घोड़ा-गाड़ी में वापस आए। पर गोदाम में प्रवेश करते ही हम लोगों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। युवती का शरीर निश्चेष्ट पड़ा था, वह भौतिक दुखों से निवृत्ति पा चुकी थी। मैं तो हतबुद्धि-सा हो गया। विनोद बाबू विस्मय पूर्वक ध्यान से युवती के मृतक शरीर को देखने लगे। अनन्तर लोटे को उड़ेल कर देखा तो चौंक कर पीछे हटते हुए बोले—हाय विनय, इस में विष भरा था!!

* * *

दूसरे दिन मैं अपने ऑफ़िस में बैठा युवती का हुलिया लिख कर पुलिस में भेज रहा था कि इतने में विनोद बाबू पहुँचे और जेब से सौ-सौ रुपए के दो नोट निकाल कर मेरे सामने रखते हुए बोले—मन्त्री जी, इन्हें स्वीकार कर मेरा नाम आश्रम के संरक्षकों में दर्ज कर लीजिए। कल की घटना से मेरी आँखें खुल गईं। उसने मेरे लिए 'नेत्राञ्जन' का काम किया। यह कह कर विनोद बाबू ने मेरा हाथ चूम लिया?

उन्होंने इलाहाबाद जाना स्थगित कर दिया था!

उमङ्ग

[रचयिता—श्री० 'प्रभात' कविरत्न]

(१)

मैं नीरस-मरु में भी अमृत—
रस सञ्चारित कर दूँ;
माँ! तेरे गीतों से नीरव—
नभ-मण्डल को भर दूँ।

(२)

मैं उजड़े को परिवर्त्तित कर,
नन्दन-विपिन बना दूँ;
निज रहस्यमय स्वर्ण-कथाएँ,
जग को समुद सुना दूँ।

(३)

फूल बिछा दूँ मैं तेरे—
भक्तों के कण्टक-पथ पर;
खींच सूर्य-सिंहासन लाऊँ,
बैठ विजय के रथ पर?

गोस्वामी तुलसीदास और स्त्री-जाति

[ले० श्री० रजनीकान्त जी शास्त्री, बी० ए०, बी०एल०]

“राम-चरित-मानस” के रचयिता हिन्दी के अद्वितीय महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी के नाम से आज सारा संसार परिचित हो रहा है। हिन्दू-जाति में तो ऐसा कोई विरला ही परिवार होगा, जहाँ तुलसी-कृत रामायण (राम-चरित-मानस) की एक प्रति न देख पड़ती हो। इस महाकाव्य को रचकर गोस्वामी जी ने अपने नाम को सर्वसंहारी प्रबल काल के आक्रमण से पूर्णतः सुरक्षित कर दिया है। क्या वृद्ध, क्या बालक; क्या राजा, क्या रङ्क; क्या शिक्षित, क्या गँवार; क्या बड़े, क्या छोटे—सभी इस सर्व रसमय महाकाव्य को बड़ी श्रद्धा तथा भक्ति से देखते हैं। कोई ऐसा ही विरला मनुष्य होगा जो अपने प्रतिदिन की बोल-चाल में इस ग्रन्थ के दो-एक दोहे वा चौपाइयों का उदाहरण न देता हो। इस महाकाव्य में उपमा-आदि अलङ्कारों की बौछार, ओज, प्रासाद, माधुर्य आदि गुणों की भरमार; श्रृङ्गार, हास्य, करुणा आदि नाना विध रसों की घनघोर वर्षा तथा लोकोक्तियों और वाग्धाराओं के एक पर एक उमड़ते हुए तरङ्ग देख, पाठकों का हृदय एक अनिर्वचनीय भाव से ओत-प्रोत हो जाता है। महाकवि ने हर्ष, विषाद, राग, द्वेष, प्रसन्नता, क्रोध आदि विविध मानवी मनोवृत्तियों के चित्रण में कमाल कर दिखाया है। रामायण के पात्रों के साथ-साथ पाठकजन भी उनके हर्ष में हँसते, विपत्ति में रोते, प्रेमीजनों के साथ प्रेम करते, प्रसन्न होते तथा समय पड़ने पर क्रोध करते हैं। इतना ही नहीं, वे पात्रों के अस्तित्व में अपना अस्तित्व लीन कर देते हैं और अपने को उनका समकालीन समझ, रामायण-वर्णित घटनाओं का अनुभव प्रत्यक्ष-सा करने लगते हैं। हमारे इस कथन में तनिक अत्युक्ति नहीं है कि सर्वप्रियता की दृष्टि से गोसाईं जी की यह कृति अपना सानी नहीं रखती। पर इसकी यह सर्वप्रियता तथा इसके प्रति लोगों की असीम श्रद्धा और भक्ति ही इसकी यथार्थ आलोचना में विघ्न-बाधा उपस्थित कर देती हैं। इसके यथार्थ गुणों तथा यथार्थ दोषों पर समुचित प्रकाश नहीं डालने देती।

गोसाईं जी ने अपने इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में इसे “नाना पुराण निगमागम सम्मत” बनाने का वचन दिया है। पर इसके पाठकों में से विरला ही कोई ऐसा होगा, जो इस बात की खोज करता हो कि देखें कहाँ-कहाँ पर उन्होंने अपने उक्त वचन के विरुद्ध काम किया है अथवा यों कहिए, उनका मत कहाँ-कहाँ पर श्रुतियों, स्मृतियों तथा पुराणों के प्रतिकूल ठहरता है। यों तो खोज करने पर गोसाईं जी के रामायण में बहुत सी शास्त्र-विरुद्ध बातें मिलेंगी; पर आपने जो स्त्री-जाति के विषय में अपनी सम्मति दी है उससे कोई भी विद्वान् शायद ही सहमत हो। आप स्त्री-जाति में केवल दोष ही दोष देखते हैं, गुण एक भी नहीं; और जब-जब आपको उनकी निन्दा करने का मौक़ा मिलता है तब-तब आप उस मौक़े से नहीं चूकते। इसके उदाहरण देते हैं—

(क) सीता-अनुसूया-सम्वाद में आप लिखते हैं “सहज अपावन नारि” अर्थात् स्त्रियाँ स्वभाव से ही अपवित्र हैं। उनकी यह अपवित्रता उनके जन्म के साथ ही उत्पन्न होती है। “अपावन” शब्द से शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार की अपवित्रता लेनी चाहिए।

(ख) रामचन्द्र-कृत समुद्र-निग्रह प्रसङ्ग में आप फ़रमाते हैं “ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी” अर्थात् ढोल, गँवार, शूद्र, पशु तथा स्त्रियाँ ये सब पीटने से ही सीधे रास्ते पर आते हैं। स्त्रियों और शूद्रों को पशु की तरह पीट-पाट कर ठीक करने का क्या ही अच्छा नुस्ख़ा आपने अपनी “नाना पुराण निगमागम सम्मत” बुद्धि से बतला दिया!

(ग) रावण-मन्दोदरी-सम्वाद में आप नारी-स्वभाव को यों अङ्कित करते हैं “नारि सुभाव सत्य कवि कहहीं, अवगुण आठ सदा उर रहहीं। साहस अनृत चपलता माया, भय अविवेक अशौच अदाया।” अर्थात् पण्डितों ने स्त्रियों का स्वभाव ठीक बतलाया है कि

उनके हृदय में ये आठ अवगुण सर्वदा रहते हैं—(१) परिणाम को बिना सोचे ही किसी कार्य के करने में धृष्टता तथा शीघ्रता करना, (२) झूठ बोलना, (३) कभी स्थिर नहीं रहना, (४) दूसरों को ठगने के लिए माया (कपटपूर्ण व्यवहार) रचना, (५) भय का कारण न रहते हुए भी भय करना, (६) विचार न करना, (७) अपवित्र रहना और (८) निर्दय होना।

(घ) शूर्पणखा की नाक कटने के प्रसङ्ग में आपने अपनी स्त्री-जाति विषयक घृणा की मानो चरम सीमा दिखलाई है और उन्हें घृणित से भी घृणित पुंश्चली मानने का सदुपदेश देने में तनिक भी कसर नहीं की है—"भ्राता पिता पुत्र उरगारी, पुरुष मनोहर निरखत नारी" अर्थात् हे गरुड़! स्त्रियाँ ऐसी कुबुद्धि होती हैं कि वे केवल सुन्दर पुरुष चाहती हैं—चाहे वह भाई, पिता, पुत्रादि क्यों न हो। अभिप्राय यह कि वे अपने भाई आदि से भी अपनी काम-पिपासा को सन्तुष्ट करा लेने में तनिक भी नहीं हिचकतीं। धन्य हो महाराज! यह तो आपने हमारी गृहदेवियों को अच्छा सार्टिफ़िकेट दे डाला!!

मालूम होता है कि गोसाईं जी को स्त्री-जाति के प्रति एक भारी चिढ़-सी हो गई थी; यहाँ तक कि उसके आवेश में आकर उनके विषय में परस्पर विरोधी बातों को लिखते हुए आपको यह न मालूम हुआ कि मैं क्या लिख रहा हूँ। सीता-अनुसूया-सम्वाद में आपने पातिव्रत्य-धर्म का उपदेश दिया है। आप लिखते हैं :—

उत्तम के अस बस मन माहीं,
सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं।
मध्यम पर पति देखहिं कैसे,
भ्राता पिता पुत्र निज जैसे।
धर्म विचारि समुझि कुल रहहीं,
सो निकृष्ट तिय श्रुति अस कहहीं।
बिनु अवसर भय ते रह जोई,
जानेहु अधम नारि जग सोई।

अर्थात्—आपने पतिव्रता स्त्रियों को चार श्रेणियों में बाँटा है—(१) उत्तम, (२) मध्यम, (३) नीच और (४) लघु। इनके लक्षण ये हैं। उत्तम स्त्रियाँ यह समझती हैं कि हमारे पति के सिवा इस संसार में स्वप्न में भी अन्य कोई पुरुष है ही नहीं। मध्यम स्त्रियाँ पर-पुरुषों को अपने भाई, पिता, पुत्र आदि की दृष्टि से देखती हैं। जो स्त्रियाँ अपने धर्म तथा कुल का विचार कर व्यभिचार से रुकती हैं, वे नीच स्त्रियाँ हैं। और जो लौकिक तथा पारलौकिक दण्ड-भय से किम्वा मौक़ा न मिलने के कारण कुकर्म से अलग रहती हैं, वे अधम (लघु) हैं। फिर उसी प्रसङ्ग में कहते हैं :—

वृद्ध रोग-वश जड़ धन हीना,
अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना।
ऐसेहु पति कर किय अपमाना,
नारि पाव दुख यमपुर नाना।
एकै धर्म एक व्रत नेमा,
काय वचन मन पति पद प्रेमा।

अर्थात्—"पति यदि बूढ़ा, रोगी, जड़, दरिद्र, अन्धा, बहरा, क्रोधी तथा महादुखी भी हो तो भी स्त्रियों को उसका अपमान नहीं करना चाहिए। अपमान करने से यमलोक में उन्हें नाना प्रकार के दुख भोगने पड़ते हैं। मन, वचन, कर्म से पति-चरणों में प्रेम रखना ही स्त्रियों का एकमात्र धर्म है, एकमात्र व्रत है तथा एकमात्र नियम है।"

वाह जी गोसाईं जी! यह तो आपने बुड्ढे बाबा की तरफ़ से भी सिफ़ारिश कर दी, जिसमें उनकी नव-परिणीता अल्पवयस्का नव-वधू उनके श्रीचरणों में अपना तन, मन, धन, सब स्वाहा कर दे। ज़बरदस्ती पतिव्रता बनाने की यह अपूर्व महौषध आपको किस शास्त्र में हाथ लगी, जिसकी कड़वी घूँट आप बेचारी छोकरियों के भी हलक़ में ढकेलना चाहते हैं। यदि गोसाईं जी इस समय जीवित होते तो हम एक बात और भी उनसे विनय-पूर्वक पूछते। यदि आपकी समझ-मुबारक में स्त्रियाँ केवल सुन्दर पुरुष ही चाहती हैं—वे भले-बुरे का विचार कुछ भी नहीं करतीं, तथा यदि वे नाना विधि सहजात अवगुणों की खान हैं तो कम से कम उत्तम तथा मध्यम कोटि के पातिव्रत्य इस संसार में केवल दुर्लभ ही नहीं, किन्तु अलभ्य होंगे। ये पातिव्रत्य केवल कल्पना में ही पाए जा सकेंगे, व्यावहारिक जीवन में कभी नहीं। पर हमारा इतिहास हमें बता रहा है कि सती (दक्ष-कन्या),

सीता, सावित्री, दमयन्ती, मदालसा, विदुला, पद्मावती आदि उत्तम कोटि की पतिव्रताएँ अपने अटूट पातिव्रत्य-धर्म से आज भी संसार भर के नारी-समाज का मुख उज्ज्वल कर रही हैं। इन्हीं पतिव्रताओं के पुण्य-चरित्र रूपी आलोक-वर्त्तिका अपने साथ में लेकर आज भी नारी-समाज अपने सङ्कटमय कर्त्तव्य-पथ पर निधड़क चले जाने का साहस कर रहा है। और पतिव्रताओं की बात जाने दीजिए, जिन भगवती जनक-नन्दिनी का पावन चरित्र आप अपने रामायण में गा रहे हैं, कम से कम उनका भी उदाहरण आपको निःशेष नारी-समाज को कलङ्कित करने के पहले विचार लेना चाहिए था। आपको यह विचार लेना चाहिए था कि यदि सब स्त्रियाँ सीता-सावित्री नहीं हैं तो सब स्त्रियाँ शूर्पणखा भी नहीं हैं। अतः सबों को एक ही नाथ से नाथना घोर अन्याय है। इसी को कहते हैं "अन्धेरपुर नगरी बेबूझ राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा।"

पतिव्रता स्त्रियों के कुछ उदाहरण दे, अब विद्या, वीरता, कार्य-कुशलता आदि सद्‌गुणों से विशिष्ट स्त्रियों के उदाहरण देते हैं। गोसाईं जी के "नाना पुराण निगमागम सम्मत" विचार से स्त्रियों में कोई गुण ही नहीं है; उनमें केवल दोष ही भरे हैं। पर हमारा तो यह विचार है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक गुणवती होती हैं। यह बात तब स्पष्ट होगी जब उन्हें गुणवती बनाने का कष्ट उठाया जाय—अथवा उन्हें गुणोपार्जन करने का अवसर दिया जाय। हमने तो उन्हें केवल बच्चे पैदा करने की मैशीन बना रक्खा है। हमारा उनसे अधिक आशा करना भूल है। बबूल का पेड़ बोते हुए भी हम आम का फल खाना चाहते हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि पुरुषों की तरह स्त्रियाँ भी धीर, वीर, कार्य-निपुण, विदुषी आदि हो सकती हैं। रोमनों के दाँत खट्टे कर देने वाली बोडीशिया एक स्त्री ही थी। ऑर्लियन्स के अवरोध (Siege of Orleans) में अङ्गरेज़ों के छक्के छुड़ा देने वाली जोन ऑफ़ आर्क एक त्रयोदश वर्षीया ग्रामीण बालिका थी। दुर्दान्त मुग़ल-सम्राट् अकबर से लोहा लेने वाली चाँद सुल्ताना एक अबला थी। इसी प्रकार रानी दुर्गावती तथा झाँसी की रानी भी स्त्रियाँ ही थीं, जिनके वीर-चरित इतिहास के पन्नों में देदीप्यमान मणियों की तरह जड़े हैं। और भी सुनिए इङ्गलैण्ड के घरेलू तथा बाहरी, धार्मिक एवं राजनीतिक झगड़ों के झकोरों से बचाकर सुदृढ़ करने का श्रेय रानी एलिज़ाबेथ को हुआ। राजनीति-कुशला इस रानी ने इङ्गलैण्ड पर जिस चातुरी के साथ शासन किया, वह पुरुषों को भी नसीब नहीं। अब विद्या के क्षेत्र में आइए। राजा जनक की सभा में गूढ़ दार्शनिक विषयों पर आलोचना तथा प्रत्यालोचना करने वाली एवं बड़े-बड़े वेदान्ती पुरुषों को भी निरुत्तर कर देने वाली मैत्रेयी और गार्गी स्त्रियाँ थीं। मण्डन मिश्र की स्त्री भारती (सरस्वती) एक स्त्री ही थी, जो अपने पतिदेव तथा श्रीशङ्कराचार्य के बीच होते हुए शास्त्रार्थ में हार-जीत की निर्णायिका बनाई गई थी। बस इसी से उसकी विद्वत्ता का अनुमान कीजिए। वेद-दर्शन-काल में कितनी स्त्रियाँ मन्त्रों की द्रष्ट्री तक हुई हैं। वर्त्तमान समय में भी विदुषी स्त्रियों का अभाव नहीं है। इस विषय में श्रीमती सरोजिनी का नाम बताना मानो सूर्य को दीपक दिखाना है। विश्वविद्यालयों में कितनी छात्राएँ छात्रों से भी बाज़ी मार लेती हुई देखी जाती हैं। यदि विद्वान् पुरुषों की अपेक्षा विदुषी स्त्रियों की संख्या कम है तो इसका कारण उनकी स्वाभाविक अयोग्यता नहीं है, वरन् पुरुषों की स्वार्थपरता है, जो उन्हें दासता की कड़ी ज़ञ्जीरों में जकड़े रखना चाहती है। स्त्री की योग्यता तो इसी से सिद्ध है कि विद्या का अधिष्ठाता देवता एक देवी (सरस्वती) है, न कि कोई देव। पर गोसाईं जी के मस्तिष्क में ये सब बातें नहीं धसीं। धसें कैसे? वहाँ पर तो "ताड़न" वाला मन्त्र परदा डाले हुए था, इसी कारण वहाँ पर "जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी" वाली उनकी ही चौपाई काम कर गई।

गोसाईं तुलसीदास जी का स्त्री-विषयक मत बतलाकर अब मन्वादिक धर्म-शास्त्रकारों का मत बतलाते हैं, जिससे पाठकों को यह बात भली-भाँति मालूम हो जायगी कि तुलसीदासी मत "नाना पुराण निगमागम सम्मत" कदापि न होकर सम्भवतः "क्वचिदन्यतोऽपि" सम्बन्ध रखता है; अथवा स्पष्ट भाषा में यों कहिए कि वह मत गोसाईं जी की निजी कल्पना है। यद्यपि मनु ने भी स्त्रियों में कुछ दोष पाए हैं, पर ऐसा नहीं कि उन्होंने उनके केवल दोषों का उद्‌घाटन कर, उनके गुणों को छिपा लिया है। उन्होंने गुण-दोष दोनों दिखलाए

हैं और हमें तुलसीदास की तरह "ताड़न" वाले नुस्ख़े का प्रयोग न कर, उनके साथ प्रेम, सहानुभूति आदि के व्यवहार करने की शिक्षा देते हैं। वे अपनी स्मृति के ९ वें अध्याय में स्त्रियों के ये दोष बतलाते हैं—

नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः।
सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते॥
पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्चनैस्नेह्याच्च स्वभावतः।
रक्षिता यत्नतोऽपीह भर्त्तृष्वेता विकुर्वते॥

अर्थात्—"स्त्रियाँ रूप की परीक्षा नहीं करतीं; युवा, वृद्ध आदि अवस्था पर इनकी श्रद्धा भी नहीं है, सुन्दर हो वा कुरूप, पुरुष को पाते ही उसके साथ सम्भोग करती हैं। स्त्रियाँ पुरुष को देखते ही उसके साथ क्रीड़ा करने की इच्छा से, चित्त की चञ्चलता से तथा स्वाभाविक स्नेह-शून्यता से, पति के यत्न के साथ रक्षा करने पर भी उससे प्रतिकूल होकर व्यभिचार करती हैं।"

फिर वे कहते हैं—

शय्यासनमलङ्कारं कामं क्रोधमनार्जवम्।
द्रोहभावं कुचर्यां च स्त्रीभ्योमनुरकल्पयत्॥

अर्थात्—"मनु जी ने शय्या, आसन, भूषण, काम, क्रोध, कुटिलता, द्रोह-भाव तथा कुचाल—ये सब स्त्रियों के लिए हैं, ऐसी कल्पना सृष्टि के समय की थी।"

अतः स्त्रियों की रक्षा के लिए वे पुरुषों को सख़्त ताकीद करते हैं, पर वे स्त्रियों को डण्डे मारने को भी नहीं कहते :—

एवं स्वभावं ज्ञात्वाऽसां प्रजापति निसर्गजम्।
परमं यत्नमातिष्ठेत् पुरुषोरक्षणं प्रति॥

अर्थात्—"प्रजापति का रचा हुआ इनका ऐसा स्वभाव जान कर इनकी रक्षा का यत्न पुरुष विशेष रूप से करे।"

मनु भगवान् स्त्री-जाति में उक्त दोषों की कल्पना करते हुए भी स्त्रियों को साक्षात् लक्ष्मी की दृष्टि से देखते हैं :—

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन॥

अर्थात्—"ये स्त्रियाँ गर्भाधान के निमित्त परम मङ्गल की पात्र हैं, अतः वस्त्राभूषण से सम्मान करने योग्य और घर की शोभा-रूप हैं। अधिक क्या कहें, घरों में स्त्री और लक्ष्मी में कुछ भेद नहीं है। स्त्रीहीन गृह श्रीहीन प्रतीत होता है।"

फिर वे तृतीय अध्याय में लिखते हैं :—

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः॥
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः॥
शोचन्ति जामयोयत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धतेतद्धि सर्वदा॥
जामयो यानि गेहानि शपन्त्य प्रतिपूजिताः।
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः॥
तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूति कामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च॥

अर्थात्—"बहुत कल्याण के चाहने वाले पिताओं, भ्राताओं, पतियों तथा देवरों को उचित है कि वे भोजन, वस्त्र, अलङ्कार आदि से इनका सत्कार तथा पूजन करें। जहाँ पर स्त्रियाँ पूजी जाती हैं, वहाँ पर सब देवता विहार करते हैं तथा जहाँ पर ये नहीं पूजी जातीं वहाँ की यज्ञादि सारी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। जिस कुल में बहिन, स्त्री, पुत्री और पुत्र की बहू आदि दुखी रहती हैं, वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, और जहाँ ये दुखी नहीं रहतीं वह धन-धान्य से सदा समृद्ध रहता है। भगिनी, पत्नी, बेटी, बहू—ये दुखी हो जिन घरों को कोसती हैं, वे घर अभिचार द्वारा नष्ट हुए के समान धन, जन आदि समेत नाश को प्राप्त हो जाते हैं, अतः ये भगिनी आदि, कौमुदी आदि सत्कारों में और यज्ञोपवीत आदि उत्सवों में समृद्धि चाहने वाले पुरुषों के द्वारा सदा पूजने योग्य हैं।"

अहा! स्त्री-जाति के दोषों को देखते हुए भी महाराज मनु अनदेखा-सा बन कर लक्ष्मीवत् पूजन-योग्य बतलाते हैं और हमारे गोसाईं जी उन्हें ख़ूब बनाकर पीटने का सदुपदेश दे रहे हैं। दोनों महानुभावों के स्त्री-विषयक भावों में कितना अन्तर है, यह पाठकगण स्वयं विचार लें।

तुलसीदास जी के विषय में परम्परा से एक किम्बदन्ती सुनी जाती है, जिसे उनकी जीवनी लिखने वालों ने अब लेखबद्ध कर दी है। वह यह है कि तुलसी-

दास जी को अपनी स्त्री से ही ज्ञान प्राप्त हुआ था। किसी दूसरे लेख में हम यह दिखलावेंगे कि गोसाईं जी का जाति का ब्राह्मण होना तथा उनका विवाहित होना, ये दोनों बातें उनके जीवनी-लेखकों की केवल थोथी कल्पनाएँ हैं, जो उनके ही (गोसाईं जी के ही) लेखों से खण्डित हो जाती हैं। यहाँ पर हम केवल इतना ही कह देना पर्याप्त समझते हैं कि यदि गोसाईं जी किसी भी स्त्री (अपनी वा अन्य) से ज्ञान प्राप्त किए रहते तो वे अपने जीवन की इस प्रसिद्ध घटना का उल्लेख अपने लेखों में अवश्य करते तथा स्त्री-जाति के प्रति इतना द्वेष न रखते। यदि उनका किसी स्त्री से ज्ञान प्राप्त करने की घटना सत्य है, तो उनका इसका उल्लेख न करना तथा स्त्री-जाति के प्रति इतना द्वेष-भाव रखना नितान्त अनुचित एवं कृतघ्नता का द्योतक है।

परिचय

[रचयिता श्री० 'श्रीपति']

(१)

नव-यौवन के प्रौढ़ क्षेत्र में—
प्रेमाङ्कर-लतिका सुख मूल!
नव-विकसित-वसन्त में सहसा—
हन्त! हुई क्योंकर निर्मूल!!

(२)

नव-अनुराग-पराग कहाँ नव—
अभिनय का अमन्द मकरन्द!
नव-साधना-कुञ्ज का कलरव,
नव्य-भाव के अलि स्वच्छन्द!!

(३)

लूट लिया वैभव किस निष्ठुर—
कुटिल-हृदय ने असमय आज!
हुए दृष्टि-पथ से ओझल हा!
कहाँ, सौख्य के वे प्रिय-साज!!

(४)

हूँ बन्दी, यह अखिल विश्व है—
विस्तृत, मेरा कारागार!
निरपराधिनी हूँ मैं अबला,
क्रन्दन ही मेरा व्यापार!!

(५)

हूँ करील-वन की कोकिल मैं,
शोक-सिन्धु मोती श्री-हीन!
हूँ प्रातःकालीन कुमुदिनी,
प्रभा-हीन नलिनी मैं दीन!!

(६)

हूँ प्रत्यक्ष मूर्त्ति करुणा की,
हृदय-विदारक हूँ चीत्कार!
हूँ कलङ्क, हिन्दू-समाज का,
दुखिया की हूँ आह! पुकार!!

(७)

हूँ सौभाग्य-विभव के रज-कण,
भस्म-राशि आशा की नाथ!
शोकाकुल अबला बाला हा!
विधवा हूँ मैं और अनाथ!!

चाँद



कुमारी प्राणजम ठाकोर, बी० ए०

[आपका सविस्तार परिचय अन्यत्र छप रहा है]

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD

छप गया ! छप गया !!

एक हलचल मचाने वाला, सर्वथा मौलिक

सामाजिक उपन्यास

अनाथ पत्नी

[ले० पण्डित भगवतीप्रसाद जी वाजपेयी]

[भूमिका-लेखक—श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]

इस उपन्यास में बिछुड़े हुए दो हृदयों—पति-पत्नी—के अन्तर्द्वन्द का ऐसा सजीव चित्रण है कि पाठक एक बार इसके कुछ ही पन्ने पढ़कर करुणा, कुतूहल और विस्मय के भावों में ऐसे ओत-प्रोत हो जायँगे कि फिर क्या मजाल कि इसका अन्तिम पृष्ठ तक पढ़े बिना कहीं किसी पत्ते की खड़-खड़ाहट तक सुन सकें !

अशिक्षित पिता की अदूरदर्शिता, पुत्र की मौन व्यथा, प्रथम पत्नी की समाज-सेवा, उसकी निराश रातें, पति का प्रथम पत्नी के लिए तड़पना और द्वितीय पत्नी को आघात न पहुँचाते हुए, उसे सन्तुष्ट रखने को सचेष्ट रहना, अन्त में घटनाओं के जाल में तीनों का एकत्रित होना और द्वितीय पत्नी के द्वारा, उसके अन्तकाल के समय, प्रथम पत्नी का प्रकट होना—ये सब दृश्य ऐसे मनोमोहक हैं, मानो लेखक ने जादू की क़लम से लिखे हों !!

लेखक कहानी और उपन्यास लिखने में वैसे भी लब्ध-प्रतिष्ठ हैं, पर इस उपन्यास के लिखने में तो उन्होंने सचमुच कमाल किया है। शरत् बाबू के उपन्यासों में जो मोहक आकर्षण है और मेरी करेली के उपन्यासों में जो तड़पन, वह सब आपको इसकी पृष्ठ-प्यालियों में सर्वत्र ही छलकता हुआ मिलेगा !!!

कागज़ बढ़िया, छपाई लाजवाब, मूल्य केवल २)

'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

भारत में अङ्गरेज़ी राज्य

[ले॰ महात्मा सुन्दरलाल जी, भूतपूर्व सम्पादक 'कर्मयोगी' और 'भविष्य']

टीपू सुलतान

१७६२ की सन्धि के बाद

सन् १७६२ में अङ्गरेज़ों, निज़ाम और मराठों ने मिलकर टीपू सुलतान पर हमला किया था और उसका राज्य छीन कर आपस में बाँट लिया था। इन चारों शक्तियों के बीच उस समय मित्रता की सन्धि हो चुकी थी। टीपू पर तीन करोड़ से ऊपर युद्ध-दण्ड लगाया गया था, जिसमें से एक करोड़ उसी समय वसूल कर लिया गया था। शेष की अदायगी के लिए दो साल की अवधि नियत थी। कॉर्नवालिस के पत्रों से ज़ाहिर है, उसे यह आशा थी कि टीपू, जिसका आधा राज्य छिन चुका था और शेष आधा बरबाद कर दिया गया था, दो साल के अन्दर इतनी भारी रक़म को अदा न कर सकेगा और इस बहाने कम्पनी को उसका रहा-सहा राज्य हड़पने का मौक़ा मिल जावेगा। किन्तु कॉर्नवालिस को इस विषय में निराशा हुई। टीपू एक अत्यन्त योग्य शासक था। वह अपनी ज़बान का भी सच्चा था। उसने अपनी ओर से सन्धि की शर्तों का सच्चाई के साथ पालन किया। इतिहास-लेखक मैलकम लिखता है कि—"अथक परिश्रम और अत्यन्त उत्साह के साथ वह अपनी शक्ति भर प्रत्येक उचित उपाय से अपनी खोई हुई शक्ति को फिर से प्राप्त करने की कोशिश करने का गम्भीर सङ्कल्प कर चुका था।" इसीलिए सन् १७६२ से—

"टीपू ने सबसे पहले अपनी आन क़ायम रखते हुए ठीक समय पर उस भारी रक़म को अदा कर दिया, जो सन्धि के समय उसके शत्रुओं की ओर से नियत कर दी गई थी। इतने ठीक मियाद के अन्दर इस तरह की रक़म का अदा हो जाना एक असाधारण बात है। फिर अपनी मुसीबतों से घबराकर बैठ जाने के बजाय युद्ध के कारण मुल्क की जो बरबादी हुई थी, टीपू सुलतान ने उसे फिर से दुरुस्त करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी। उसने अपनी राजधानी की रक्षा के लिए क़िलेबन्दी को बढ़ाना, सवारों की सेना को फिर से पूरा करना, पैदल सेना में नए रँगरूट भरकर उन्हें शिक्षा देना, अपने उन सामन्त सरदारों को, जो शत्रु से मिल गए थे, दण्ड देना, और अपने राज्य में कृषि को उन्नति देना शुरू किया; जिससे शीघ्र ही उसका देश फिर पहले की तरह ख़ुशहाल दिखाई देने लगा।"*

ऊपर लिखा जा चुका है कि टीपू ने सच्चाई के साथ सन्धि की शर्तों का पालन किया। किन्तु टीपू की वीरता और उसकी योग्यता तथा उसके राज्य का फिर से पनपना ही अङ्गरेज़ों के लिए सबसे अधिक भयावह था। कॉर्नवालिस के पत्रों से साबित है कि वह टीपू के अस्तित्व को ही अङ्गरेज़ों की भारतीय सत्ता के लिए ख़तरनाक

---

* ". . . with that unremitting activity and zealous warmth which we could look for in a prince, who had come to a serious determination by every reasonable means in his power to regain what he had lost.

". . . I shall take a short retrospect of the leading features of his conduct since 1792.

" This was first marked by an honourable and unusually punctual discharge of the large sum which remained due at the conclusion of the peace to the allies. Instead of Sinking under his misfortunes, he exerted all his activity to repair the ravages of war. He began to add to the fortifications of his capital—to remount his cavalry, to recruit and descipline his infantry, to punish his refractory tributaries and to encourage the cultivation of his country, which was soon restored to its former prosperity."

—*Wellesley's Dispatches*, Vol. I, Appendix. pp. 668, 669.

मानता था। वेल्सली के पत्रों से साबित है कि वह भारत में क़दम रखने से पहले केप ऑफ़ गुडहोप ही में टीपू पर हमला करने और जिस तरह हो सके, उसे कुचलने का सङ्कल्प कर चुका था। उसके निज़ाम और पेशवा को पङ्गुल कर देने के प्रयत्न एक प्रकार से टीपू को कुचलने की अधिक गहरी योजना केवल अङ्ग थे।

दोषारोपण

टीपू पर आक्रमण करने के लिए उस पर कोई न कोई इलज़ाम लगाना आवश्यक था। कहा गया कि टीपू अङ्गरेज़ों पर आक्रमण करने वाला है, और इसके लिए फ़्रान्सीसियों के साथ गुप्त षड्यन्त्र रच रहा है। बयान किया गया कि मॉरीशस के टापू में फ़्रान्सीसियों ने एक एलान प्रकाशित किया है, जिसमें लिखा है कि टीपू ने अपने कुछ विशेष दूत एक जहाज़ में मॉरीशस भेजे हैं और उन दूतों के ज़रिए अङ्गरेज़ों के विरुद्ध फ़्रान्सीसियों के साथ मेल करने का विचार प्रकट किया है, इत्यादि। इस इलज़ाम ही की बिना पर बिना टीपू से कोई बात पूछे कारवाई शुरू कर दी गई। ६ जून, सन् १७६८ को मार्क्विस वेल्सली ने इस फ़्रान्सीसी एलान की एक कॉपी मद्रास के गवरनर हैरिस के पास भेजी और उसे आदेश दिया कि तुम तुरन्त टीपू के विरुद्ध सेना जमा करो। इसके बाद २० जून, सन् १७६८ को वेल्सली ने हैरिस को एक दूसरे पत्र द्वारा अपने "अन्तिम निश्चय" की सूचना दी और लिखा कि—"मैं समुद्र-तट पर सेना एकत्रित करने का पक्का निश्चय कर चुका हूँ।" इस पत्र में "टीपू पर अचानक आक्रमण करना" वेल्सली ने अपना "उद्देश्य" बताया, और अन्त में इस बात पर ज़ोर दिया कि इस मामले को "गुप्त" रखना "परम आवश्यक" है।*

सन् १७६२ में निज़ाम और पेशवा दोनों ने टीपू के विरुद्ध अङ्गरेज़ों का साथ दिया था। उस समय की सन्धि में यह तय हो गया था कि यदि टीपू की ओर से सन्धि की शर्तों का उल्लङ्घन होगा तो अङ्गरेज़, निज़ाम और पेशवा तीनों मिलकर उसका मुक़ाबला करेंगे। टीपू ने ईमानदारी के साथ सब शर्तों का पालन किया, इसलिए अब बजाय उन दोनों से इस विषय में सलाह तक करने के वेल्सली ने टीपू पर आक्रमण करने से पूर्व निज़ाम को अपने 'सबसीडीयरी एलाएन्स' के जाल में क़ैद कर लिया, और जब पेशवा के दरबार में 'सब-सीडीयरी एलाएन्स' की चाल न चल सकी, तो पेशवा को फँसाए रखने के लिए सींधिया को उकसा कर उसे एक विशाल सेना सहित पेशवा के पीछे लगा दिया और उस सेना द्वारा पेशवा के इलाक़े को लुटवाना शुरू कर दिया।

जेम्स मिल ने अपने इतिहास में साबित किया है कि फ़्रान्सीसियों के उस समय टीपू के साथ मिलकर ब्रिटिश भारत पर आक्रमण करने की कोई किसी तरह की सम्भावना तक न थी। उसने यह भी दिखलाया है कि जिन काग़ज़ों के आधार पर टीपू पर फ़्रान्सीसियों के साथ साज़िश करने का इलज़ाम लगाया गया है, उनमें से कुछ ऐसे थे जिनसे टीपू का कोई दोष साबित नहीं होता और शेष साफ़ जाली थे।*

इससे अधिक हमें इस मिथ्या दोषारोपण की विवेचना की आवश्यकता नहीं है। मद्रास के गवरनर हैरिस ने २३ जून, सन् १७६८ को एक पत्र में मार्क्विस वेल्सली को दर्शाया कि आपकी आशङ्काएँ सर्वथा निर्मूल हैं और टीपू से इस समय युद्ध छेड़ना अनुचित है। मद्रास गवरमेण्ट के सेक्रेटरी जोशिया वेब ने ६ जुलाई, सन् १७६८ को वेल्सली को लिखा कि—"फ़्रान्स की जो सेना मॉरीशस टापू में थी भी वह सब वहाँ से यूरोप को भेज दी गई है और फ़्रान्सीसी जहाज़ तक वहाँ से हटा लिए गए हैं, इसलिए फ़्रान्सीसियों और टीपू के बीच साज़िश होना असम्भव है।" किन्तु वेल्सली के लिए फ़्रान्सीसियों और टीपू की साज़िश केवल एक बहाना थी, उसका असली उद्देश टीपू सुलतान को मिटा कर ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य को बढ़ा लेना और भविष्य के लिए अपने मार्ग से एक ज़बरदस्त रुकावट को दूर कर देना था।

* ". . . my final determination . . . to assemble the army upon the coast . . . with the object of striking a sudden blow against Tipoo, . . . you will of course feel the absolute necessity of keeping the contents of this letter secret."

—Marquess Wellesley to General Harris. 20th June, 1798.

* *History of India* by Mill Vol. VI.

टीपू के साथ धोखा

६ जून, सन् १७६८ को वेल्सली ने जनरल हैरिस को लिखा कि टीपू के विरुद्ध सेना जमा की जावे और उसके पाँच दिन बाद अर्थात् १४ जून को उसने टीपू को एक अत्यन्त प्रेमपूर्ण पत्र लिखा। इसके अतिरिक्त टीपू को और पूरी त ह धोखे में रखने के लिए उसने एक नई चाल चली। सर जॉन शोर के समय से वाईनाद के इलाक़े के विषय में कम्पनी और टीपू के बीच कुछ झगड़ा चला आता था। वेल्सली ने अपना प्रेम दर्शाने के लिए अब वह इलाक़ा टीपू को लौटा दिया। वेल्सली के प्रेम-पूर्ण पत्र के उत्तर में भोले टीपू ने अङ्गरेज़ गवरनर-जनरल को लिखा—

"आपका मित्रता-सूचक पत्र × × × मिला × × × उससे मुझे इस क़दर ख़ुशी और तसल्ली हुई कि जिसे पूरी तरह काग़ज़ पर बयान नहीं किया जा सकता। × × × ईश्वर की कृपा से दोनों बादशाहतों के बीच एकता और प्रेम का उच्च सम्बन्ध और दोस्ती और मेल की बुनियादें पूरी मज़बूती से क़ायम हैं। मुझे हमेशा इसका ख़याल रहता है कि मौजूदा सुलहनामों की शर्तों पर क़ायम रहूँ। आप दिल से मेरे दोस्त और ख़ैरख़्वाह हैं, और मुझे विश्वास है कि आप ध्यान से एकता और प्रेम को क़ायम रक्खेंगे।"*

निस्सन्देह टीपू को वेल्सली की वास्तविक इच्छा और उसकी दुरङ्गी नीति का पता न था। वेल्सली एक ओर टीपू को अपनी मित्रता का विश्वास दिलाता रहा और दूसरी ओर उस पर हमला करने की गुप्त तैयारियाँ करता रहा। धीरे-धीरे कुछ भनक टीपू के कानों तक भी पहुँच गई। २८ सितम्बर, सन् १७६८ को वेल्सली के पास टीपू का एक और पत्र पहुँचा, जिसमें टीपू ने लिखा—

"दुष्ट लोग थोथे झगड़े और तनाज़े खड़े करके अपना मतलब पूरा करना चाहते हैं, किन्तु ईश्वर की कृपा से दोनों बादशाहतों के बीच एकता और प्रेम के चश्मे इतने पाक और साफ़ बह रहे हैं कि स्वार्थी लोगों की चालों से वे गन्दे नहीं हो सकते।"

वेल्सली ने एक महीने से ऊपर तक इस पत्र का कोई उत्तर न दिया। इस बीच मिश्र देश के उत्तर में नील नदी के ऊपर नेलसन ने फ़्रान्स के जहाज़ी बेड़े का ख़ात्मा कर डाला। फ़्रान्सीसियों का डर शुरू से झूठा था। यह डर किसी स्वतन्त्र भारतीय नरेश पर हमला करने के लिए कोई बहाना भी नहीं हो सकता था, तथापि यदि इससे पूर्व फ़्रान्सीसियों के भारत पर हमला करने की कोई सम्भावना हो भी सकती थी तो अब वह भी बिलकुल जाती रही। किन्तु जैसा हम लिख चुके हैं, ये सब बातें वेल्सली के लिए केवल बहाना मात्र थीं, उसका असली उद्देश दूसरा और स्पष्ट था। ४ नवम्बर को वेल्सली ने फिर टीपू को एक अत्यन्त मित्रता-सूचक पत्र लिखा। ८ नवम्बर को अपनी तैयारी देखकर वेल्सली ने रङ्ग बदला और एक अत्यन्त उद्दण्डतापूर्ण पत्र में मॉरीशस के एलान का ज़िक्र करते हुए टीपू को लिखा कि—"आप यह गुमान नहीं कर सकते कि मेरे देश के शत्रुओं के और आपके बीच जो बातें हुई हैं, उनकी ओर से मैं उदासीन रह सकता हूँ।" इत्यादि। केवल चार दिन के अन्दर टीपू की ओर वेल्सली के रुख़ में यह अचानक परिवर्तन हो गया।

छेड़छाड़

इसी पत्र में वेल्सली ने टीपू को यह धमकी दी कि एक अङ्गरेज़ अफ़सर मेजर डवटन को इस उद्देश से आपके दरबार में भेजा जायगा, ताकि शान्ति क़ायम रखने के लिए जिन ज़िलों की अङ्गरेज़ों को ज़रूरत है, उन्हें वह आप से माँग ले। असल में अङ्गरेज़ों की तैयारी पूरी हो चुकी थी, इसीलिए टीपू से अब साफ़ छेड़छाड़ शुरू कर दी गई।

पाँच दिन बाद वेल्सली ने जल-सेनापति रेनियर को लिखा कि—"हैदराबाद को ठीक कर लिया गया है, और समुद्र-तट पर दोनों ओर हमारी युद्ध की तैयारियाँ ख़ूब हो चुकी हैं"—इसलिए "यह अवसर हमारे लिए अच्छा है और मैं इस अवसर से लाभ उठाकर केवल डर दिखाकर अथवा लड़कर टीपू को शक्तिहीन कर देने का पक्का निश्चय कर चुका हूँ।"

इसके बाद बिना टीपू के उत्तर की प्रतीक्षा किए वेल्सली कलकत्ते से चल दिया और ३१ दिसम्बर, सन् १७६८ को स्वयं युद्ध के मैदान के समीप रहने के उद्देश से मद्रास पहुँच गया। मद्रास पहुँचते ही उसे अपने

* Tipoo's letter to Governor-General received in Calcutta 10th July, 1798.

८ नवम्बर के पत्र के उत्तर में टीपू का साफ़-साफ़ पत्र मिला।

मॉरीशस वाले मामले के जवाब में टीपू ने लिखा—

"इस ख़ुदादाद सरकार में एक क़ौम व्यापारियों की है, जो ख़ुश्की पर और समुद्र पर तिजारत करती है। इनके गुमाश्तों ने एक-दो मस्तूल वाला जहाज़ ख़रीदा और उसमें चावल भर कर तिजारत के लिए निकले। अकस्मात् यह जहाज़ मॉरीशस टापू में जा पहुँचा। वहाँ से चालीस आदमी फ़्रान्सीसी और काले रङ्ग के, जिनमें से १० या १२ दस्तकार थे और बाक़ी नौकर थे, जहाज़ का किराया देकर जीविका की तलाश में यहाँ आ गए। उनमें से जिन्होंने नौकरी करना पसन्द किया वे रख लिए गए, बाक़ी इस ख़ुदादाद सरकार की सीमा से बाहर चले गए। शायद फ़्रान्सीसियों ने, जिनमें बुराई और छल भरा हुआ है, इस जहाज़ के जाने से फ़ायदा उठाकर इन दोनों सरकारों के दिलों में मैल पैदा कर देने के उद्देश से ये अफ़वाहें उड़ा दी हैं।

"मेरी यह दिली ख़्वाहिश है और मैं सदा इसी प्रयत्न में लगा रहता हूँ कि सुलहनामे की शर्तें पूरी हों और कम्पनी बहादुर की सरकार के साथ दोस्ती और मेल की बुनियाद स्थायी और मज़बूत रहे।× × × × इस परिस्थिति में आपके मैत्री-सूचक पत्र में युद्ध का सङ्केत × × × पढ़ कर मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ।"

वेल्सली की धमकी के जवाब में टीपू ने लिखा—

"यह समझा गया है कि ख़ुदा के फ़ज़ल से सुलह के वक्त चारों सरकारों के बीच शपथ-पूर्वक जो प्रतिज्ञाएँ की गई हैं, वे इतनी दृढ़ और सर्व-स्वीकृत हैं कि हमेशा क़ायम रहेंगी × × × मैं नहीं समझ सकता कि दोस्ती और मेल की बुनियादों को स्थायी बनाने के लिए, सल्तनतों को सुरक्षित रखने के लिए और सबके लाभ और भले के लिए इससे ज़्यादा कारगर और कौन से उपाय किए जा सकते हैं।"*

३१ दिसम्बर, सन् १७९८ को वेल्सली को टीपू का यह पत्र मिला। ९ जनवरी, सन् १७९९ को वेल्सली ने टीपू को एक और लम्बा पत्र लिखा, जिसमें उसने टीपू को यह स्पष्ट लिख दिया कि आप अपने समुद्र-तट के समस्त नगर और बन्दरगाह अङ्गरेज़ों के हवाले कर दीजे। पत्र मिलने के २४ घण्टे के अन्दर टीपू से जवाब माँगा गया। वास्तव में यह पत्र टीपू को केवल युद्ध की सूचना थी।

टीपू अब अच्छी तरह समझ गया कि जिन विदेशियों को हैदर ने पूरी तरह परास्त करके उनके साथ दया और उदारता का व्यवहार किया, जिन्हें स्वयं टीपू ने एक बार अपनी मुट्ठी में लाकर उनके वादों पर विश्वास करके छोड़ दिया, जिन्होंने अभी छै वर्ष पूर्व उसके साथ मित्रता की सन्धि की थी, वे अब उस पर झूठे दोष लगाकर उसे मिटा देने पर कटिबद्ध थे। पराजित शत्रु की ओर उदारता दिखलाना एशियाई नरेशों का सदा से एक विशेष गुण रहा है, किन्तु अनेक बार उन्हें इस उदारता का गहरा मूल्य चुकाना पड़ा है।

टीपू पर हमला

३ फ़रवरी, सन् १७९९ को कम्पनी की सेना टीपू के राज्य की ओर बढ़ी। टीपू इस युद्ध के लिए तैयार न था। १३ फ़रवरी को उसने वेल्सली को पत्र लिखा कि मामले को शान्ति से तय करने के लिए मेजर डवटन को मेरे दरबार में भेज दिया जावे। इसके बाद भी कई बार टीपू ने प्रार्थना की कि पहले बातचीत से मामले को तय करने की कोशिश कर ली जावे। किन्तु वेल्सली ने इन प्रार्थनाओं की ओर कुछ भी ध्यान न दिया। २२ फ़रवरी को टीपू के साथ युद्ध का एलान कर दिया गया। कम्पनी की सेनाएँ जनरल हैरिस के अधीन थीं। जल और स्थल दोनों ओर से टीपू को घेर लिया गया। विवश होकर टीपू ने भी वीरता के साथ मुक़ाबले का निश्चय किया।

विश्वासघात का जाल

वेल्सली जानता था कि बावजूद इतनी तैयारी के कम्पनी की सेना का टीपू को परास्त कर सकना इतना सरल न था। इसलिए उसने कम्पनी की प्राचीन प्रथा के अनुसार टीपू के अफ़सरों और उसकी प्रजा के साथ पहले ही से गुप्त साज़िशें शुरू कर दी थीं। वेल्सली ने मद्रास के गवरनर हैरिस को लिखा—

"मेरे पास यह मानने के लिए काफ़ी वजह है कि टीपू सुलतान के बहुत से सामन्त, सरदार, मुख्य-मुख्य अफ़सर और प्रजा के अन्य लोग अपने नरेश के विरुद्ध विद्रोह करके कम्पनी और उसके साथियों की शरण में

* *Wellesley's Dispatches*, Vol. I. p. 382, 383

आने के लिए तैयार हैं। सुलतान की दग़ाबाज़ी और ज़्यादती के कारण जिस युद्ध में हमें फिर से पड़ना पड़ा है, उसमें सुलतान के आदमियों के असन्तोष और विद्रोह से जहाँ तक सम्भव हो सके, लाभ उठाना हमारे लिए उचित और उपयुक्त है।"*

'दग़ाबाज़ी और ज़्यादती' वास्तव में किस ओर थी, यह इतिहास के पन्ने-पन्ने से ज़ाहिर है। रहा विपत्ती के 'आदमियों के असन्तोष और बग़ावत से जहाँ तक सम्भव हो सके लाभ उठाना', नहीं बल्कि उनमें असन्तोष और बग़ावत पैदा करके उन्हें अपनी ओर फोड़ना—सो यह काम सदा ही कम्पनी के लिए 'जायज़ और मुनासिब' समझा गया। इस काम के लिए अर्थात् पहले से जा-जाकर टीपू के आदमियों से मिलने और उन्हें फोड़ने के लिए वेल्सली ने अपने भाई करनल वेल्सली, करनल क्लोज़, करनल एगन्यु, कप्तान मैलकम और कप्तान मैकॉले, पाँच आदमियों का एक बाज़ाब्ता कमीशन नियुक्त किया। इस समय के पत्रों से स्पष्ट है कि टीपू के विरुद्ध इससे पहले के युद्ध में भी कॉर्नवालिस इसी तरह के उपायों को काम में ला चुका था।

मीर हुसेनअली ख़ाँ किरमानी ने अपनी फ़ारसी पुस्तक "निशान-ए-हैदरी" में ख़ासे विस्तार के साथ बयान किया है कि किस प्रकार कम्पनी की सेनाओं ने एकाएक चारों ओर से टीपू को जा घेरा, किस प्रकार वीरता और आन के साथ टीपू ने मरते दम तक शत्रुओं का मुक़ाबला किया और किस प्रकार टीपू के दरबार और उसकी समस्त सेना को विश्वासघातकों से छलनी-छलनी करके अन्त में अङ्गरेज़ों ने विजय प्राप्त की।

इस पुस्तक से पता चलता है कि इस युद्ध में निज़ाम और उसके वज़ीर मीर आलम ने अङ्गरेज़ों को फिर ख़ूब सहायता दी। चार हज़ार सेना मद्रास से जनरल हैरिस के अधीन थी। चार हज़ार सबसीडीयरी सेना हैदराबाद से आकर मिली। दो हज़ार सेना बङ्गाल की थी। आठ हज़ार सवार मीर आलम के अधीन थे और हैदराबाद ही के छै हज़ार सवार रोशनराव के अधीन थे। कुछ सेना बम्बई से आई। इस प्रकार कुल मिला कर लगभग ३० हज़ार सेना ने चारों ओर से टीपू पर एक साथ चढ़ाई की।

इस युद्ध के विविध संग्रामों को वर्णन करने के बजाय हम केवल युद्ध के उस पहलू को संक्षेप में बयान करेंगे, जो वास्तव में टीपू के नाश और अङ्गरेज़ों की सफलता का कारण हुआ। सबसे पहला धोखा जो टीपू के कुछ नमकहराम सलाहकारों और जासूसों ने उसे दिया, वह यह था कि उन्होंने टीपू को विश्वास दिलाया कि कम्पनी की समस्त सेना चार या पाँच हज़ार से अधिक नहीं है।

टीपू ने ख़बर पाते ही अपने विश्वस्त ब्राह्मण मन्त्री और सेनापति पूर्निया के अधीन कुछ सवार शत्रु के मुक़ाबले के लिए भेजे। रायकोट नामक स्थान से लगभग दो कोस पर इस सेना की कम्पनी की सेना से मुठभेड़ हुई। किन्तु पूर्निया भीतर से अङ्गरेज़ों से मिला हुआ था। उसने बजाय मुक़ाबला करने के कम्पनी की सेना के दाएँ-बाएँ चक्कर लगाने शुरू किए। कम्पनी की सेना आगे बढ़ती रही। पूर्निया की सेना के एक दल ने आगे बढ़ कर वीरता के साथ शत्रु को रोका और एक बहुत बड़ी संख्या को तलवार के घाट उतारा। पूर्निया ने यह देख कर अपने वीर सवारों को शाबाशी देने के स्थान पर उन्हें अत्यन्त कड़े शब्दों में लानत-मलामत की। सवार समझ गए कि पूर्निया लड़ना नहीं चाहता। इसके बाद कम्पनी की बढ़ती हुई सेना को रोकने या उनसे लड़ने के बजाय विश्वासघातक पूर्निया की सेना शत्रु के आगे-पीछे बतौर उनके संरक्षकों के चलती रही।

यह ख़बर सुन कर कि कम्पनी की सेना बढ़ी चली आ रही है, सुलतान टीपू ने स्वयं सेना सहित आगे बढ़ने का विचार किया। उसके सलाहकारों ने फिर उसे धोखा दिया। जनरल हैरिस की सेना एक विशेष मार्ग से श्रीरङ्गपट्टन की ओर बढ़ रही थी। टीपू के सलाहकारों ने उसे दूसरा मार्ग बतला दिया और टीपू ने एक ग़लत

* I have reason to believe that many of the tributaries, principal officers, and other subjects of Tipoo Sultan, are inclined to throw off the authority of that prince, and to place themselves under the protection of the Company and of our allies. The war in which we are again involved by the treachery and violence of the Sultan, renders it both just and expedient that we should avail ourselves, as much as possible, of the discontent and disaffection of his people."

—Marquess Wellesley's letter to General Harris. *Wellesley's Dispatches*, p. 442.

सड़क पर जाकर डेरे डाल दिए। ज्योंही टीपू को इस विश्वासघात का पता चला, उसने फ़ौरन तेज़ी के साथ आगे बढ़कर गुलशनाबाद के पास सामने से हैरिस की सेना को रोका। कुछ देर तक ख़ूब घमासान युद्ध हुआ, जिसमें सुलतान के अनेक सिपाहियों और सेनानियों ने वीरता के हाथ दिखाए। कम्पनी की सेना और विशेष कर उनके तोपख़ाने को ज़बरदस्त हानि सहनी पड़ी। ठीक अवसर पर सुलतान ने अपने एक सेनापति कमरुद्दीन ख़ाँ को सवारों सहित आगे बढ़ कर शत्रु को समाप्त कर देने की आज्ञा दी, किन्तु कमरुद्दीन ख़ाँ भी अपने आपको अङ्गरेज़ों के हाथ बेच चुका था, मौक़ा मिलते ही शत्रु पर हमला करने के बजाय वह थोड़ा आगे बढ़ कर उलटा लौटा और एकाएक अपने सवारों सहित सुलतान की सेना के एक भाग पर टूट पड़ा। टीपू के अनेक जाँबाज़ सिपाही इस समय काम आए, अनेक हैरान होकर पीछे हट गए और कमरुद्दीन ख़ाँ के विश्वासघात के प्रताप से मैदान अङ्गरेज़ों के हाथ रहा।

इतने में टीपू को पता चला कि एक दूसरी सेना जनरल स्टुअर्ट के अधीन बम्बई से श्रीरङ्गपट्टन की ओर बढ़ी चली आ रही है, तो फ़ौरन कुछ सरदारों को जनरल हैरिस के मुक़ाबले के लिए छोड़ कर टीपू अपनी समस्त सेना और तोपख़ाने सहित जनरल स्टुअर्ट का मार्ग रोकने के लिए बढ़ा।

दो रात और एक दिन के लगातार कूच के बाद टीपू ने बम्बई की सेना को जा पकड़ा और पहुँचते ही हमले की आज्ञा दी। टीपू की सेना ने इस समय भी पूरी वीरता दिखलाई। कम्पनी की सेना को भारी शिकस्त खानी पड़ी। अनेक मैदान में काम आए और अनेक माल-असबाब छोड़ कर, जान बचा कर आस-पास के जङ्गल में जा छिपे। टीपू के जासूसों ने आकर उसे ख़बर दी कि बम्बई की सेना युद्ध का इरादा छोड़कर जङ्गल के रास्ते पीछे लौट गई। टीपू अपनी विजयी सेना सहित श्रीरङ्ग-पट्टन की ओर मुड़ आया।

मालूम होता है, पूर्निया और कमरुद्दीन जैसे विश्वास-घातकों ने टीपू के चारों ओर नमकहराम मुख़बिर और सलाहकार पैदा कर रक्खे थे।

टीपू के श्रीरङ्गपट्टन पहुँचते ही जनरल हैरिस की सेना नगर के सम्मुख आ पहुँची। सामने की ओर श्रीरङ्गपट्टन का क़िला था और पीछे नगर। अङ्गरेज़ी सेना ने क़िले और नगर के अन्दर आग बरसानी शुरू की। टीपू के कुछ सलाहकारों ने उसे राय दी कि आप नगर छोड़ कर भाग जाइए अथवा सुलह की बातचीत शुरू कीजिए। वीर टीपू ने उस स्थिति में दोनों बातों से इनकार कर दिया। उसने अन्त समय तक लड़ने का निश्चय कर लिया था। मालूम होता है, पूर्निया और कमरुद्दीन ख़ाँ के विश्वासघात का उसे अभी तक पता न चला था। फिर इन्हीं दोनों सेनापतियों के अधीन सेना नियुक्त करके क़िले से बाहर भेजी गई। मीर हुसेनअली ख़ाँ लिखता है कि यह सेना बार-बार अङ्गरेज़ी सेना के दाएँ-बाएँ चक्कर लगाती थी, बार-बार टीपू के वीर सवार शत्रु पर हमला करने की इजाज़त माँगते थे और बार-बार उनके सेनापति उन्हें इजाज़त देने से इनकार करते थे, और सिपाही दुख और निराशा से हाथ मलते रह जाते थे; यहाँ तक कि बम्बई की सेना भी हैरिस की मदद के लिए आ पहुँची।

अन्त में एक घमासान संग्राम हुआ। इस संग्राम में महताब बाग़ का मोरचा श्रीरङ्गपट्टन के क़िले की कुञ्जी था। टीपू का एक विश्वस्त अनुचर सय्यद ग़फ़्फ़ार महताब बाग़ का संरक्षक था। सय्यद ग़फ़्फ़ार देर तक बड़ी वीरता के साथ शत्रु के हमलों से महताब बाग़ की रक्षा करता रहा। दुश्मन ने देख लिया कि सय्यद ग़फ़्फ़ार के रहते महताब बाग़ को जीत सकना असम्भव है। सय्यद ग़फ़्फ़ार को धन का लोभ दिया गया। उस पर इसका कोई असर न हुआ। अन्त में साज़िश होकर टीपू के पास के नमकहरामों ने टीपू को कुछ समझा-बुझा कर सय्यद ग़फ़्फ़ार को महताब बाग़ से हटवा कर क़िले के अन्दर बुलवा लिया। जिस मनुष्य ने सय्यद ग़फ़्फ़ार की जगह ली, वह अङ्गरेज़ों का धनक्रीत था। सय्यद ग़फ़्फ़ार जब वहाँ से चला गया तब उसने महताब बाग़ अङ्गरेज़ी सेना के हाथों में दे दिया और एक प्रकार से श्रीरङ्गपट्टन के क़िले का दरवाज़ा शत्रु के लिए खोल दिया।

टीपू का मुख्य सलाहकार इस समय उसका एक दीवान मीर सादिक़ था। भोले टीपू को बहुत देर तक इसका पता न चल सका कि यह मीर सादिक़ भी उसके दुश्मनों से मिला हुआ था। यहाँ तक कि मीर सादिक़

ने टीपू के एक विश्वस्त अफ़सर ग़ाज़ी ख़ाँ को क़त्ल करवा दिया और क़िले की दीवारों के टूट जाने पर भी टीपू से इस ख़बर को छिपाए रक्खा। अन्त में जब टीपू को अपने कुछ विश्वस्त आदमियों द्वारा इन सब बातों का और मीर सादिक़ और उसके अन्य साथियों के विश्वासघात का पता चला, तो टीपू ने एक दिन सुबह को अपने हाथ से विश्वासघातकों की एक लम्बी सूची तैयार करके मीर मुईनुद्दीन के हाथ में दी और उसे आज्ञा दी कि आज ही रात को इन समस्त नमकहरामों का, जिस तरह हो, काम तमाम कर देना।

अकस्मात् जिस समय मीर मुईनुद्दीन ने इस सूची को खोल कर पढ़ना चाहा, महल का एक फ़र्राश, जो पढ़ना जानता था और मीर सादिक़ से मिला हुआ था, मीर मुईनुद्दीन के पीछे खड़ा हुआ था। इस फ़र्राश ने मीर सादिक़ का नाम सूची में सबसे ऊपर पढ़ कर फ़ौरन जाकर मीर सादिक़ को इसकी ख़बर दे दी। मीर सादिक़ सावधान हो गया।

उसी दिन सुलतान टीपू ने घोड़े पर चढ़ कर क़िले की चहारदीवारी का निरीक्षण किया। टूटी हुई दीवारों की मरम्मत का हुकुम दिया और ऐन एक दीवार के ऊपर अपना ख़ेमा लगवाया। कहते हैं कि कुछ ज्योतिषियों ने टीपू से आकर अर्ज़ की कि आज का दिन दोपहर से सात घड़ी बाद तक आपके लिए शुभ नहीं है। इन ज्योतिषियों की सलाह के अनुसार टीपू ने अपने महल में जाकर स्नान किया, हिन्दू क़ायदे से हवन और जाप आदिक कराए और दो हाथी, जिन पर काली झूलें पड़ी हुई थीं और जिनकी झूलों के चारों कोनों में सोना, चाँदी, मोती और जवाहरात बँधे हुए थे, एक ब्राह्मण को दान दिए। इसके बाद उसने अनेक ग़रीबों और मोहताजों में भोजन, वस्त्र और धन बँटवाया।

दोपहर के समय टीपू अभी भोजन करने के लिए बैठा ही था और अभी पहला ही कौर उसके मुँह में जाने पाया था कि किसी ने बाहर से आकर सूचना दी कि विश्वासघातकों ने सुलतान के विश्वस्त अनुचर सय्यद ग़फ़्फ़ार को, जो उस समय क़िले का प्रधान संरक्षक था, क़त्ल कर डाला। टीपू के लिए दूसरा कौर हराम हो गया। ख़बर सुनते ही वह फ़ौरन दस्तरख़ान छोड़ कर उठ खड़ा हुआ और घोड़े पर सवार होकर स्वयं सय्यद ग़फ़्फ़ार की जगह लेने के लिए अपने कुछ ख़ास-ख़ास सरदारों सहित पीछे की ओर से क़िले के अन्दर घुस गया।

इधर विश्वासघातकों ने सय्यद ग़फ़्फ़ार को ख़तम करते ही फ़ौरन दीवार पर चढ़ कर सफ़ेद रूमाल दिखा कर बाहर की अङ्गरेज़ी सेना को इशारा किया और पेश्तर इसके कि टीपू मौक़े पर पहुँच कर फिर से अपने आदमियों को जमा कर सके, शत्रु के सिपाही दीवार के टूटे हुए हिस्से से श्रीरङ्गपट्टन के क़िले के अन्दर घुस आए।

जब दीवान मीर सादिक़ को पता चला कि सुलतान ख़ुद सेना जमा करके क़िले के अन्दर गया है, उसने घोड़े पर चढ़ कर सुलतान का पीछा किया और जिस दरवाज़े से टीपू क़िले के अन्दर गया था, उसे मज़बूती से बन्द करवा कर, ताकि टीपू किसी तरह बच कर न निकल सके, बाहर से सहायता पहुँचाने के बहाने एक दूसरे दरवाज़े से ख़ुद बाहर निकलना चाहा। इस दूसरे दरवाज़े पर पहुँचते ही उसने वहाँ के पहरेदारों को आज्ञा दी कि जब मैं बाहर चला जाऊँ तो तुम दरवाज़े को मज़बूती से बन्द कर लेना और फिर किसी के भी कहने पर न खोलना। किन्तु अभी वह इन पहरेदारों से बात कर ही रहा था कि टीपू के एक वीर सिपाही ने सामने से आकर ललकार कर कहा—"ऐ कम्बख़्त मलऊन! अपने ख़ुदातर्स सुलतान को दुश्मनों के हवाले करके अब तू जान बचा कर भागना चाहता है? ले, यह तेरे गुनाह की सज़ा है!" यह कह कर उसने अपनी तलवार के एक वार से नमकहराम मीर सादिक़ के दो टुकड़े कर डाले। मीर सादिक़ की लोथ घोड़े से ज़मीन पर जा गिरी।

किन्तु टीपू और उसके देश को अब इससे क्या लाभ हो सकता था? टीपू ने जब अच्छी तरह देख लिया कि मेरे आदमियों ने मेरे साथ दग़ा की और क़िला शत्रु के हाथों में चला गया, तो उसने एक बार उसी दरवाज़े से फिर बाहर जाना चाहा; किन्तु एक साधारण क़िलेदार ने, जिसे मीर सादिक़ ने पहले से समझा रक्खा था, इस समय अपने स्वामी और नरेश टीपू सुलतान की आज्ञा पर क़िले का दरवाज़ा खोलने से इनकार कर दिया।

टीपू का अन्त

अङ्गरेज़ी सेना दीवार के टूटे हुए हिस्से पर से क़िले

के अन्दर प्रवेश कर चुकी थी। टीपू अब फिर लौट कर अपने मुट्ठी भर आदमियों सहित बढ़ते हुए शत्रु की ओर लपका। उसने अपनी शक्ति भर अपने इन रहे-सहे सिपाहियों को जोश दिलाया। उसने चिल्ला कर कहा—"आख़ीर वक़्त तक क़िले की रक्षा करना हमारा फ़र्ज़ है" "इन्सान को मौत सिर्फ़ एक ही मरतबा आ सकती है, फिर क्या परवा है कि ज़िन्दगी कब ख़त्म हो !"* यह कह कर उसने अपनी बन्दूक़ से शत्रु की ओर गोलियाँ चलानी शुरू कीं। कई यूरोपियन अफ़सर उसकी गोलियों का शिकार होकर गिर पड़े। किन्तु शत्रु की संख्या बहुत अधिक थी। अन्त में एक गोली टीपू की छाती में बाईं ओर आकर लगी। टीपू ज़ख़्मी हो गया, तथापि उसने बन्दूक़ हाथ से न छोड़ी और न वह पीछे मुड़ा। इस ज़ख़्मी हालत में भी वह बराबर अपनी बन्दूक़ से शत्रु पर गोलियाँ बरसाता रहा। थोड़ी देर बाद एक दूसरी गोली टीपू की छाती में दाहिनी ओर आकर लगी। टीपू का घोड़ा अब ज़ख़्मों से छलनी-छलनी होकर गिर पड़ा। टीपू की पगड़ी ज़मीन पर जा गिरी। शत्रु अधिक निकट आ पहुँचे। प्यादा पा और नङ्गे सर टीपू ने अब बन्दूक़ फेंक कर दाहिने हाथ में अपनी तलवार सँभाली। टीपू की छाती से अब दो-दो धारें ख़ून की बह रही थीं। उसके कुछ वफ़ादार साथियों ने उसकी यह अवस्था देख कर सहारा देकर उसे एक पालकी में बैठा दिया। पालकी एक मेहराब के नीचे रख दी गई। इस हालत में टीपू के एक मुलाज़िम ने उसे सलाह दी कि अब आप अपने आपको अङ्गरेज़ों के हवाले कर दीजे और उनकी उदारता पर छोड़ दीजे, किन्तु वीर टीपू ने बड़े तिरस्कार के साथ इस सलाह को अस्वीकार किया। इतने में कुछ अङ्गरेज़ सिपाही पालकी के पास तक आ पहुँचे। इनमें से एक ने टीपू को ज़ख़्मी देख कर उसकी कमर से जड़ाऊ पेटी उतारना चाहा। टीपू ने अभी तक तलवार हाथ से न छोड़ी थी। उसने इस तलवार से गोरे सिपाही पर वार किया और एक वार में उसका घुटना उड़ा दिया। फ़ौरन् एक तीसरी गोली टीपू की दाहिनी कनपटी में आकर लगी, जिसने एक क्षण के अन्दर उसके ऐहिक जीवन का अन्त कर दिया। उस दिन रात को जिस समय टीपू का मृत शरीर लाशों के ढेर में से ढूँढ़ कर निकाला गया तो उस समय तक तलवार उसके हाथ से न छूटी थी। दाहिने हाथ का पूरा पञ्जा तलवार के क़ब्ज़े पर कसा हुआ था। टीपू प्रायः कहा करता था—"दो दिन शेर की तरह जीना ज़्यादा अच्छा है बजाय दो सौ वर्ष भेड़ की तरह जीने के।"

निस्सन्देह टीपू का जीवन और उसकी मृत्यु दोनों इस कथन के अनुरूप थीं।*

(अगले अङ्क में समाप्त)

* "*History of Hyder Shah and Tippoo Sultan*" by Prince Gholam Mohammad.

* **भारत में अङ्गरेज़ी राज्य** नामक पुस्तक का एक अध्याय, जो शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है।

—स० 'चाँद'

प्रतिशोच

[रचयिता—श्री० 'सरस']

वे जब लौं नहिं आए अरी ! घरी एकु न ए कल पाती रहीं।
रोवत जोहत नित्त रहीं पथ, देखन कौ अकुलाती रहीं॥
वे जबु आए सुभागन तौ, झुकि कै सकुचाती लजाती रहीं।
आली री ! ऐसेहि चूकि सदा, दुखिया अँखियाँ पछताती रहीं॥

अम्बपालिका

[ले० प्रोफ़ेसर चतुरसेन जी शास्त्री]

मुज़फ़्फ़रपुर से पश्चिम ओर जो पक्की सड़क जाती है, उस पर मुज़फ़्फ़रपुर से लगभग १८-२० मील पर 'बैसौढ़' नामक एक बिलकुल छोटा सा गाँव है, जिसमें ३०-४० घर भूमिहार ब्राह्मणों के और कुछ घर क्षत्रियों के बच रहे हैं। इस गाँव के चारों ओर कोसों तक खण्डहर, टीले और पुरानी टूटी-फूटी मूर्तियाँ ढेर की ढेर मिलती हैं, जो इस बात की स्मृति दिलाती हैं कि यहाँ कभी कोई बड़ा भारी समृद्धिशाली नगर बसा रहा होगा।

वास्तव में अब से ढाई हज़ार वर्ष पूर्व यहाँ एक विशाल नगर बसा था, जिसका नाम वैशाली था, और जो प्रबल प्रतापी लिच्छविगण तन्म के शासन में था।

वैशाली लिच्छविगण तन्म की एक प्रधान नगरी और रियासत थी। नगर व्यापारियों, जौहरियों, शिल्पकारों और भिन्न-भिन्न प्रकार के देश-विदेश के यात्रियों से परिपूर्ण था। 'श्रेष्टि चत्वर' नगर का प्रधान बाज़ार था, जहाँ जौहरियों और बड़े-बड़े व्यापारियों की कोठियाँ थीं और जिनकी व्यापारिक शाखाएँ समस्त उत्तर भारत में फैली हुई थीं। दुकानदार स्वच्छ परिधान धारण किए पान कुचरते हँस-हँस कर ग्राहकों से बात करते, जौहरी, पन्ना, लाल, मूँगा, मोती, पुखराज, हीरा और अन्य रत्नों की परीक्षा तथा लेन-देन में व्यस्त रहते थे। निपुण कारीगर अनगढ़ रत्नों को सान चढ़ाते, स्वर्ण-आभरणों में रङ्गीन रत्न जड़ते और मोती गूँथते थे। गन्धी लोग केसर के थैले हिलाते थे। चन्दन के तेलों में भिन्न-भिन्न सुगन्ध मिला कर इत्र बनाए जाते और नागरिक उनका खुला उपयोग करते थे। रेशम और बहुमूल्य महीन मलमल के व्यापारियों की दुकानों पर बग़दाद और फ़ारस के व्यापारी लम्बे-लम्बे लबादे पहने, भीड़ की भीड़ पड़े रहते थे। नगर की गलियाँ सकरी और तङ्ग थीं और उनमें गगन-चुम्बी अट्टालिकाएँ खड़ी थीं, जिनके अँधेरे तहख़ानों में इन धन-कुबेरों का बड़ा भारी कोष और द्रव्य रक्खा रहता था।

सन्ध्या-समय सुन्दर श्वेत बैलों के रथों पर, जिन पर बढ़िया सुनहरा काम हुआ रहता था, नागरिक सैर करने राजपथ पर निकलते थे। इधर-उधर हाथी झूमते हुए बढ़ा करते थे और उन पर उनके अधिपति रत्नाभरणों से सज्जित अपने दासों तथा शरीर-रक्षकों से घिरे हुए चला करते थे।

२

अभी दिन निकलने में देर थी। पूर्व की ओर प्रकाश की आभा दिखाई पड़ रही थी, पर मार्ग में अँधेरा था। राजमहल के तोरण पर अभी तक प्रकाश जल रहा था। चारों ओर प्रतिहार पड़े सो रहे थे। उनमें से केवल एक भाला टेक कर खड़ा नींद में झूम रहा था। तोरण के इधर-उधर कई कुत्ते पड़े सो रहे थे।

धीरे-धीरे दिन का प्रकाश फैलने लगा। राजवर्गी इधर से उधर आने-जाने लगे। प्रतिहार रक्षी सेना का एक नवीन दल तोरण पर आ पहुँचा। उसमें से एक दण्डधर ने आगे बढ़ कर भाले के सहारे खड़े-खड़े ऊँघते मनुष्य को पुकार कर कहा—महानामन! सावधान होओ और घर जाकर विश्राम करो। महानामन ने सजग होकर अपने दीर्घकाय को और भी विस्तार करके एक ज़ोर की अँगड़ाई ली और यह कह कर कि—तुम्हारा कल्याण हो, वह अपना भाला धरती पर टेकता हुआ तीसरे तोरण की ओर बढ़ गया। पश्चिम की ओर पुराना प्रासाद और राजमहल का उपवन था, जिसकी देख-रेख महानामन के सुपुर्द थी। यहीं उसकी छोटी सी कुटिया थी, जहाँ वह अपनी प्रौढ़ा पत्नी के साथ १७ वर्ष से एकरस—आँधी-पानी, सर्दी-गर्मी में रहता था।

वह नींद में झूमता हुआ ऊँघ रहा था। अब भी प्रभात का प्रकाश धुँधला था। उसने अपनी कुटी के पास एक कदली वृक्ष के नीचे, आम्रकुञ्ज में एक श्वेत वस्तु पड़ी रहने का भान किया। निकट जाकर देखा, एक नवजात शिशु स्वच्छ वस्त्रों में लिपटा अपना अँगूठा चूस रहा है। आश्चर्य-चकित होकर महानामन ने शिशु को उठा

लिया। देखा, कन्या है। उसने अपनी स्त्री को पुकार कर उसे वह कन्या देकर कहा—देखो, आज इस प्रकार अपने जीवन की पुरानी साध मिटी।

वह कन्या—उस दरिद्र लिच्छवि महानामन के उस दरिद्रावास में शशिकला की भाँति बढ़ने लगी। उसका नाम रक्खा गया अम्बपालिका।

३

वैशाली से उत्तर-पश्चिम २५ कोस पर, एक छोटे से गाँव में, एक किनारे पर एक साधारण घर था। उसके द्वार पर एक वृद्ध प्रातःकाल बैठा दातुन कर रहा था। पूर्व के द्वार पर से पैर की आहट सुन कर उसने पीछे को देखा, एक चम्पक-पुष्प की कली के समान ११ वर्षीया बालिका—अति सुन्दरी बालिका, जिसके घँघराले बाल लहलहा रहे थे, दौड़ती-दौड़ती बाहर आई, और वृद्ध को देख उससे लिपटने को लपकी, पर पैर फिसलने से गिर गई। वह गिर कर रोने लगी। वृद्ध ने दातुन फेंक, दौड़ कर बालिका को उठाया, उसकी धूल झाड़ी; बालिका ने रोना रोक कर कहा—बाबा, घर में आटा बिलकुल नहीं है, हम लोग क्या खायँगे? वृद्ध ने उसे गोद में उठाते हुए कहा—'कुछ चिन्ता नहीं, मैं अभी गेहूँ पिसवाने की व्यवस्था करता हूँ।' बालिका ने कहा—'गेहूँ का भी तो एक दाना नहीं है?' वृद्ध क्षण भर अवाक् रहा। उसने कहा—'तब ठहर, मैं अभी शिकार मार लाता हूँ।' बालिका ने रोक कर कहा—'नहीं-नहीं, मैं पक्षी का मांस नहीं खाऊँगी।'

वृद्ध महानामन लिच्छवि था और कन्या थी अम्बपालिका। वृद्ध की पत्नी का स्वर्गवास हुए ८ साल व्यतीत हो गए थे। उसके बाद कन्या की परिचर्या में बाधा पड़ती देख, महानामन ने राज-सेवा छोड़ कर अपने ग्राम में आकर बालिका की सेवा-शुश्रूषा अबाध-रूप से करने का निश्चय कर लिया था। वह गत ८ वर्षों से इसी गाँव में रहता। अम्बपालिका को उसने इस तरह पाला जैसे पक्षी चुग्गा दे-देकर अपने शिशु-पक्षी को पालता है। परन्तु खेद है, धीरे-धीरे उसकी छोटी सी कमाई की क्षुद्र पूँजी, यत्न से ख़र्च करने पर भी समाप्त हो ही गई। और फिर धीरे-धीरे पत्नी के स्मृति-रूप दो-चार क्षुद्र आभूषण भी उदर-गुहा में पहुँच चुके। अब आज क्या किया जाय? अब तो आटा भी नहीं, एक दाना गेहूँ भी नहीं। वृद्ध की प्राणों की पुतली, इस प्रश्न पर चिन्तित हो रही है। यह और भी कष्ट का प्रश्न था। पर वृद्ध ने हँस कर कहा—'अच्छा, अच्छा, मैं अभी गेहूँ लिए आता हूँ।' इतना कह कर वृद्ध ने बालिका के तड़ातड़ ३-४ चुम्बन लिए और उसे गोद से उतारते-उतारते दो बूँद आँसू गिरा दिए। बालिका भीतर गई और वृद्ध चिन्ता-मग्न बैठ गया। अन्ततः उसने एक बार फिर महाराज की सेवा में उपस्थित होकर पुरानी नौकरी की याचना करने का निश्चय किया। उसके बाहु का पौरुष तो थक चुका था। परन्तु क्या किया जाय, कन्या का विचार सर्वोपरि था। फिर भी वृद्ध के अति गम्भीर होने का यही मात्र कारण न था। लाख वृद्ध होने पर भी उसकी भुजा में बल था—बहुत था। पर उसकी चिन्ता थी—बालिका का अप्रतिम सौन्दर्य। सहस्राधिक बालिकाएँ भी क्या उस पारिजात-कुसुम तुल्य कुन्द-कलिका के समान थीं? किस पुष्प में उतनी गन्ध, कोमलता और सौन्दर्य था? उसे भय था कि राज-नियमानुसार वह विवाह से वञ्चित करके कहीं नगर-वेश्या न बना दी जाय; क्योंकि लिच्छविगण तन्त्र में यह क़ानून था कि राज्य की जो कन्या अत्यधिक सुन्दरी होती थी, उसे किसी एक पुरुष की पत्नी न होने दिया जाकर नागरिकों के लिए सुरक्षित रक्खा जाया करता था। वास्तव में इसी भय से महानामन राजधानी छोड़ कर भागा था, जिससे किसी की दृष्टि उस बालिका पर न पड़े। पर अब उपाय न था। महानामन ने राजधानी में एक बार जाने का निश्चय किया!

४

वैशाली की ओर जाने वाली सड़क पर वर्षा के कारण बड़ी कीचड़ हो रही थी। कहीं-कहीं तो नालों का पानी कच्ची सड़क को तोड़ कर, सड़क पर नदी की तरह बह रहा था। अभी वर्षा हो चुकी थी। वृद्ध और उसकी पुत्री दोनों भीग गए थे, पर धीरे-धीरे बढ़े चले जा रहे थे। हवा बन्द थी, गर्मी बढ़ गई थी और दूरस्थ पर्वतों की चोटियों में अस्त होते हुए सूर्य को देख-देख कर वृद्ध डर रहा था। निकट किसी बस्ती के चिन्ह न थे। यदि यहीं चौपट में अँधेरा हो गया तो कहाँ रात कटेगी, बच्ची खायगी क्या, यही वृद्ध के भय का कारण था। वह लाठी टेकता-टेकता धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। वह स्वयं बहुत थक गया था और बालिका

तो क्षण-क्षण में विश्राम की इच्छा प्रकट कर रही थी। बालिका ने कहा—पिता ! अब मैं और नहीं चल सकती, मेरे पैरों में देखो, लोहू बह रहा है, वे फट गए हैं। वृद्ध ने स्नेह से उसे चुमकार कर कहा—बस अब थोड़ी दूर और; निकट ही कहीं गाँव या बस्ती मिलने पर ठहरनेमें सुभीता रहेगा। पर बालिका और कुछ पग चल कर मार्ग ही में एक ऊँची जगह पर बैठ गई। वृद्ध भी निरुपाय हो, पास ही बैठ गया। अन्धकार ने चारों ओर से उन्हें घेर लिया।

सहसा बालिका ने चौंक कर कहा—पिता जी, देखो घोड़ों की टाप का शब्द सुनाई दे रहा है ! बुड्ढे ने उठ कर दूर तक दृष्टि करके देखा। सड़क के निकट एक घना सेमल का वृक्ष था, जिसके नीचे घोर अन्धकार था। वृद्ध कन्या का हाथ पकड़, वहीं जा छिपा। आकाश में अब भी बादल घिर रहे थे और फिर ज़ोर की वर्षा होने के रङ्ग-ढङ्ग दीख पड़ते थे। बीच-बीच में बिजली भी चमक जाती थी। थोड़ी देर बाद बहुत से सवार वहाँ तक आ पहुँचे। वर्षा भी शुरू हो गई। सवारों ने निश्चय किया कि उस वृक्ष के नीचे आश्रय लें।

वृद्ध भय से बालिका को छाती में छिपाए वृक्ष की जड़ में चिपक कर बैठ गया। सहसा बिजली की चमक में अश्वारोहियों ने वृक्ष के निकट मनुष्य-मूर्ति देख कर कहा—अरे ! वृक्ष के निकट यह कौन है ? वृद्ध वहाँ से हट कर चुपचाप खेत में जाने लगा। तत्क्षण एक बर्छी आकर उसकी छाती को विदीर्ण कर गया। वृद्ध एक चीत्कार करके धरती पर गिर गया। बालिका ज़ोर से चिल्ला उठी।

अश्वारोही दल ने निकट जाकर देखा—मृत पुरुष वृद्ध और निरस्त्र है। पर कन्या को देखते ही बर्छी फेंकने वाले सवार ने कहा—वाह ! बूढ़े को मार कर रत्न मिला ! इसमें किसी का साझा नहीं है ?

बालिका भय और शोक से चिल्ला उठी। अश्वारोही ने उसकी परवा न कर, उसे उठा कर घोड़े पर रख लिया और वे आगे बढ़े।

५

वैभवशालिनी वैशाली का जो 'श्रेष्ठि चत्वर' नामक बाज़ार था, उसके उत्तर कोण पर एक विशाल प्रासाद, जिसके गुम्बजों का प्रकाश रात्रि को गङ्गा पार से भी दीखता था। बाहर का सिंहद्वार विशाल पत्थरों का बनाया गया था, जिसे उठाना और जोड़ना दैत्यों का ही काम हो सकता था। इन पत्थरों पर स्थपत्यकला और शिल्प की सूक्ष्म बुद्धि ख़र्च की गई थी। ड्योढ़ी पर गहरा हरा रङ्ग किया हुआ था और ऊँचे महराबदार फाटक पर फूलों की गुँथी हुई सुन्दर मालाएँ लटक रही थीं। पहले आँगन में प्रवेश करने पर श्वेत अट्टालिकाओं की पंक्ति दीख पड़ती थी। उनकी दीवारों पर काँच की तरह चमकदार श्वेत पलस्तर किया गया था। सीढ़ियों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के ख़ुदरङ्ग बहुमूल्य पत्थर लगे थे, और खिड़कियों में बिल्लौर के किवाड़ थे, जिनमें श्रेष्ठि चत्वर की बहार बैठे ही बैठे दीख पड़ती थी। दूसरे आँगन में गाड़ी, बैल, घोड़े हाथी बँधे थे और महावत उन्हें चावल-घी खिला रहे थे। तीसरे आँगन में अतिथि-शाला तथा आगत जनों के ठहरने का प्रबन्ध था। यहाँ बहुत सुन्दर विशाल पत्थरों के खम्भों पर महराब खड़े हुए थे। चौथे आँगन में नाट्यशाला और गायन-भवन था, पाँचवें आँगन में भिन्न-भिन्न प्रकार के शिल्पकार और जौहरी लोग नाना प्रकार के आभूषण बना और रत्नों को घिस रहे थे। छठवें आँगन में भिन्न-भिन्न देश के पशु-पक्षियों का अद्भुत संग्रह था। सातवाँ आँगन बिलकुल श्वेत पत्थर का बना था, और उसमें सुनहरा काम हो रहा था। इसमें दो भीमकाय सिंह स्वर्ण की मेखलाओं से दृढ़तापूर्वक बँधे थे और चाँदी के पात्रों में पानी भरा उनके निकट धरा था। गृह-स्वामिनी अम्बपालिका इसी कक्ष में विराजती थी।

सन्ध्या होगई थी। परिचारक और परिचारिकाएँ दौड़-धूप कर रही थीं, कोई सुगन्धित जल आँगन में छिड़क रही थी, कोई धूप जला कर भवन को सुवासित कर रही थी, कोई सहस्र दीप-गुच्छ में सुगन्धित तेल डाल कर प्रकाशित करने में व्यस्त थी। बहुत से माली तोरण और अलिन्द पर ताज़े पुष्पों के गुलदस्ते और मालाओं को सजा रहे थे। अलिन्द में दण्डधर अपने-अपने स्थानों पर भाला टेके स्थिर भाव से खड़े थे। द्वार-पाल तोरण पर अपने द्वार-रक्षक दल के साथ सशस्त्र उपस्थित था।

क्षण भर बाद प्रासाद भाँति-भाँति के रङ्गीन प्रकाशों से जगमगा उठा। भाँति-भाँति के रङ्गीन फ़व्वारे चलने लगे और उन पर प्रकाश का प्रतिबिम्ब इन्द्र-धनुष की बहार

दिखाने लगा। धीरे-धीरे प्रतिष्ठित नागरिक कोई पालकी में, कोई रथ पर और कोई हाथी पर चढ़ कर प्रथम तोरण पार कर आने लगे। परिचारक गण दौड़-दौड़ कर अतिथियों को सादर उतार कर भीतरी अलिन्द में पहुँचाने तथा उनकी सवारियों की व्यवस्था करने लगे। हाथी-घोड़े, रथ, पालकी आदि वाहनों का ताँता लग गया। उनकी भीड़ से बाहर का विशाल प्राङ्गण भर गया।

सातवें तोरण के भीतर श्वेत पत्थर के एक विशाल सभा-भवन में अम्बपालिका नागरिक युवकों की अभ्यर्थना कर रही थी। यह भवन एक टुकड़े के ६४ हरे रङ्ग के पत्थर के खम्भों पर निर्मित हुआ था, और इस पर रङ्गीन रत्नों को जड़ कर फूल-पत्ती, पत्ती तथा वन के दृश्य बनाए गए थे। छत पर स्वर्ण का पत्तर मढ़ा था, जहाँ पर बारीक खुदाई और रङ्गीन मीना का काम हो रहा था। इस विशाल भवन में दुग्ध-फेन के समान उज्ज्वल वर्ण का अति मुलायम और बहुमूल्य बिछावन बिछा था। थोड़े-थोड़े अन्तर से बहुत सी वेदियाँ पृथक्-पृथक् बनी थीं, जहाँ कोमल उपाधान, मद्य के स्वर्ण-पात्र और प्यालियाँ, जुआ खेलने के पासे, तथा अन्य विनोद-सामग्री, भिन्न-भिन्न प्रकार के ग्रन्थ, बहुमूल्य चित्र तथा अन्य बहुत सी मनोरञ्जन की सामग्री थी।

महा प्रतिहार अलिन्द तक अतिथि-युवकों को लाता, वहाँ से प्रधान परिचारिका उसे कक्ष तक ले आती। कक्ष-द्वार पर स्वयं अम्बपालिका साक्षात् रति के समान आगत जनों का हाथ पकड़ कर स्वागत करती, एक वेदी पर ले जाकर बैठाती, सुगन्ध और पुष्प-मालाओं से सत्कार करती तथा अपने हाथ से मद्य ढाल कर पिलाती थी। उस स्वर्ग-सदन में, उस रूप-यौवन और जीवन के आलोक में, अर्द्ध रात्रि तक नित्य ही माधुर्य और आनन्द का प्रवाह बहता था। सैकड़ों दासियाँ दौड़-धूप करके याचित वस्तु तत्काल जुटा देतीं। फिर कुछ ठहर कर सङ्गीत-लहरी उठती। कोमल तन्तु-वाद्य गम्भीर मृदङ्ग के साथ वैशाली के श्रेष्ठ पुत्रों, राजवर्गियों और कुमारों के हृदयों को मसोस डालता था। वाद्य की ताल पर मोम की पुतली के समान कुमारियाँ मधुर स्वर में स्वर-ताल और मूर्च्छनामय सङ्गीत गान करतीं, और नर्तकियाँ ठुमक कर नाचती थीं। उस स्वप्न-सौन्दर्य के दृश्य को युवक सुगन्धित मद्य के घूँट के साथ पीकर अपने जन्म को धन्य मानते थे।

अम्बपालिका अब २० वर्ष की पूर्ण युवती थी। उसका यौवन और सौन्दर्य मध्याकाश में था। और लिच्छविगण तन्त्र के राजा ही नहीं, मगध, कोशल और विदेश के महाराजा तक उसके लिए सदैव अभिलाषी बने रहते थे। इन सभी महा नृपतियों की ओर से रत्न, वस्त्र, हाथी आदि भेंट में आते रहते थे और अम्बपालिका अपनी कृपा और प्रेम के चिन्ह-स्वरूप कभी-कभी ताज़े फूलों की एकाध माला तथा कुछ गन्ध द्रव्य उन्हें प्रदान कर दिया करती थी।

विधाता ने मानो उसे स्वर्ण से बनाया था। उसका रङ्ग गोरा ही न था, उस पर सुनहरी प्रभा थी—जैसी चम्पे की अविकसित कली में होती है। उसके शरीर की लचक, अङ्गों की सुडौलता वर्णन से बाहर की बात थी। उस सौन्दर्य में विशेषता यह थी कि समय का अत्याचार भी उस सौन्दर्य को नष्ट न कर सकता था। जैसे मोती का पर्त उतार देने से भीतर से नई आभा, नया पानी दमकने लगता है, उसी प्रकार अम्बपालिका का शरीर प्रति वर्ष निखार पाता था। उसका क़द कुछ लम्बा, देह मांसल और कुच पीन थे। तिस पर उसकी कमर इतनी पतली थी कि उसे कटिबन्धन बाँधने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग चैतन्य थे, मानो प्रकृति ने उन्हें नृत्य करने और आनन्द भोग करने को बनाया था।

उसके नेत्रों में सूक्ष्म लालसा की झलक और दृष्टि में ग़ज़ब की मदिरा भर रही थी। उसका स्वभाव सतेज था। चितवन में दृढ़ता, निर्भीकता, विनोद और स्वेच्छाचारिता साफ़ झलकती थी। उसे देखते ही आमोद-प्रमोद की अभिलाषा प्रत्येक पुरुष के हृदय में उत्पन्न हो जाती थी।

जैसा कहा जा चुका है, उसकी रङ्गत पर एक सुनहरी झलक थी। गाल कोमल और गुलाबी थे। ओठ लाल और उत्फुल्ल थे। मानो कोई पका हुआ रसीला फल चमक रहा हो। उसके दाँत हीरे की तरह स्वच्छ, चमकदार और अनार की पंक्ति की तरह सुडौल, कुच पीन तथा अनीदार थे। नाक पतली, गर्दन हंस-जैसी, कन्धे सुडौल, बाहु मृणाल-जैसी थी। सिर के बाल काले, लम्बे

और घुँघराले तथा रेशम से भी मुलायम थे। आँखें काली और कटीली, उँगलियाँ पतली और मुलायम थीं। उन पर उसके गुलाबी नाख़ूनों की बड़ी बहार थी। पैर छोटे और सुन्दर थे। जब वह ठसक के साथ उठ कर खड़ी हो जाती तो लोग उसे एकटक देखते रह जाते थे। उसकी भुजाओं और देह का पूर्व भाग सदा खुला रहता था।

६

वैशाली में बड़ी भारी बेचैनी फैल गई। अश्वारोही दल के दल नगर के तोरण से होकर नगर से बाहर निकल रहे थे। प्रतीहार लोग और किसी को न बाहर निकलने देते थे और न भीतर घुसने देते थे। तोरण के इधर-उधर बहुत से नागरिक सेना का यह अकस्मात् प्रस्थान देख रहे थे। एक पुरुष ने पूछा—'क्यों भाई, जानते हो यह सेना कहाँ जा रही है?' उसने कहा—'न, यह कोई नहीं जानता।' अश्वारोही दल निकल गया। पीछे कई सेना-नायक धीरे-धीरे परामर्श करते चले गए।

× × ×

क्षण भर में सम्वाद फैल गया। मगध के प्रतापी सम्राट् शिशुनागवंशी बिम्बसार ने वैशाली पर चढ़ाई की। गङ्गा के दक्षिण छोर पर दुर्जय मागध सेना दृष्टि के उस छोर से इस छोर तक फैली हुई थी। इस सेना में १० हज़ार हाथी, २० हज़ार अश्वारोही और पाँच लाख पैदल थे।

वैशाली के लिच्छविगण तन्त्र का प्रताप भी साधारण न था। गङ्गा के उत्तर कोण पर देखते-देखते सैन्य समूह एकत्रित हो गया। लिच्छवियों के पास ८ हज़ार हाथी, १ लाख अश्वारोही और ६ लाख पैदल थे।

तीन दिन तक दोनों दल आमने-सामने डटे रहे। तीसरे दिन लिच्छवि लोगों ने देखा, उस पार डेरों की संख्या कम हो गई है। निपुण सैनिक सहस्रों घाट से पार आने की तैयारी कर रहे हैं, यह समझने में देर न लगी। दोपहर होते-होते मागध सेना गङ्गा पार करने लगी। लिच्छवि-सेना चुपचाप खड़ी रही। ज्योंही कुछ सेना ने भूमि पर पैर रक्खा त्योंही वैशाली की सेना जय-जयकार करते बढ़ चली, मानों सहस्र उल्कापात हुए हों। मेघ-सङ्घर्षण की तरह घोर गर्जना करके दोनों सेनाएँ भिड़ गईं। मागध सेना की गति रुक गई। बाण, बर्छे और तलवारों की प्रलय मच गई। उस दिन, दिन भर संग्राम रहा। सूर्यास्त देख, दोनों सेना पीछे को फिरीं।

× × ×

२ मास से नगर का घेरा जारी है। बीच-बीच में युद्ध हो जाता है। कोई पक्ष निर्बल नहीं होता। नगर की तीन दिशाएँ मागध-शिविर से घिरी हैं। बीच में जो सबसे बड़ा डेरा है, उसके ऊपर सोने का गरुड़ध्वज अस्त होते सूर्य की किरणों से अग्नि की तरह दमक रहा है। उसके आगे एक स्वर्ण-पीठ पर गौर वर्ण सम्राट् विराजमान हैं। निकट एक-दो विश्वासी पार्श्वद हैं। सम्राट् अति सुन्दर, बलिष्ठ और गम्भीर मूर्त्ति हैं। नेत्रों में तेज और स्नेह, दृष्टि में वीरत्व और औदार्य तथा प्रतिभा में अदम्य तेज प्रकट हो रहा है। सम्राट् आधे लेटे हुए कुछ मन्त्रणा कर रहे हैं। एक कर्णिक नीचे बैठा उनके आदेशानुसार लिखता जाता है। एक दण्डधर ने आगे बढ़कर पुकार कर कहा—महा नायक युवराज भट्टारक पादीय गोपालदेव तोरण पर उपस्थित हैं। सम्राट् ने चौंक कर उधर देखा और भीतर बुलाने का सङ्केत किया। साथ ही कर्णिक और मन्त्री को विदा किया।

गोपालदेव ने तलवार म्यान से खींच शीश से लगाई और फिर विनम्र निवेदन किया 'महाराजाधिराज की आज्ञानुसार सब व्यवस्था ठीक है। देवश्री पधारने का कष्ट करें।' सम्राट् के नेत्रों में उत्फुल्लता उत्पन्न हुई। वे उठ कर वस्त्र पहनने के लिए पट-मण्डप में घुस गए।

७

वैशाली के राजपथ जनशून्य थे, २ प्रहर रात्रि जा चुकी थी, युद्ध के आतङ्क ने नगर के उल्लास को मूर्च्छित कर दिया था। कहीं-कहीं प्रहरी खड़े उस अन्धकारमयी रात्रि में भयानक भूत-से प्रतीत होते थे। धीरे-धीरे दो मनुष्य-मूर्तियाँ अन्धकार को भेदन करती हुई वैशाली के गुप्त द्वार के निकट पहुँचीं। एक ने द्वार पर आघात किया, भीतर प्रश्न हुआ—सङ्केत?

मनुष्य-मूर्ति ने कहा—अभिनय!

हलकी चीत्कार करके द्वार खुल गया, दोनों मूर्तियाँ भीतर घुस कर राजपथ छोड़, अँधेरी गलियों में अट्टालिकाओं की परछाईं में छिपती-छिपती आगे बढ़ने लगीं। एक स्थान पर प्रहरी ने बाधा देकर पूछा—'कौन?' एक

व्यक्ति ने कहा—'आगे बढ़ कर देखो।' प्रहरी निकट आया। हठात् दूसरे व्यक्ति ने उसका सिर धड़ से जुदा कर दिया। दोनों फिर आगे बढ़े। अम्बपालिका के द्वार पर अन्ततः उनकी यात्रा समाप्त हुई। द्वार पर एक प्रतीहार मानों उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। सङ्केत करते ही उसने द्वार खोल दिया और आगन्तुकगण को भीतर लेकर द्वार बन्द कर लिया।

आज इस विशाल राजमहल सदृश भवन में सन्नाटा था। न रङ्ग-बिरङ्गी रोशनी, न फ़व्वारे, न दास-दासी गणों की दौड़-धूप। दोनों व्यक्ति चुपचाप प्रतीहार के साथ जा रहे थे। सातवें अलिन्द को पार करने पर देखा, एक और काली मूर्ति एक खम्भे के सहारे खड़ी है। उसने आगे बढ़कर कहा—'इधर से पधारिए श्रीमान्!' प्रतिहार वहीं रुक गया। नवीन व्यक्ति स्त्री थी और वह सर्वाङ्ग काले वस्त्र से ढाँपे हुए थी। दोनों आगन्तुक कई प्राङ्गण और अलिन्द पार करते हुए कुछ सीढ़ियाँ उतर कर एक छोटे से द्वार पर पहुँचे जो चाँदी का था और जिस पर अतिशय मनोहर जाली का काम हो रहा था और उसी जाली में से छन-छन कर रङ्गीन प्रकाश बाहर पड़ रहा था।

द्वार खोलते ही देखा, एक बहुत बड़ा कक्ष भिन्न-भिन्न प्रकार की सुख-सामग्रियों से परिपूर्ण था। यद्यपि उतना बड़ा नहीं, जहाँ नागरिक जनों का प्रायः स्वागत होता था, परन्तु सजावट की दृष्टि से इस कक्ष के सम्मुख उसकी गणना नहीं हो सकती थी। यह समस्त भवन श्वेत और काले पत्थरों से बना था। और सर्वत्र ही सुनहरी पच्चीकारी का काम हो रहा था। उसमें बड़े-बड़े बिल्लौर के अठपहलू अमूल्य खम्भे लगे थे, जिनमें मनुष्य का हूबहू प्रतिविम्ब सहस्रों की संख्याओं में दीखता था। बड़े-बड़े और भिन्न-भिन्न भावपूर्ण चित्र टँगे थे। सहस्र दीप-गुच्छों में सुगन्धित तेल जल रहा था। समस्त कक्ष भीनी सुगन्ध से महक रहा था। धरती पर एक महा मूल्यवान् रङ्गीन बिछावन था, जिस पर पैर पड़ते ही हाथ भर धँस जाता था। ठीक बीचोबीच एक विचित्र आकृति की सोलह-पहलू सोने की चौकी पड़ी थी, जिस पर मोर-पङ्ख के खम्भों पर मोतियों की झालर लगा एक चन्दोवा तन रहा था। और पीछे रङ्गीन रेशम के परदे लटक रहे थे, जिनमें ताज़े पुष्पों का शृङ्गार बड़ी सुघड़ाई से किया गया था। निकट ही एक छोटी सी रत्न-जटित तिपाई पर मद्य-पात्र और पन्ने का एक बड़ा सा पान-पात्र धरा हुआ था।

हठात् सामने का परदा उठा और उसमें से वह रूप-राशि प्रकट हुई, जिसके बिना अलिन्द शून्य हो रहा था। उसे देखते ही आगन्तुकगण में से एक तो धीरे-धीरे पीछे हट कर कक्ष से बाहर हो गया, दूसरा व्यक्ति स्तम्भित-सा खड़ा रहा। अम्बपालिका आगे बढ़ी। वह बहुत महीन श्वेत रेशम की पोशाक पहने हुए थी। वह इतनी बारीक थी कि उसके आर-पार साफ़ दीख पड़ता था। उसमें से छन कर उसके सुनहरे शरीर की रङ्गत अपूर्व छटा दिखा रही थी। पर यह रङ्ग कमर ही तक था। वह चोली या कोई दूसरा वस्त्र नहीं पहने थी। इसलिए उसकी कमर के ऊपर के सब अङ्ग-प्रत्यङ्ग साफ़ दीख पड़ते थे।

विधाता ने उसे किस क्षण में गढ़ा था! हमारी तो यह धारणा है कि कोई चित्रकार न तो वैसा चित्र ही अङ्कित कर सकता था और न कोई मूर्तिकार वैसी मूर्ति ही बना सकता था।

उस भुवन-मोहिनी की वह छटा आगन्तुक के हृदय को छेद कर पार होगई। गहरे काले रङ्ग के बाल उसके उज्ज्वल और स्निग्ध कन्धों पर लहरा रहे थे। स्फटिक के समान चिकने मस्तक पर मोतियों का गुथा हुआ आभूषण अपूर्व शोभा दिखा रहा था। उसकी काली और कटीली आँखें, तोते के समान नुकीली नाक, विम्ब-फल जैसे अधर-ओष्ठ और अनार-दाने के समान उज्ज्वल दाँत, गोरा और गोल चिबुक बिना ही शृङ्गार के अनुराग और आनन्द बखेर रहा था। अब से ढाई हज़ार वर्ष पूर्व की वह वैशाली की वेश्या ऐसी ही थी।

मोती की कोर लगी हुई सुन्दर ओढ़नी पीछे की ओर लटक रही थी और इसलिए उसका उन्मत्त कर देने वाला मुख साफ़ देखा जा सकता था। वह अपनी पतली कमर में एक ढीला सा बहुमूल्य रङ्गीन शाल लपेटे हुए थी। हंस के समान उज्ज्वल गर्दन में अङ्गूर के बराबर मोतियों की माला लटक रही थी और गोरी-गोरी गोल कलाइयों में नीलम की पहुँची पड़ी हुई थी।

उस मकड़ी के जाले के समान बारीक उज्ज्वल परिधान के नीचे, सुनहरे तारों की बुनावट का एक अद्भुत घाँघरा था, जो उस प्रकाश में बिजली की तरह

चमक रहा था। पैरों में छोटी-छोटी लाल रङ्ग की उपानत थीं, जो सुनहरी फ़ीते से कस रही थीं।

उस समय कक्ष में गुलाबी रङ्ग का प्रकाश हो रहा था। उस प्रकाश में अम्बपालिका का मानों परदा चीर कर इस रूप-रङ्ग में प्रकट होना आगन्तुक व्यक्ति को मूर्तिमती मदिरा का अवतरण-सा प्रतीत हुआ। वह अभी तक स्तब्ध खड़ा था। धीरे-धीरे अम्बपालिका आगे बढ़ी। उसके पीछे १६ दासियाँ एक ही रूप और रङ्ग की, मानों पाषाण-प्रतिमाएँ ही आगे बढ़ रही थीं।

अम्बपालिका धीरे-धीरे आगे बढ़ कर आगन्तुक के निकट आकर झुकी और फिर घुटने के बल बैठ, उसने कहा—'परमेश्वर, परम वैष्णव, परम भट्टारक|महाराजाधिराज की जय हो!' इसके बाद उसने सम्राट् के चरणों में प्रणाम करने को सिर झुका दिया। दासियाँ भी पृथ्वी पर झुक गईं।

आगन्तुक महा प्रतापी मगध-सम्राट् बिम्बसार थे। उन्होंने हाथ बढ़ा कर अम्बपालिका को ऊपर उठाया। अम्बपालिका ने निवेदन किया—'महाराजाधिराज पीठ पर विराजें। सम्राट् ने ऊपर का परिच्छद उतार फेंका, वे पीठ पर विराजमान हुए।

अम्बपालिका ने नीचे धरती में बैठ कर सम्राट का गन्ध, पुष्प आदि से सत्कार किया। इसके बाद उसने अपनी मद-भरी आँखें सम्राट् पर डाल कर कहा—महाराजाधिराज ने बड़ी अनुकम्पा की, बड़ा कष्ट किया।

सम्राट् ने किञ्चित् मोहक स्वर में कहा—अम्बपाली! यदि मैं यह कहूँ कि केवल विनोद के लिए आया हूँ, तो यह यथार्थ बात नहीं—मैं तुम्हारे रूप-गुण की प्रशंसा सुन कर स्थिर नहीं रह सका, और इस कठिन युद्ध में व्यस्त रहने पर भी तुम्हें देखने के लिए शत्रुपुरी में घुस आया, परन्तु तुम्हारा प्रबन्ध धन्य है।

अम्बपालिका—(लज्जित-सी होकर तथा ज़रा मुस्करा कर) मैं पहले ही सुन चुकी हूँ कि देव स्त्रियों की चाटुकारी में बड़े प्रवीण हैं।

सम्राट्—चाटुकारी नहीं, अम्बपालिके! तुम वास्तव में रूप और गुण में अद्वितीय हो।

अम्बपालिका—श्रीमान्, मैं कृतार्थ हुई! इसके बाद वह अपने मुक्ता-विनिन्दित दाँतों की छटा दिखाते हुए सम्राट् की सेवा में खड़ी हुई। सम्राट् ने प्याला ले और उसे खींच कर बग़ल में बैठा लिया। सङ्केत पाते ही दासियों ने क्षण-भर में गायन वाद्य का सरञ्जाम जुटा दिया। कक्ष सङ्गीत-लहरी में डूब गया और उस गम्भीर निस्तब्ध रात्रि में मगध के प्रतापी सम्राट् उस एक वेश्या पर अपने साम्राज्य को भूल बैठे!

८

एक वर्ष बीत गया। प्रतापी लिच्छवि-राज मगध-साम्राज्य के आगे नत-मस्तक करने को बाध्य हुए। अब वैशाली में वह उमङ्ग न थी। अम्बपालिका का द्वार सदैव बन्द रहता था। द्वार पर कड़ा पहरा था। कोई व्यक्ति न उसे देख सकता था, न उससे मिल सकता था। उसके बहुत से युवक मित्र उस युद्ध में निहत हुए थे। पर जो बच रहे थे वे अम्बपाली के इस परिवर्त्तन पर आश्चर्यान्वित थे। वे किसी भी तरह उसका साक्षात् न कर सकते थे। दूर-दूर तक यह बात फैल गई थी।

अम्बपालिका के सहस्रावधि वेतन-भोगी दास-दासी, सैनिक और अनुचरों में से भी केवल दो व्यक्ति थे, जो अम्बपाली को देख सकते और उससे बात कर सकते थे। एक प्रधान परिचारिक यूथिका, दूसरा एक वृद्ध दण्डधर, जिसे भीतर-बाहर सर्वत्र आने की स्वतन्त्रता थी। सम्राट् का आगमन केवल इन्हीं दोनों को मालूम था और ये दोनों ही यह रहस्य भी जानते थे कि अम्बपालिका को सम्राट् से गर्भ है।

यथासमय पुत्र प्रसव हुआ। यह रहस्य भी केवल इन्हीं दो व्यक्तियों पर ही प्रकट हुआ। और वह पुत्र उसी दण्डधर ने गुप्त-रूप से राजधानी में जाकर मगध-सम्राट् की गोद में डाल कर, अम्बपालिका का अनुरोध सुना कर कहा—महाराजाधिराज की सेवा में मेरी स्वामिनी ने निवेदन किया है कि उनकी तुच्छ भेंट-स्वरूप मगध के भावी सम्राट् आपके चरणों में समर्पित हैं। सम्राट् ने शिशु को सिंहासन पर डाल कर वृद्ध दण्डधर से उत्फुल्ल नयन से कहा—'मगध के भावी सम्राट् को झटपट अभिवादन करो।' दण्डधर ने कोश से तलवार निकाल, मस्तक पर लगाई और तीन बार जयघोष करके तलवार शिशु के चरणों में रख दी। सम्राट् ने तलवार उठा कर वृद्ध की कमर में बाँधते-बाँधते कहा—अपनी स्वामिनी को मेरी यह तुच्छ भेंट देना। यह कह कर उन्होंने एक

वस्तु वृद्ध के हाथ में चुपचाप दे दी। वह वस्तु क्या थी, यह ज्ञात होने का कोई उपाय नहीं।

६

भगवत् बुद्ध वैशाली में पधारे हैं और अम्बपालिका की बाड़ी में ठहरे हैं। आज हठात् अम्बपालिका के महल में हलचल मच रही है। सभी दास-दासी, प्रतिहार, द्वारपाल दौड़-धूप कर रहे हैं। हाथी, घोड़े, पालकी, रथ सज रहे हैं। सवार शस्त्र-सज्जित हो रहे हैं! अम्बपालिका भगवान् बुद्ध के दर्शनार्थ बाड़ी में जा रही है। एक वर्ष बाद आज वह फिर सर्व-साधारण के सम्मुख निकल रही है। समस्त वैशाली में यह समाचार फैल गया है। लोग झुण्ड के झुण्ड उसे देखने राजमार्ग पर डट गए हैं। अम्बपालिका एक श्वेत हाथी पर सवार होकर धीरे-धीरे आगे बढ़ रही है। दासियों का पैदल झुण्ड उसके पीछे है, उसके पीछे अश्वारोही दल है और उसके बाद हाथियों पर भगवान् की पूजा-सामग्री। सबके पीछे बहुत से वाहन, कर्मचारी और पौरगण।

अम्बपालिका एक साधारण पीत-वर्ण परिधान धारण किए अधोमुख बैठी है। एक भी आभूषण उसके शरीर पर नहीं है। बाड़ी से कुछ दूर ही उसने सवारी रोकने की आज्ञा दी। वह पैदल भगवान् के निवास तक पहुँची, पीछे १०० दासियों के हाथ में पूजन-सामग्री थी।

तथागत बुद्ध की अवस्था ८० को पार कर गई थी। एक गौर-वर्ण, दीर्घकाय, श्वेत-केश, कृश, किन्तु बलिष्ठ महापुरुष पद्मासन से शान्त मुद्रा में एक सघन वृक्ष की छाया में बैठे थे। सहस्रावधि शिष्यगण दूर तक मुण्डित शिर और पीत वस्त्र धारण किए स्तब्ध से श्री-मुख के प्रत्येक शब्द को हृत्पटल पर लिख रहे थे। आनन्द नामक शिष्य ने निवेदन किया—'प्रभु! अम्ब-पालिका दर्शनार्थ आई है। तथागत ने किञ्चित हास्य से अपने करुण नेत्र ऊपर उठाए। अम्बपालिका धरती में लोट कर कहने लगी—'प्रभो! त्राहिमाम्! त्राहिमाम्!'

भगवत् ने कहा—'कल्याण! कल्याण!' आनन्द ने कहा—उठो अम्बपाली! महाप्रभु प्रसन्न हैं! अम्बपाली ने यथाविधि भगवत् का अर्घ्यदान, पाद्य मधुपर्क से पूजन किया और चरण-रज नेत्रों में लगाई, फिर हाथ बाँध सम्मुख खड़ी हो गई।

भगवत् ने हँस कर कहा—अब और क्या चाहिए अम्बपाली?

प्रभो! भगवन्! इस अपदार्थ का आतिथ्य स्वीकार हो, इन चरण-कमलों की देवदुर्लभ रज-कण किङ्करी की कुटिया को प्रदान हो।

प्रभु ने करुण स्वर में कहा—तथास्तु! भिक्षुगण सहस्र कण्ठ से जयोल्लास में चिल्ला उठे। परन्तु यह क्या? उस नाद को विदीर्ण करता हुआ एक और नाद उठा। भगवत् ने पूछा—आनन्द! यह क्या है? "प्रभो! लिच्छविराजवर्ग और आमात्यवर्ग श्रीपाद-पद्म के दर्शनार्थ आ रहा है। प्रभु हँस पड़े। अम्बपालिका हट गई। प्रतापी लिच्छवि राजागण, राजकुमार, आमात्यवर्ग और अन्तःपुर ने एक साथ ही भगवत् के चरणों में महान् मस्तक झुका दिए। भगवत् ने कहा—'कल्याण! कल्याण!!'

महाराज ने पद-धूलि मुकुट पर लगा कर कहा—महाप्रभु! यह तुच्छ राजधानी इन चरणों के पधारने से कृतकृत्य हुई। परन्तु प्रभो! यह वेश्या की बाड़ी है, श्री-चरणों के योग्य नहीं। प्रभु के लिए राजप्रासाद प्रस्तुत है और राजवंश प्रभु-पद-सेवा को बहुत उत्सुक है। भगवत् ने हँस कर कहा—'तथागत के लिए वेश्या और राजा में क्या अन्तर है? तथागत समदृष्टि है।'

'प्रभो! तब कल का आतिथ्य राज-परिवार को प्रदान कर कृतार्थ करें।'

'वह तो मैं अम्बपाली का स्वीकार कर चुका!'

राजा निरुत्तर हुए। वे फिर प्रणाम कर लौटे। कुछ श्वेत वस्त्र धारण किए थे, कुछ लाल और कुछ आभूषण पहने थे।

अम्बपालिका रथ में बैठ कर लौटी। उसने आज्ञा दी, मेरा रथ लिच्छवि महाराजों के बराबर हाँको। उनके पहिए के बराबर मेरा पहिया और उनके धुरे के बराबर मेरा धुरा रहे, तथा उनके घोड़े के बराबर मेरा घोड़ा।

लिच्छवियों ने देख कर क्रोध-मिश्रित आश्चर्य से पूछा—अम्बपालिके, यह क्या बात है? तू हम लोगों के बराबर अपना रथ हाँक रही है?

उसने उत्तर दिया—मेरे प्रभु! मैंने तथागत और उनके शिष्य वर्ग को भोजन का निमन्त्रण दिया है और वह उन्होंने स्वीकार किया है।

उन्होंने कहा—हे अम्बपाली ! हमसे एक लाख स्वर्ण-मुद्रा ले और यह भोजन हमें कराने दे।

'मेरे प्रभु, यह सम्भव ही नहीं है !'

'तब १०० ग्राम ले और यह निमन्त्रण हमें बेच दे'

'नहीं स्वामी ! कदापि नहीं।'

'आधा राज्य ले और यह निमन्त्रण हमें दे दे'

'मेरे प्रभु ! आप एक तुच्छ भूखण्ड के स्वामी हैं, पर यदि समस्त भूमण्डल के चक्रवर्ती भी होते और अपना समस्त साम्राज्य मुझे देते, तो भी मैं ऐसी कीर्ति की जेवनार को नहीं बेच सकती थी।

लिच्छवि राजाओं ने तब अपना हाथ पटक कर कहा—हाय ! अम्बपालिका ने हमें पराजित कर दिया, अम्बपालिका हमसे बढ़ गई । अम्बपालिके ! तब तुम स्वच्छन्दता से हमसे आगे रथ हाँको। अम्बपालिका ने रथ बढ़ाया। गर्द का एक तूफ़ान पीछे रह गया।

१०

दस सहस्र भिक्षुओं के साथ भगवान् बुद्ध ने अम्बपाली के प्रासाद को आलोकित किया। वैशाली के राजमार्ग में नगर के प्राण आ जूझे थे। महापुरुष बुद्ध और उनके वीतरागी भिक्षु भूमि पर दृष्टि दिए पैदल धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। नगर के श्रेष्ठिगण दूकानों से उठ-उठ कर मार्ग की भूमि को भगवान् के चरण रखने से पूर्व अपने उत्तरीय से झाड़ रहे थे। कोई नागरिक भीड़ से निकल कर पथ पर अपने बहुमूल्य शाल बिछा रहे थे। महाप्रभु बिना कुछ कहे एकरस धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। वह महान् संन्यासी, प्रबल वीतरागी महाप्राण वृद्ध-पुरुष श्रेष्ठ जय-जयकार की प्रचण्ड घोषणा से ज़रा भी विचलित नहीं हो रहा था। उसकी दृष्टि मानों पृथ्वी में पाताल तक घुस गई थी। पौर स्त्रियाँ झरोखों से खील और पुष्प-वर्षा कर रही थीं। अम्बपालिका का तोरण आते ही चार दण्डधरों ने दौड़ कर पथ पर कौशेय बिछा दिया। द्वार में प्रवेश करने पर सर्वत्र कौशेय बिछा था। अनगिनत कर्मचारी भिक्षुगण के सम्मानार्थ दौड़ पड़े। पीतवसनधारी मुण्डित भिक्षु नक्षत्रों की तरह उस विशाल प्राङ्गण में, महा जन-समूह में चमक रहे थे।

अतिथि-शाला में भगवत् के पहुँचते ही अम्बपालिका ने २०० दासियों के साथ स्वयं आकर तथागत के चरणों में सिर झुकाया और वहाँ से वह अपने अञ्चल से पथ की धूल झाड़ती हुई प्रभु को भीतरी अलिन्द तक ले गई। इस समय प्रभु के साथ केवल आनन्द चल रहे थे।

प्राङ्गण के मध्य में एक चन्दन की चौकी पर शुद्ध आसन बिछा था। अम्बपाली के अनुरोध पर प्रभु वहाँ विराजमान हुए। अम्बपाली ने अर्घ्य-पाद्य दान करके भोजन प्रस्तुत करने की आज्ञा माँगी। आज्ञा मिलते ही अम्बपाली स्वयं स्वर्ण-थाल में भोजन ले आई। अनेक प्रकार के चावल और रोटियाँ थीं। अम्बपाली सेवा में करबद्ध खड़ी रही। भगवान् ने मौन होकर भोजन किया और तृप्त होकर कहा—बस।

अम्बपाली के नेत्रों से अश्रुधारा बही। प्रभु ज्योंही शुद्ध होकर आसन पर विराजे, अम्बपाली ने पृथ्वी में गिर कर प्रणाम किया।

भगवत् ने कहा—अम्बपाली, अब और तेरी क्या इच्छा है ?

'प्रभु एक तुच्छ भिक्षा प्रदान हो ?'

तथागत ने गम्भीर होकर कहा—'वह क्या है ?'

'प्रभो ! आज्ञा कीजिए, कोई भिक्षु अपना उत्तरीय प्रदान करे।' आनन्द ने उत्तरीय उतार कर अम्बपाली को दे दिया। क्षण भर के लिए अम्बपाली भीतर गई। परन्तु दूसरे ही क्षण वह उसी वस्त्र से अङ्ग लपेटे आ रही थी। उस बौद्ध भिक्षु के प्रदान किए एकमात्र वस्त्र को छोड़ कर उसके पास न कोई और वस्त्र था न आभरण। उसके नेत्रों में अविरल अश्रुधारा बह रही थी। भगवत् विमूढ़ उसका व्यापार देख रहे थे। वह आकर भगवत् के सम्मुख फिर लोट गई।

भगवत् ने शुभ हस्त से उसे स्पर्श करके कहा—उठो, उठो ! हे कल्याणी ! तुम्हारी इच्छा क्या है ?

'महाप्रभु ! अपवित्र दासी की धृष्टता क्षमा हो, यह महा नारी-शरीर कलङ्कित करके मैं जीवित रहने पर बाधित की गई, शुभ सङ्कल्प से मैं वञ्चित रही; प्रभो, यह समस्त सम्पदा कलुषित तपश्चर्या का सञ्चय है। मैं कितनी व्याकुल, कितनी कुण्ठित, कितनी शून्य-हृदया रह कर अब तक जीवित रही हूँ, यह कैसे कहूँ। मेरे जीवन में दो ज्वलन्त दिन आए। प्रथम दिन के फल-स्वरूप मैं आज मगध के भावी सम्राट् की राजमाता हूँ, परन्तु भगवन् ! आज के महान् पुण्य-योग के फल-स्वरूप अब मैं इससे भी उच्च पद प्राप्त करने की धृष्ट अभिलाषा

करती हूँ। महाप्रभु प्रसन्न हों। जब भगवत् की चरण-रज से यह घर पवित्र हुआ, तब यहाँ विलाप और पाप कैसा? उसकी सामग्री ही क्यों, उसकी स्मृति ही क्यों?

इसलिए भगवत् के चरण-कमलों में यह सारी सम्पदा, महल, अटारी, धन, कोष, हाथी, घोड़े, प्यादे, रथ, वस्त्र, भण्डार आदि सब समर्पित है। प्रभु ने भिक्षु का उत्तरीय मुझे भिक्षा दिया है, मेरे शरीर की लज्जा निवारण को यह बहुत है स्वामिन! आज से अम्बपाली भिक्षुणी हुई। अब यह इस भिक्षा में प्राप्त पवित्र वस्त्र को प्राण देकर भी सम्मानित करेगी। हे प्रभु! आज्ञा हो।

इतना कहकर अविरल अश्रुधारा से भगवत्-चरणों को धोती हुई, अम्बपालिका बुद्ध की चरण-रज नेत्रों से लगा कर उठी, और धीरे-धीरे महल से बाहर चली। महा वीतराग बुद्ध के नेत्र आप्यायित हुए। उन्होंने 'तथास्तु' कहा और खड़े होकर उसका सिर स्पर्श करके कहा—कल्याण! कल्याण!! सहस्र-सहस्र कण्ठ से 'जय अम्बपालिके, जय अम्बपालिके' का गगन-भेदी नाद उठा। सहस्रों नर-नारी पीछे चले। अम्बपाली उस पीत परिधान को धारण किए, नीचा सिर किए, पैदल उसी राजमार्ग से भूमि पर दृष्टि दिए धीरे-धीरे नगर से बाहर जा रही थी और उसके पीछे समस्त नगर उमड़ा जा रहा था। खिड़कियों से पौर वधुएँ पुष्प और खील-वर्षा कर रही थीं।

भगवत् ने कहा—हे आनन्द, यह स्थान बौद्ध भिक्षुओं का प्रथम विहार होगा। बौद्ध भिक्षु यहाँ रह कर सन्मार्ग का अन्वेषण करेंगे—यही तथागत की इच्छा है।

आनन्द ने शिर झुकाया। भिक्षु-मण्डल जय-नाद कर उठा। बुद्ध भगवान् धीरे-धीरे उठ कर नगर के राज-मार्ग से होते हुए अम्बपालिका की बाड़ी में आकर अपने आसन पर विराजमान हुए। कुछ दूर एक वृक्ष की जड़ में अम्बपाली स्थिर बैठी थी। भगवान् को स्थित देख वह उठी और धीर भाव से प्रभु के सम्मुख आकर खड़ी हुई। भगवत् ने उसकी ओर देखा। अम्बपाली ने विनयावनत होकर कहा—

"बुद्धं सरणं गच्छामि"
"धर्मं सरणं गच्छामि"
"संघं सरणं गच्छामि"

तथागत स्थिर हुए। उन्होंने तत्काल पवित्र जल उसके मस्तक पर सिञ्चन किया और पवित्र वाक्यों का उपदेश देकर कहा—भिक्षुओ! महा साध्वी अम्बपाली भिक्षुणी का स्वागत करो।

फिर जयनाद से दिशाएँ गूँज उठीं और अम्बपाली तथागत तथा अन्य वृद्ध भिक्षुगण को प्रणाम कर वहाँ से चल दी और फिर वैशाली के पुरुष उसे न देख सके!!

शृङ्गार का अन्त

[रचयिता—श्री० 'कुमार', बी० ए०]

(१)

मेरी आँखों के निद्रा-पल,
किसने छल से छीने?
किसने लूट लिए मेरे वे,
स्वप्न-पुष्प रस-भीने?

(२)

जाग उठी, देखा आँखों में,
हाय! जल रही लाली।
अरुण ओष्ठ-सी पूर्व-दिशा थी,
पीती मद की प्याली॥

(३)

मुरझा जावें फूल—फूल की—
सूखी छवि से चाह बने!
ओस जले—उसके जलने से,
मेरी आतुर आह बने!!

महाकवि शैली और भारतवर्ष

[ले० श्री० 'गुप्त' बी० ए०]

शैली अङ्गरेज़ी साहित्य के उन कवियों में से हैं, जिन पर अङ्गरेज़ी भाषा को बड़ा गर्व है। अङ्गरेज़ी साहित्य के इतिहास के लेखक एवं सुप्रसिद्ध समालोचक डॉ० सेण्ट्सबरी (Dr. Saintsbury) का मत है कि शैली की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। सेण्ट्सबरी-जैसे विद्वान् द्वारा शैली को यह प्रमाण-पत्र मिलना, उसकी उच्चतम कवित्व शक्ति का द्योतक है।

आज हम अपने पाठक और पाठिकाओं के सम्मुख उन भावों का वर्णन करने का साहस करते हैं, जो इस महाकवि के हृदय में हमारे देश के प्रति अङ्कुरित हुए थे। शैली ने भारतवर्ष को कभी अपनी आँखों से नहीं देखा था। इस देश के लिए उसने जो कुछ भी लिखा है, उसका अवलम्ब उसका अपना हृदय ही है। सम्भव है, यात्रियों के विवरण से उसे कुछ सहायता मिली हो, परन्तु उसके काव्य में भारत का वही चित्र अङ्कित है, जो उसने अपने कल्पना के नेत्रों द्वारा देखा था।

यद्यपि शैली ने भारतवर्ष के ऊपर कोई विशेष कविता नहीं लिखी है, परन्तु उसकी बिखरी हुई पंक्तियों को एकत्रित करने पर हमें उसके उन विचारों का पूर्णतया परिचय मिल जाता है, जो उसके हृदय-मन्दिर में इस देश और यहाँ के निवासियों के प्रति सन्निहित थे। शैली के काव्य में चित्रित भारतवर्ष, राजनीतिक भारतवर्ष (Political India) नहीं है, वरन् सुन्दर एवं मनोहर पहाड़ों तथा झरनों से अलंकृत भारतवर्ष है। उसकी कविता में अङ्कित वह देश है, जो देव और देवियों की मातृभूमि है; धर्म का प्रार्थना-मन्दिर है, प्राकृतिक सौन्दर्य का निवास-स्थान है और अनिर्वचनीय रहस्यों की क्रीड़ाभूमि है। उद्विग्न-प्रेमी शैली ने अपने देश के किसी स्थान में बैठ कर हमारे देश की केवल इन्हीं बातों की कल्पना की थी; इनसे ही उसका मस्तिष्क प्रभावान्वित हुआ था और इसी का वर्णन हमें उसके काव्य में उपलब्ध होता है। शैली की प्रत्येक पंक्ति से भारत के प्रति उसकी आदर्श भक्ति का सन्देश निकलता है।

उस महाकवि द्वारा लिखित यहाँ के दृश्यों का वर्णन पढ़ कर कौन सा ऐसा पाठक होगा, जो उसे अपनी स्मृति से विस्मरण कर डाले। शैली की कविता-शैली बड़ी ही मनोहर और हृदयग्राही है। अपने समाज की रूढ़ियों को तोड़ कर वह प्रेम-साम्राज्य की स्थापना करना चाहता था, परन्तु उसके देशवासी तो क्या, स्वयं उसके सम्बन्धी उससे इस कारण असन्तुष्ट हो गए थे। समाज के अत्याचारों से पीड़ित होकर उसे अपनी मातृ-भूमि को अन्तिम नमस्कार करना पड़ा था। अपने निर्मम देशवासियों द्वारा निर्वासित होकर उसने निर्वासितों के स्वर्ग इटली प्रदेश (Paradise of the Exiles of Italy) की शरण ली थी। अल्पस (Alps) पहाड़ पर निवास करते हुए, उस पर पड़ी हुई अतुल हिम-राशि को देखकर ही कदाचित उसे हिम-आसन्न हिमालय एवं काश्मीर प्रदेशीय पहाड़ी घाटियों का ध्यान आया था। काश्मीर के सुन्दर एवं मनोरम स्थानों में ही उसे सबसे प्रथम शान्ति का आलोक दिखाई दिया था। 'चाँद' के पाठक और पाठिकाओं के मनोविनोदार्थ शैली की भारत-विषयक कुछ पंक्तियाँ यहाँ दी जाती हैं :—

अपनी एक कविता में जिसकी आरम्भिक पंक्ति है "मैं राजा नहीं हूँगा" (I would not be a king) वह भाग्य की अस्थिरता के विषय में अपने भाव प्रकट करता है। एक स्थान पर वह कह उठता है :—

"Would be and I were far away,
Keeping flocks on Himalay."

अर्थात्—"अच्छा होता यदि वह और मैं दूर हिमालय पर भेड़ों को चराते होते !"

अपने एक अपूर्ण नाटक में, जिसका प्रथम दृश्य (Indian Archipelago) के एक द्वीप पर आरम्भ होता है, वह एक टोना करने वाली स्त्री (Enchantress) का

वर्णन करता है। यह स्त्री भारतीय सामुद्रिक चोर (Indian Pirate) के प्रेम-पाश में फँस जाती है और एक नवयुवक को साथ लेकर पति-भक्ता की नाईं इधर-उधर अपने पति को ढूँढ़ती फिरती है। इस नवयुवक को देखकर एक पात्र पूछता है :—

"Fairest Stranger, when didst thou depart,
From the far hills where rose the springs India."

अर्थात्—"ऐ सुन्दर युवक! उन दूरवर्त्ती पहाड़ियों से, जो भारतवर्ष के झरनों का उद्गम हैं, तुम किस समय चले थे?"

पाठिकाएँ देखें, इस प्रश्न-कर्त्ता की उत्सुकता कितनी है और इससे उसकी भक्ति का श्रोत कितने वेग से बहता हुआ दृष्टिगोचर होता है।

शैली ने भारतवर्ष के झरनों और पहाड़ों की अपेक्षा, यहाँ के फूलों के विषय में अधिक लिखा है। कई स्थानों पर इन फूलों से उपमाओं और दृष्टान्तों का भी काम लिया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि—चम्पक (Jasmine)—(Juhe rose) ने अन्य पदार्थों की अपेक्षा उसकी कल्पना-शक्ति को विशेषतया आकर्षित किया था। "भारत की वायु के ऊपर कुछ पंक्तियाँ" (Lines to an Indian air) शीर्षक कविता में वह एक स्थान पर लिखता है :—

"The wandering airs they faint,
On the dark, the silent stream—
The Champak odours fail,
Like sweet thoughts in a dream."

अर्थात्—"चलती हुई वायु गहरी, नीरव नदी के कूल के ऊपर मूर्च्छित हो जाती है और चम्पक की सुगन्ध स्वप्न के मधुर विचारों की नाईं विलीन हो जाती है।"

किसी अन्य स्थान पर स्त्री की कोमलता की प्रशंसा करता हुआ वह लिखता है कि उसके रूप को देखकर—और मधुर-सुगन्ध ही के लिए विकसित होने वाले—मूर्च्छित हो जाते हैं।

"The Jassamine faint, and the sweet Juhe-rose
The sweetest flower for scent that blows."

उसी कविता के अन्तिम भाग में शैली ने लिखा है कि—

"भारतवर्ष के वे सुगन्धित, रँगीले और मधुर बिरवे, ओस के कणों ने जिनका भरण-पोषण किया था, दिन-प्रति दिन पत्ता-पत्ता होकर धूल में विलीन होगए।"

"And Indian plants of scent and hue,
The sweetest that ever were fed on dew
Leaf by leaf, day after day
Were massed into the common clay."

हमारे देश की सरलता और आत्म-त्याग ने भी शैली के हृदय पर अच्छा प्रभाव डाला था। उसका उदाहरण हमें उसके Hellas नामक गीत-नाट्य में मिलता है। एक भारत-निवासिनी अभागिनी दासी सुल्तान महमूद के पलङ्ग के पास बैठी हुई है और अपने स्वामी को सुलाने के निमित्त एक गीत गा रही है। वह कहती है :—

"I breathe my soul on thee!
And could my prayers avail,
All my loys should be,
Dead, and I would live to weep
So than mightst win one hour of quiet sleep."

अभिप्राय यह है कि मैं अपना जीवन तुम्हारे ऊपर न्योछावर करती हूँ और यदि मेरी प्रार्थना स्वीकार हो जावे, तो चाहे मेरा सुख और आनन्द नष्ट हो जावे और मुझे केवल रोने के लिए जीवित रहना पड़े, परन्तु मेरी अभिलाषा यही होगी कि किसी प्रकार तुम कम से कम घड़ी भर सुख की नींद सो सको। पाठिकाएँ देखें, इन शब्दों में कितना आत्म-त्याग है, परन्तु भारतीयों के लिए यह कोई आश्चर्यजनक नहीं। नहीं कह सकते जब एक दासी की आत्म-त्याग-कथा पढ़कर वह इस पर इतना मोहित हो गया था, तो भारत में आकर और यहाँ की आदर्श देवियों को अपनी आँखों से देखकर उसका हृदय भारत के प्रति कितनी सहानुभूति प्रकट करता। यही नहीं, एक और स्थान पर प्रेम-पीड़िता रोज़ेलिन (Resolind) अपने पति के वियोग में भारत की सती से अपने प्रेम की तुलना करती हुई कहती है :—

"The Indian on the pyre
Of her dead husband, half consumed
As well might there he false as I."

शैली आजीवन आत्म-ज्ञान का प्यासा रहा। उसने

भारतवर्ष के विषय में जो कुछ सुना अथवा पढ़ा था, उसी से इस देश के प्रति उसकी इतनी श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी। धर्म के विषय में उसके विचार वेदान्त से बहुत कुछ मिलते हैं और यदि हम यह कहें कि भारत ही उसके आत्म-ज्ञान का शान्ति-मन्दिर है तो कदाचित् उसमें कुछ अनुचित न होगा। शैली के दार्शनिक विचारों के विषय में हम फिर कभी लिखेंगे। इस समय अपनी दूसरी बात की पुष्टि का प्रमाण देकर इस लेख को समाप्त करते हैं।

शैली ने एक कविता लिखी है, जिसका नाम एलेस्टर (Alastor) है। यह एक अन्योक्ति (Allegory) है। इसमें एक शीलवान् तथा नवयुवक का चित्र अङ्कित किया गया है। (यह युवक वास्तव में शैली के अतिरिक्त कोई और नहीं है) यह युवक आत्म-ज्ञान का इच्छुक है और उस ज्ञान की प्राप्ति के लिए वह इधर-उधर घूमता फिरता है। उसकी उत्कट अभिलाषा ऐसे व्यक्ति से वार्त्तालाप करने की है, जो उसी के समान हो (He has 'a thirst for intercourse with an intelligence similar to itself.' " The prototype of his conception.") निराश घूमता-घूमता वह उस स्थान पर पहुँच जाता है, जहाँ से सिन्धु तथा अन्य नदियाँ निकलती हैं। आनन्दपूर्वक वह इस मार्ग पर चलता चला जाता है, यहाँ तक कि वह काश्मीर की घाटियों में एक निर्जन एकान्त स्थान में, जहाँ नाना भाँति के सुगन्धित फूल खिले हुए हैं, आ पहुँचता है।

" O'er the Arial mountains which pour down
Indus and Oxus frow their icy canes
In Joy and exultation held his way,
I'ill in the Vale of Cashmir, far within
Its loveliest dell, where odours plants entwine
. . . ."

यहाँ चट्टानों के नीचे एक निकुञ्ज में बहती हुई नदी के कूल पर विश्राम लेने के लिए लेट जाता है।

" Beneath the hollow rocks a natural bower
Beside a Sparkling riverlet stretched
His languid limbs."

इसी स्थान पर, इसी भारत-भूमि में उस श्रान्त पथिक को आशा का आलोक दिखाई पड़ता है। युवक उस सुख-स्वप्न में एक सुन्दरी का दर्शन करता है। स्त्री अपने मुख पर परदा डाले हुए है। उस सुन्दरी का शब्द ध्यानावस्थित विचार-मग्न श्रान्त युवक की आत्मा से निकले हुए शब्द से बिलकुल मिल जाता है।

" Her Voice was like the Voice of his own
soul
Heard in the calm of thought."

"ज्ञान, सत्यता और शील, यही उस सुन्दरी के गीत की तानें हैं। दैविक स्वतन्त्रता की आशाएँ ही उसके प्रिय विचार हैं। वह स्वयं एक कवि है।

" Knowledge, and truth and vertue were her
theme
And lofty hopes of divine liberty
Thoughts the most dear to him and poesy
Herself a poet."

कहने का तात्पर्य यह है कि उस युवक को एक ऐसी ही युवती मिलती है, जो युवक के आदर्श के अनुसार है (The prototype of his conception) और उसको यह सफलता केवल भारतवर्ष ही में प्राप्त होती है। हम पहले ही कह चुके हैं कि Alastor एक अन्योक्ति है, अतएव भारत के प्रति शैली का भाव क्या था, इसका विचार विचारशील पाठक इस कविता से स्वयं कर लें।

एक तारा के प्रति

[रचयिता—श्री० प्रबोधचन्द्र जी]

(१)

नील नभ के सुन्दर शृङ्गार,
रजनि-लतिका के कोमल फूल।
उषा-रमणी के तिलक अनूप,
चमकते ऐ तारे, सुख-मूल॥

(२)

दिवस का हो जाता जब अन्त,
प्रकृति करने जाती विश्राम।
जगत-रव पड़ जाता है मन्द,
लोग जब आते निज-निज धाम॥

(३)

क्षितिज के अञ्चल पर सानन्द,
खेलता जब तम और प्रकाश।
पहुँच जाते नभ में चुपचाप,
बनाते उसे निशा-आवास॥

(४)

घना हो जाता तम सब ओर,
दीखती कहीं न कोई चीज़।
जला करती है कैसी आग,
तुम्हारे हृदय-देश के बीच॥

(५)

कहो तो, किस नेही का नेह,
जलाता तुमको सारी रात।
दीखते किस दुख से हो दुखित,
बताते ज़रा न अपनी बात।

(६)

धरातल पर नित आँखें डाल,
खोजते हो किसको सुकुमार
रत्न वह कोई है अनमोल?
किसी प्रेमी का खोया प्यार?

(७)

निरन्तर हुआ करेगी खोज,
नहीं है क्या इसका अवसान?
प्रतीक्षा का कब होगा अन्त,
कहो, कब टूटेगा यह ध्यान?

(८)

सखे! रख दो अन्तर को खोल,
नहीं कुछ है लज्जा का काम।
तुम्हारा-सा मेरा भी हाल,
न मिलता कहीं तनिक विश्राम!!

(९)

हृदय में जलती रहती आग,
जगत में छाया है तम घोर।
न मेरा है कोई अवलम्ब,
दीखता कहीं न दुख का छोर।

(१०)

घोर इस कोलाहल के बीच,
हो रहा सूनेपन का भान;
कहाँ है उस प्रकाश का मार्ग,
आह! मेरा कुण्ठित है ज्ञान!

(११)

दीखता कोई अभिनव रूप—
और हट जाता तम का राज।
मिलन को देता बाहु पसार,
नहीं आता पर कुछ भी हाथ!!

(१२)

सखे! इतना ही है सन्तोष,
'मुझी सा तुम हो दुख से चूर।'
सुनोगे मन दे मेरा वृत्त,
जलन इससे कुछ होगी दूर!!

(१३)

रहे कोई दुखिया के साथ,
करे हिय को सान्त्वना-प्रदान!
सुने सारा सुख-दुख का हाल,
यही सबसे बढ़कर वरदान!!

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह

[लेखक—"पागल"]

दूसरा खण्ड

३

इसी तरह डॉक्टर सन्तोषानन्द से मुझसे बराबर भेंट होती रही। कभी वह मेरे घर आते और कभी मैं उनके यहाँ चला जाता था। मगर उन्होंने फिर कभी मेरी अलमारी के पीछे वाली तसवीर के बारे में कोई पूछ-पाछ न की। बल्कि मिलने पर वह सदा यही उद्योग करते थे कि मेरा मन बहले और मेरा दुखड़ा याद आकर मुझे न सतावे। इस मेल-जोल से उन्हें मेरी आर्थिक कठिनाई का हाल भली-भाँति मालूम होगया। यद्यपि नित्य ही प्रकाशकों और सम्पादकों के पत्र चित्रों और डिज़ाइनों की माँग के लिए आया करते थे और उनमें उचित पुरस्कार देने के वादे भी होते थे। फिर भी मैं अपनी परेशानी के कारण उन लोगों की आज्ञा कई दिनों से पालन न कर सका था। अन्त में एक दिन जब मेरा आख़िरी पैसा ख़र्च होगया और घर में दो ही चार दिन चलने भर की सामग्री रह गई, तब मुझे रुपयों की फ़िक्र हुई और चित्रों की माँग के ख़तों का ढेर सामने रख कर बैठा। उनको एक-एक करके पढ़ता था, सोचता था, फिर अलग रख देता था। घण्टों हो गए, मगर किसी भी माँग के योग्य मैं कोई चित्र का विषय नहीं सोच पाया। अपने दिमाग़ की यह दुर्दशा देख कर मैं झल्ला उठा और उन ख़तों को फाड़ने लगा। इसी बीच में डॉक्टर सन्तोषानन्द आ गए।

सन्तोषानन्द—भई, यह क्या फाड़े डालते हो?

मैं—तस्वीरों की माँग के पत्र।

सन्तोषानन्द—क्यों?

मैं—मेरे पास इन पत्रों के उत्तर देने के लिए टिकट के दाम तक नहीं हैं, क्या करूँ?

सन्तोषानन्द—भई वाह! अजब आदमी हो। जब ख़र्च की तङ्गी ऐसी है, तब तो तुम्हें इन्हें और भी ख़र-आँखों पर रखना चाहिए। क्योंकि इन पर अमल करने से तुम्हें रुपए मिल सकते हैं, जिनकी तुम्हें ज़रूरत है।

मैं—फिर भी आज तो नहीं मिल सकते। मेरी इस वक़्त की ज़रूरत तो इनसे नहीं दूर हो सकती। तब वह मेरे किस काम के?

सन्तोषानन्द—अगर पहले से चेते होते तो आज यह नौबत ही क्यों आती? इसलिए आदमी को हमेशा आगे की फ़िक्र अभी से रखना चाहिए। आज का सङ्कट अगर इनसे नहीं दूर हो सकता, फिर भी इनसे आइन्दा की मुसीबत कटने की उम्मीद तो है। इस तरह दौलत और नाम पर लात न मारो। आदमी बनो और काम करो।

मैं—किस बिरते पर? दिमाग़ में तो हाहाकार मचा हुआ है। न कल्पना में दम है और न सूझ और उपज में कुछ शक्ति है। उस पर उम्मीद पर काम करने को कहते हो? हाय! किस तरह करूँ?

सन्तोषानन्द—उफ़! निराशा ने तुम्हारी कला भी छीन ली? अफ़सोस! ख़ैर! इन ख़तों को फाड़ो मत। क्योंकि पत्रों का उत्तर न देना हद दर्जे की असभ्यता है। मैं नहीं चाहता कि मेरे मित्र पर ऐसा कलङ्क लगे। इसलिए इन्हें मुझे दे दो, मैं तुम्हारा सेक्रेटरी बन कर इन सभों के उत्तर दे दूँगा।

इतना कह कर वह मेरे ख़तों का बण्डल समेट ले गए। एकाध जगह मेरे कुछ पुरस्कार बाक़ी थे, जिनका इन्तज़ार मैं इन दिनों बड़ी बेचैनी से करता था। मगर जब दूसरे दिन की भी डाक ख़ाली गई, तब तो मेरे होश उड़ गए, और मैं सम्पादकों और प्रकाशकों पर जल मरा। मन ही मन कुढ़ कर यही कहता था कि ये लोग बस अपनी ग़रज़ देखते हैं, दूसरे की नहीं। इतने ही में एक पालकी-गाड़ी मेरे दरवाज़े के सामने रुकी और उसमें

से एक सोलह बरस की अति सुन्दरी नवयुवती उतरी। वह सीधे मेरे कमरे में इस तरह पहुँची, मानो वह वहाँ कई बार आ चुकी है। यद्यपि मेरे पास चित्र खिंचाने के लिए पहले कितनी ही महिलाएँ आया करती थीं, तो भी इस नवयुवती को मैंने आज के पहले कभी नहीं देखा था। आने वाली हिन्दुस्तानी स्त्रियों के सङ्ग कोई न कोई नौकरानी, घर का आदमी या एक छोटा लड़का अवश्य रहा करता था, और आने पर पहले-पहल उनमें कुछ न कुछ सङ्कोच होता था। मगर इसके साथ न कोई साथी था और न नई जगह पर आने की झिझक ही थी। मैंने अपनी जगह से उठ कर इसका स्वागत किया। क्योंकि मैं विलायती मिसों और मेमों की सैकड़ों तस्वीरें बना चुका था, और इन लोगों के प्रभाव से स्त्रियों के प्रति आदर-भाव प्रकट करने की मुझे एक आदत-सी पड़ गई थी। फिर भी वह मेरे नमस्कार करने के पहले ख़ुद ही नमस्कार करके बोल उठी।

वह—मैं आपको एक कष्ट देने के लिए आई हूँ। यदि आज्ञा दें तो कहने का साहस करूँ।

मैंने एक कुरसी सरका के उसे उस पर बैठने का इशारा किया। वह धन्यवाद दे के बैठ गई। मैं भी दूसरी कुरसी पर बैठ गया।

मैं—कहिए, कैसे आपने तकलीफ़ की?

उसने अपनी कुर्ती की जेब से एक मोड़ा हुआ काग़ज़ निकाल कर मेरे हाथ में दिया और कहा—कृपा करके मेरा एक चित्र खींच दें।

मैंने स्त्रियों का चित्र खींचना बहुत दिनों से छोड़ दिया था। क्योंकि जिस काम में मेरा जी लगता न था वह मैं किसी तरह भी नहीं कर सकता था। जब किसी की आँखें सूर्य की चमक से चौंधिया जाती हैं, तब वह चिराग़ की ज्योति की ओर देखना किस तरह गवारा करे? इसलिए मैंने चित्र खिंचवाने वाली अन्य स्त्रियों की तरह इसे भी टालना चाहा।

मैं—मैं फ़ोटो नहीं खींचता। बेहतर होता, आप किसी फ़ोटोग्राफ़र के पास जातीं।

वह—मैं जानती हूँ कि आप फ़ोटोग्राफ़र नहीं, बल्कि चित्रकार हैं। मैं फ़ोटो नहीं, मैं अलिन्द के हाथ से अपना चित्र उतरवाने आई हूँ।

मैं—बेकार है; क्योंकि अलिन्द की आँखों में सुन्दरता देखने की दृष्टि अब नहीं है। इसलिए उसकी तस्वीरों में फ़ोटो से अधिक सुन्दरता अब नहीं आती।

वह—बला से। यह आपके नहीं, मेरे विचारने की बात है।

मैं—जब कम दाम में आप फ़ोटो खिंचवा सकती हैं, तब ज़्यादा दाम ख़र्च करके हाथ से तसवीर बनवाना कहाँ की अक़्लमन्दी है?

वह—इससे आपको कोई बहस नहीं।

हर तरह से हार कर मैंने अन्त में असलियत कह दी।

मैं—आप नाहक़ मजबूर करती हैं। मैंने स्त्रियों का चित्र खींचना बहुत दिनों से छोड़ दिया है।

उसने मुस्करा कर मेरी तरफ़ देखा और पूछा—क्यों?

मैं—अपनी ख़ुशी।

वह—हम स्त्रियों पर इतनी नाराज़गी? मगर जनाब—

"न हर ज़न ज़नस्तो न हर मर्द मर्द।
ख़ुदा पञ्ज अङ्गुश्त इकसाँ न कर्द॥"

"ख़ैर, मैं एक सिफ़ारिशी ख़त भी लेती आई हूँ। क्योंकि मुझे पहले ही मालूम हो गया था कि आप स्त्रियों से नफ़रत करते हैं, इसलिए शायद आप चित्र बनाने में आनाकानी करें।"

मैंने अब तक उस काग़ज़ को खोल कर देखा न था, जो उसने मुझे पहले दिया था। इसलिए उसकी बात का कोई उचित जवाब दे न सकने के कारण मैं सर झुकाए उस काग़ज़ को चुपचाप खोलने लगा।

वह—वह ख़त नहीं है। ख़त तो मेरे पास है। उसे आप यों ही जेब में रख लीजिए।

तब तक उस मोड़े हुए काग़ज़ को मैंने खोल डाला और देखा तो मैं और भी दङ्ग हो गया। क्योंकि वह सौ रुपए का नोट था।

मैं—अरे! यह आपने क्या दिया? हिन्दुस्तानियों से मुझे एक चित्र के लिए सिर्फ़ पन्द्रह रुपए मिलते हैं। हाँ, अङ्गरेज़ों से पचीस रुपए लेता हूँ।

वह—मगर मैं सौ रुपए देकर आपकी कला और आपका अपमान करना नहीं चाहती।

मैं—माफ़ कीजिए, मैं इतना ले नहीं सकता।

वह—और मैं उसमें से एक कौड़ी भी वापस नहीं ले सकती। चाहे चित्र बनाइए, चाहे नहीं।

मैं—मगर मैं न डाकू हूँ कि आपको कम्बल ओढ़ा कर इस तरह लूटूँ और न मैं भिखमङ्गा हूँ कि मुफ़्त लूँ। इसलिए अगर मैं आपका चित्र बनाऊँगा तो उसकी उजरत पन्द्रह रुपए ही लूँगा, जो सब से पाता हूँ।

वह—यह बात है तो आपके चित्रशाला की कोई भी तस्वीर पन्द्रह रुपए में ख़रीद सकती हूँ?

मैं—हाँ, शौक़ से।

वह—मुकरिएगा तो नहीं?

मैं—हर्गिज़ नहीं।

वह—अच्छा, तो जो तस्वीर आपकी अलमारी के पीछे लगी हुई है, मुझे उसी दाम पर दे दीजिए।

यह सुनते ही मैं चौंक पड़ा। घबड़ा कर उसका मुँह निहारने लगा।

मैं—अरे! तुम्हें उसका हाल कैसे मालूम हुआ? तुम कौन हो देवी?

वह—इससे आपका क्या मतलब? आप वह चित्र दीजिए। बात पक्की हो गई।

मैं—नहीं, नहीं, हाथ जोड़ता हूँ। मेरा प्राण ले लो, पर वह चित्र न लो। वह बिक्री के लिए नहीं है। मैं उसे दुनिया की सारी दौलत पाने पर भी नहीं अलग कर सकता।

वह—क्यों जनाब, उसका मूल्य दुनिया की सारी दौलत भी कम है और मेरे चित्र का दाम सौ रुपए भी नहीं हो सकते? ख़ैर! अब तो उसे आपको अलग करना ही होगा—ज़बान बदली नहीं जा सकती।

मैं—नहीं, ईश्वर के लिए ऐसा न कहो। मुझे बे-मौत न मारो—मेरे जीवन का एकमात्र सहारा न छीनो। यह छोड़ कर जो कुछ कहो, मैं मान लूँगा।

वह—अच्छा, तो मेरा चित्र बनाइए और मेरी तुच्छ भेंट स्वीकार कीजिए।

मैं—बेहतर है। मगर वह सिफ़ारिशी ख़त?

वह—अब उसकी ज़रूरत नहीं रही।

४

एक सप्ताह तक लगातार वह मेरी चित्रशाला में आती रही और हर बार सिर्फ़ पन्द्रह मिनट से आध घण्टा तक चित्र खिंचाने के लिए बैठती थी। इतने ही दिनों में वह मुझसे ऐसी बेबाक हो गई और इस तरह खुल कर मिलने लगी, मानो वह कोई स्त्री नहीं बल्कि कोई पुरुष-मित्र है। फिर भी वह मेरे लिए एक गहरी समस्या थी। उसकी अवस्था कम और सूरत से भोलापन टपकने पर भी उसकी बातों से योग्यता और ज्ञान की धाराएँ बहती थीं, जिनमें पड़ कर मैं चकित होकर रह जाता था और उसका अदब करता था। उसके गुणों को मैं बहुत-कुछ पहचान गया था, तोभी मैं उसे न जान सका कि वह कौन है! जब कभी इसकी बाबत मैंने कुछ पूछना चाहा, तब वह कोई न कोई ऐसी बात कह बैठती थी कि मैं निरुत्तर होकर चुप हो जाता था। उसके बारे में मुझे सबसे ज़्यादा ताज्जुब इसका होता था कि उसे मेरी अलमारी के पीछे वाली तस्वीर का हाल किस तरह मालूम हुआ। क्योंकि उस तस्वीर को मेरे सिवा, जिसकी वह थी, वह जानती थी या इटालियन कलाविद और तत्वज्ञानी मिकाशियो, या फिर डॉक्टर सन्तोषानन्द। अन्य किसी की इस संसार में उस पर कभी दृष्टि नहीं पड़ी थी। इस बीच में डॉक्टर साहब से भी भेंट नहीं हुई थी, ताकि मैं उनसे इस भण्डा के फूटने का कुछ पता लगाता। क्योंकि तीन दिन तक मैं इसी चिन्ता में लीन रहने के कारण उनके यहाँ न जा सका और चौथे दिन से सम्पादकों और प्रकाशकों के पास मेरी तरफ़ से डॉक्टर साहब के भेजे हुए ख़तों के उत्तर में चित्रों की माँग पेशगी पुरस्कार के साथ आने लग गई। रुपए पहले मिल जाने से मुझे अब झख मार के उन लोगों की आज्ञाएँ पालन करने में भी लग जाना पड़ा। काम की अधिकता इतनी हो गई कि मैं दो मिनट के लिए भी अपनी चित्रशाला के बाहर नहीं निकल सकता था।

आठवें दिन उस नवयुवती का चित्र सम्पूर्ण रूप से तैयार हो गया। मैं तख़्ते पर से उसका 'Canvas' (खींचे हुए चित्र का कपड़ा) उतार कर लपेटने जा रहा था कि डॉक्टर सन्तोषानन्द ने प्रवेश किया। मैं अपने पेशे के नियमों के अनुसार इस चित्र पर कोई परदा डाल देना चाहता था, क्योंकि वह कल्पित नहीं, बल्कि एक जीती-जागती नवयुवती की तस्वीर थी। बिना उसकी अनुमति के मैं इसे किसी को दिखा नहीं सकता था। मगर मैं उनके एकाएक आ जाने से कुछ ऐसा सिटपिटा

गया कि मैं चित्र को छिपा न सका और उनकी दृष्टि उस पर पड़ गई। उन्होंने मेरे भाव को ताड़ते ही कहा—मुझे इसे देख लेने में कोई हर्ज नहीं है। मैं तारा को यों भी देख चुका हूँ। इसी लिए कह सकता हूँ कि तुमने उसकी तस्वीर बहुत ही सही और ख़ूब ही खींची है। शाबाश! मगर × × ×

उनके इस 'मगर' के शब्द ने इस नवयुवती के सम्बन्ध में उनसे कुछ जानने की मेरी बढ़ती हुई उत्सुकता को चट दबा कर मुझे इस चित्रकारी पर उनकी समालोचना सुनने के लिए व्याकुल कर दिया। मैंने अधीर होकर पूछा—मगर क्या? हाँ-हाँ, कहिए! रुक क्यों गए।"

सन्तोषानन्द—कुछ नहीं! तुमने तो फ़ोटो के कैमरा को भी मात कर दिया। इस पर कोई कुछ कह ही क्या सकता है।

डॉक्टर ने प्रशंसा की आड़ में इतना गहरा आक्षेप किया कि मैं उनकी इस कला का ज्ञान देख कर मुँह निहारता रह गया। क्योंकि जो मर्म उनकी बात में छिपा हुआ था, वह हर चित्रकार भी नहीं जानता।

मैं—डॉक्टर साहब, मैं नहीं जानता था कि तुम इस कला में भी इतनी गहरी पैठ रखते हो। मगर भई, यह भी तो ख़्याल करो कि यह कल्पित नहीं, बल्कि सच्ची तस्वीर है। इसलिए जितनी सुन्दरता इसकी सूरत के रङ्ग और रूप में है वही तो इसमें दिखा सकता था।

डॉक्टर—तो क्या तुम समझते हो कि सुन्दरता केवल रूप और रङ्ग में होती है?

अब तो तत्व के इस गूढ़ प्रश्न के आगे मुझे दाई से पेट छिपाते बन न पड़ा। इसीलिए विवश होकर साफ़-साफ़ मैं कहने लगा।

मैं—नहीं, सुन्दरता रङ्ग और रूप में नहीं, बल्कि भावों की मधुरता में होती है, जिसकी ज्योति से सूरत दमक उठती है और वह प्यारी मालूम होती है। रङ्ग और रूप कितने ही साफ़ और सुडौल क्यों न हों, मगर यदि उन पर भीतरी सौन्दर्य की आभा नहीं है तो वह दिन के चाँद की तरह हज़ार फीकों में फीके लगते हैं। उनमें आकर्षण या अपने को पुजवाने की शक्ति नहीं उत्पन्न होती, जो सुन्दरता का मुख्य गुण है। रङ्ग की सफ़ाई या चेहरे की सुडौल बनावट तो सुन्दरता को उत्तम रूप से प्रकट करने में केवल सहायता भर देती हैं। तभी तो संसार में करोड़ों अच्छी सूरतें कही जाने पर भी वे सभी को नहीं, बल्कि केवल उसी को सबसे अच्छी दिखाई पड़ती हैं, जिसके आगे उनके मधुर भाव खिल उठते हैं।

सन्तोषानन्द—या जो अपने अनुभवी हृदय की प्रेरणा से उनकी दमक को अनुभव करके निरखना चाहता हो। क्योंकि इन बातों को निरजीव फ़ोटो का कैमरा नहीं देख सकता। वह तो केवल बाहरी बनावट का नक़्शा उतारना जानता है। इसीलिए फ़ोटो के आविष्कार होने पर भी चित्रकारी का आदर है।

मैं—जानता हूँ डॉक्टर, ईश्वर ने मुझे इस भेद को लड़कपन ही में सुझा दिया था। इसी मर्म को जान कर मैंने अपनी कला की इतनी धूम मचा दी थी। यही मेरी सफलता का गुर था, जिसे यहाँ केवल एक इटालियन कलाविद् और तत्वज्ञानी मिकेशियो ने वही अलमारी वाली तस्वीर देख कर पहचाना था और यही मेरे पतन की गहराई है, जिसे तुमने आज इस चित्र को देख कर जाना। क्योंकि इसी ज्ञान के बल पर मैं ख्याति के इतने ऊँचे शिखर पर पहुँचा था और आज वही ज्ञान मुझे कुछ भी करने नहीं देता। अगर विवश होकर पेट के लिए कुछ करता हूँ, तो उसका नतीजा यह होता है, जिसे तुम देख रहे हो। इसीलिए मैं किसी सुन्दरी का चित्र नहीं खींचता। क्या करूँ, मेरी आत्मा स्वयं ही मरी हुई है। मैं किस बिरते पर किसी के आत्मिक सौन्दर्य को उभार कर निरखूँ और उसकी प्रतिभा की झलक अङ्कित करके चित्र की सुन्दरता बढ़ाऊँ। इसीलिए मैं इस सुन्दरी को किसी विशेष दृष्टि से नहीं देख सका, जिसमें वह अलौकिक मालूम होती, बल्कि उसी साधारण दृष्टि से देखा, जिससे उसे दुनिया देखती है या जैसी वह 'कैमरा' के 'प्लेट' पर दिखाई पड़ सकती है।

सन्तोषानन्द—ख़ैर! इसकी परवा न करो। अपना काम इसी तरह किए जाओ। तुम्हारी शक्तियाँ कितनी ही नष्ट हो जायँ, फिर भी मरा हुआ हाथी लाख टके का होता है। इसलिए जो कुछ तुम इस हालत में भी कर सकते हो, वह दूसरा नहीं कर सकता। यह भूल

कर भी न समझना कि मैंने इस चित्र को फ़ोटो से तुलना देकर तुम पर आक्षेप किया है। नहीं, बल्कि तुम्हारे अटल प्रेम को देख कर और भी चकित हो गया कि जिसके कारण तारा-ऐसी सुन्दरी में भी तुमको कोई विशेषता नहीं दिखाई पड़ी। इसीलिए उसका प्रभाव तुम्हारी कला पर उलटा पड़ते हुए देख कर मुझसे नहीं रहा गया और तुम्हें केवल सावधान करने की नीयत से सच्ची बात कह दी।

मैं—भाई, मैं तुम्हारे उपकारों को कभी भूल नहीं सकता। तुमने तो इस मुर्दे को जिलाने के लिए कुछ उठा नहीं रक्खा। मैं जानता हूँ कि आजकल काम की इतनी भीड़ किसकी बदौलत और क्यों है। मगर हाँ, यह तारा × × ×

सन्तोषानन्द—अच्छा, यह तो कहो कि वास्तविक सुन्दरता का मर्म जो तुमने बताया है, तुम्हें लड़कपन में किस तरह सूझा? यह तो ऐसे गूढ़ तत्व की बात है जो ज्ञानियों की ही समझ में आ सकती है।

मैं—अरे डॉक्टर! तुमने बड़ी पुरानी याद दिला दी। ख़ैर! सुनो। व्यापार में धन की वृद्धि होने के साथ पिता जी सट्टे का कारबार भी करने लगे थे। इसमें एक ही दिन में लाखों के वारे-न्यारे हो जाते हैं। इसलिए एक दिन भाग्य का पासा पलटा और हम लोग एकाएक गली के भिखारी हो गए। महाजनों ने हमारी सारी जायदाद पर अधिकार जमा कर हम लोगों को घर से निकाल बाहर कर दिया। उस वक्त थोड़ी-बहुत पूँजी जो पिता जी क़ुर्क़ी से बचा सके, उसे लेकर परदेश निकल खड़े हुए और भटकते-भटकते यहाँ पहुँचे और इसी मकान को किराए पर लेकर रहने लगे। उन दिनों यहाँ थिएटर की एक मशहूर कम्पनी आई हुई थी। उसमें विख्यात ऐक्ट्रेस मिस जहानारा काम करती थी। उसकी सुन्दरता पर सारा बनारस लट्टू था। और वह इस मकान की बाईं तरफ़, जो पीले रङ्ग की आलीशान कोठी है उसी में ठहरी हुई थी। चित्र निरखने की मुझमें स्वाभाविक रुचि होने के कारण मैं छुटपन में ही सौन्दर्योपासक हो गया था। इसलिए जहानारा की सुन्दरता की धूम सुन कर मुझे भी उसके देखने की इच्छा हुई। मगर पिता की आज्ञा बिना थिएटर जा नहीं सकता था और यों उसको देखना असम्भव था। क्योंकि वह कोठी के बाहर जब निकलती थी तो बुर्क़ा पहनकर और बन्द गाड़ी में। सौभाग्य से कोठे पर जिस कमरे में वह रहती थी, उसकी खिड़की के सामने मेरे कोठे की झरोखेदार ऊँची मुखडेर थी। एक दिन उसकी खिड़की खुली हुई पाकर मैं अपने कोठे पर चढ़ गया और अपने झरोखों से उसके कमरे में चुपचाप झाँकने लगा। उस समय वह शायद किसी नए तमाशे के लिए हाथ में छुरा लेकर ख़ून करने का भाव-प्रदर्शन का अभ्यास कर रही थी। उसे इस दशा में देख कर मैं काँप उठा। वह मुझे ऐसी कुरूपा, भद्दी और डिरावनी जान पड़ी कि मुझे किसी तरह भी विश्वास न हुआ कि यही जहानारा है, जिसने अपनी सुन्दरता से शहर भर को दीवाना बना रक्खा है। दूसरे दिन भी मैंने यही काररवाई की, इस ख़्याल से कि कल कोई दूसरी दिखाई पड़ी थी तो शायद आज वह देखने को मिल जाए। मगर झरोखों से झाँकते ही मैं अवाक् होकर रह गया। क्योंकि वही स्त्री उस दिन प्रेम-भाव में मस्त होकर प्रेम-क्रीड़ा का रिहर्सल कर रही थी। उस रोज़ वह कितनी प्यारी और कितनी मोहनी मालूम हुई कि मैं कह नहीं सकता। यदि कल वह साक्षात् राक्षसी थी तो आज वही सुन्दरता में रति को भी मात कर रही थी। तब जाना कि सुन्दरता के लिए रूप और रङ्ग से भी बढ़ कर कोई और ही चीज़ दरकार होती है।

सन्तोषानन्द—धन्य ईश्वर, कि तुम बड़ी ही सुन्दर युक्ति से इस कला के लिए सही रास्ते पर शुरू ही में आ गए। ईश्वर की देन इसी को कहते हैं।

मैं—भाड़ में गई ऐसी देन। यही तो मेरी जान की काल होगई। उफ़! इसी ने मुझे सत्यानाश किया।

सन्तोषानन्द—सत्यानाश किया कि आदमी से बढ़ा कर तुम्हें देवता बना दिया? इसी की बदौलत तुम्हारा आज इतना नाम है। और न जाने संसार कब तक तुम्हारे नाम को जपेगा।

मैं—मगर हाय!—"हमें क्या जो क़ब्र में मेले लगे, हम तो लहद में अकेले रहे।"

सन्तोषानन्द—अरे! फिर तुम पर वही काली धुन सवार हुई? तुम्हें किस तरह और कहाँ तक इससे बचाऊँ? अच्छा, मारो गोली इन बातों को। मेरा मन तो अब जहानारा का हाल सुनने के लिए व्याकुल हो रहा है। भला उसके बाद भी तुमने उसे फिर कभी देखा था?

मैं—हाँ भई, देखा था। क्योंकि उसकी सुन्दरता ने मुझ पर कुछ ऐसा जादू डाल दिया था कि मैं उसको नज़दीक से जी भर के देखने के लिए दीवाना हो गया। अख़बारों में ढूँढ़-ढूँढ़ कर उसके फ़ोटो देखे, परन्तु मुझे उनसे किसी तरह भी तृप्ति न हुई, क्योंकि उनमें वह बात न थी जो मेरी आँखों ने देखी थी। उसके पास पहुँचने की मैंने बहुतेरी तरकीबें कीं, मगर सब बेकार; क्योंकि बड़े-बड़े सेठ-साहूकार और नवाब लोग उससे मिलने के लिए तरसते थे तो फिर उनके आगे मुझ-ऐसे एक पन्द्रह बरस के छोकरे की भला क्या हस्ती थी? थिएटर के दरबानों ने मुझे कोठी के फाटक पर ही से दुरदुरा दिया। फिर भी मुझसे रहा न गया। मैंने जहानारा के नाम एक लम्बा-चौड़ा ख़त लिखा। उसमें क्या लिखा था, यह तो मुझे याद नहीं है, मगर इतना जानता हूँ कि मैंने अपनी लड़कपन की समझ के अनुसार बहुत कुछ लिखा था। उसे लेकर मैं अपने कोठे पर चढ़ गया। सोचा था कि आज मैं उसे खिड़कियों से पुकार कर किसी तरह इस ख़त को उसके पास पहुँचाऊँगा। मगर शाम तक उसकी खिड़की खुली ही नहीं, और मुण्डेरे के सूराख़ों से काग़ज़ फेंकना असम्भव भी जान पड़ा। तब मैंने तीर और कमान बनाए। आठ बजे रात को उसकी खिड़की खुली। उस समय वह मुँह फेरे हुए थिएटर जाने के लिए कपड़े पहन रही थी। मुझे पुकारने की हिम्मत न पड़ी। मैंने ख़त को तीर में बाँध कर चुपके से कमान द्वारा उसके कमरे में फेंक दिया और वहाँ से भाग खड़ा हुआ × × ×

सन्तोषानन्द घड़ी देखते हुए घबड़ा कर बोले—अच्छा भई, अब कल। मुझे एक मरीज़ देखने जाना है।

यह कह कर वह दन् से उठ कर चल दिए। जैसे ही वह कमरे से बाहर हुए वैसे ही तारा की गाड़ी मेरे द्वार के सामने आकर खड़ी हुई।

(क्रमशः)

निष्ठुर

[रचयिता—श्री० कालीप्रसाद जी भटनागर 'विरही']

(१)

जीवन सारा बीत चला है—
सहते-सहते विरह-व्यथा!
उस 'निष्ठुर' ने कभी न पूछा—
आकर मेरी करुण-कथा!!

(२)

फिर भी निष्ठुर दुनिया मुझको—
'निष्ठुर' कह करती बदनाम!
और निगोड़ी सखियों ने भी—
रक्खा है 'पत्थर' उपनाम!!

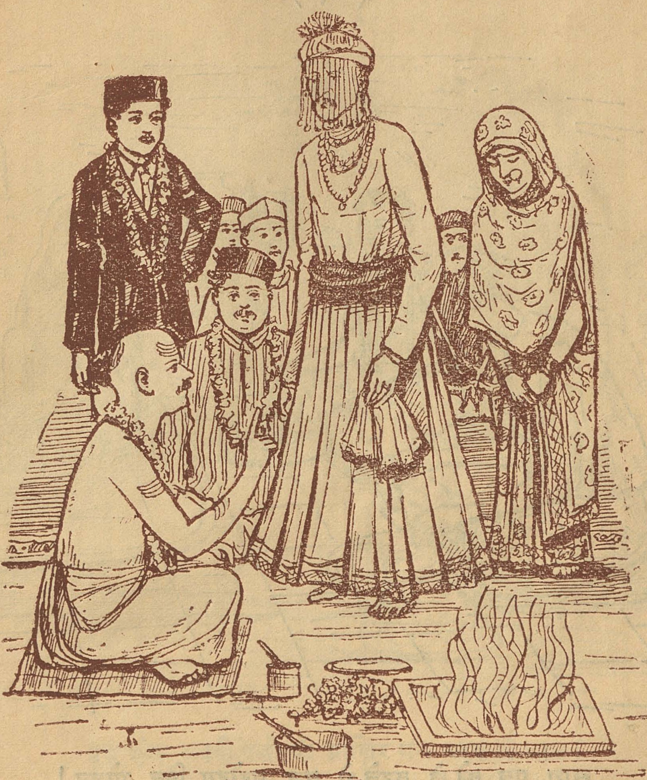
(३)

मैं निष्ठुर हूँ अथवा 'वे' हैं—
किससे कहूँ कि कर दो न्याय!
जब दुनिया ही तुली हुई है—
मुझ पर करने को अन्याय!!

व्यंग चित्रावली

[एक सच्ची घटना के आधार पर]

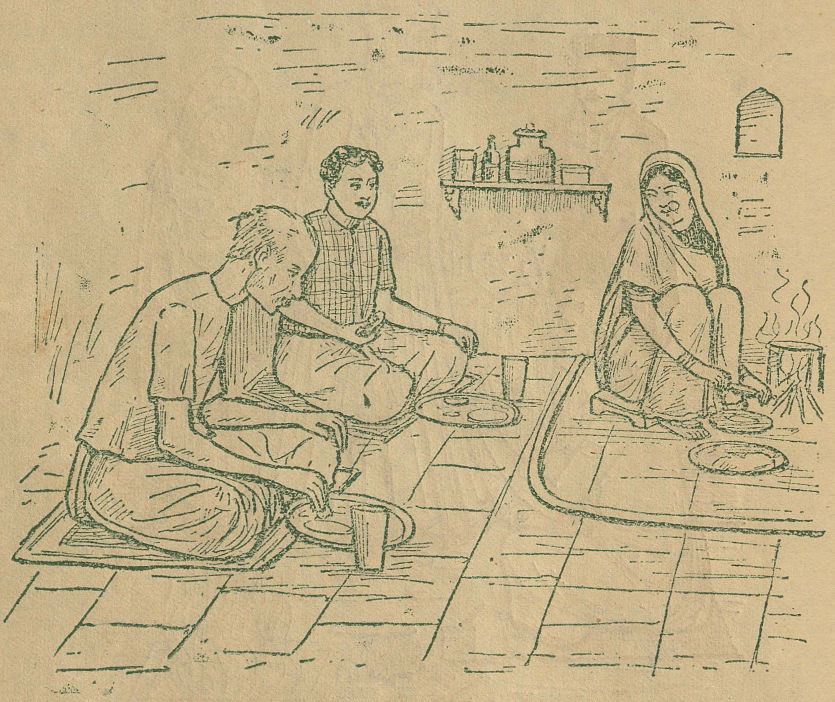
(१)



तन में आई अगर बुढ़ाई तो क्या ? मन है अभी जवान !
रमणी छूट नहीं सकती है, चाहे निकल जाय यह जान !!
यही सोचकर मन में विधि से वृद्ध महोदय करते ब्याह !
कुटुम्बियों को, पड़ोसियों को दिखलाने को गन्दी राह !!

चाँद

(२)



साथ पुत्र को ले करते थे वृद्ध महोदय नित भोजन !
उसी समय माँ औ' बेटे की लड़ती थीं आँखें छुन-छुन !!
दोनों ही में नया रक्त था, दोनों का था मन बेहाल !
वृद्ध भाँप क्या पाते, उनका निकट आ रहा था अब काल !!

चाँद

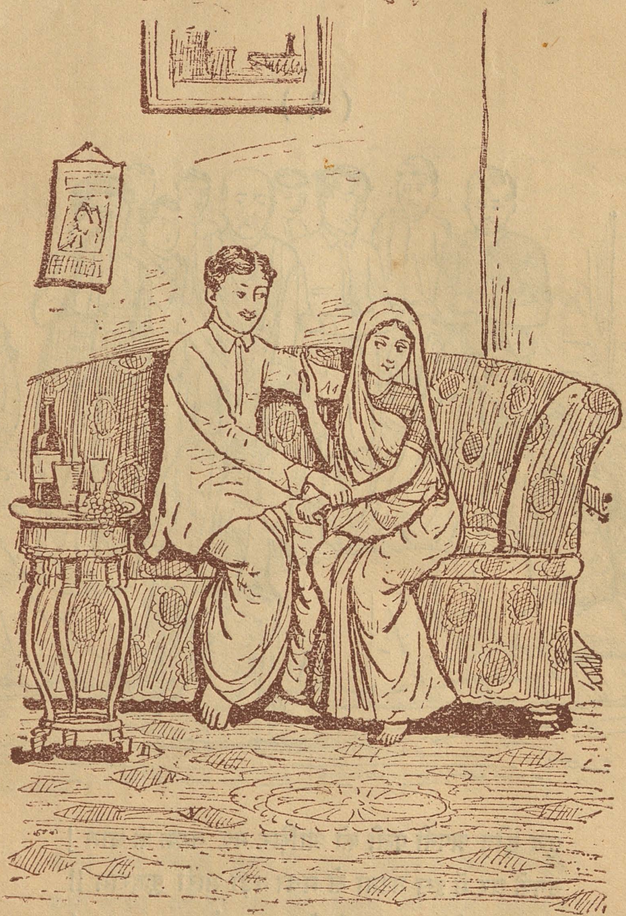
(३)



वृद्ध छोड़ अपनी पत्नी को आख़िर गए नरक के धाम !
उनके घर में इस घटना से मचा बड़ा भारी कुहराम !!
पर क्या होता, रङ्ग यही तो लाता बूढ़ेपन का ब्याह !
धन्य बुद्धि है उनकी जो जन, करते मन में ऐसी चाह !!

चाँद ❊

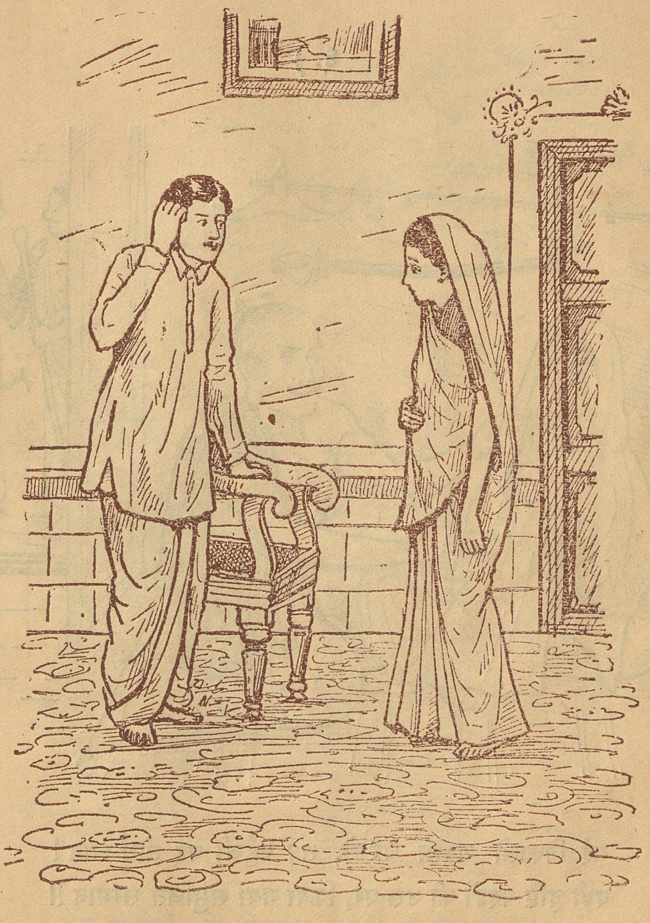
(४)



जब यों कण्टक दूर हो गया, होने लगा ऐश-आराम !
छोड़ पिता-सम्पत्ति भोगना, और कौन बेटे का काम ?
दोनों को यौवन के मद में सूझ न पड़ता था परिणाम !
हो यह सब कुछ, किन्तु बुरा है बस "विधवा-विवाह" का नाम !!

चाँद

(५)



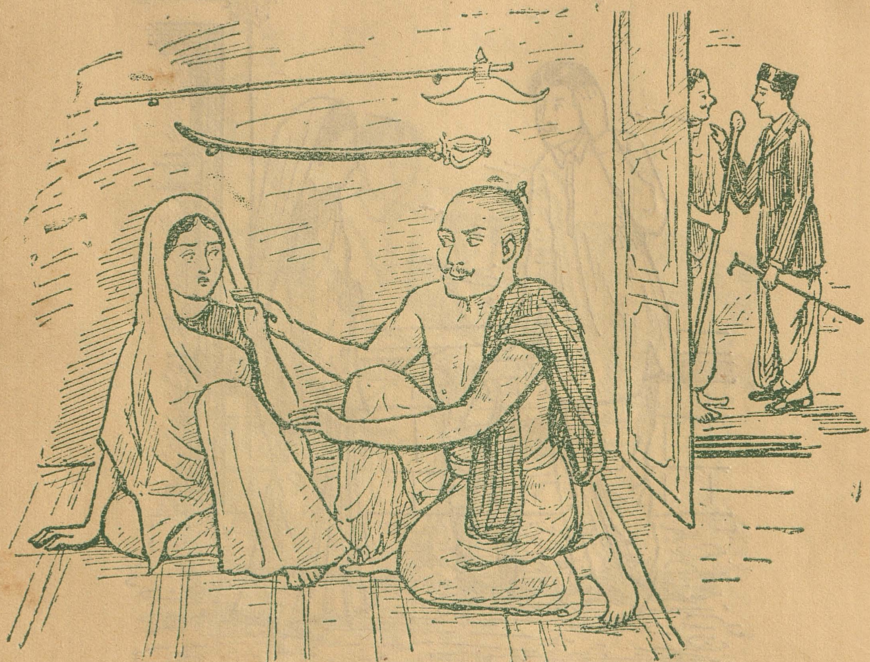
गर्भ रह गया जब, तब मूँदे बेटे ने हाथों से कान !
क्या अनिष्ट करती हो तुम यह, घर में बैठी अम्मीं जान !!
'यह क्या कहते हो' माँ बोली, लेकर एक दीर्घ निश्वास !
बोला बेटा "कौन करेगा ऐसी बातों पर विश्वास" ?

https://archive.org/details/bk1333/page/n87/mode/1up

1929-01 -Chand Magazine (1333)

चाँद

(६)



गई निकाली अबला घर से, तब पहुँची वह तीर्थ-स्थान !
पड़ी दृष्टि पण्डों की उस पर, किया गया समुचित सम्मान !!
'माता-माता' कह कर उसको घर ले गए ; हुई जब रात !
फरसा औ' तलवार दिखाकर उसकी लज्जा पर की घात !!

चाँद

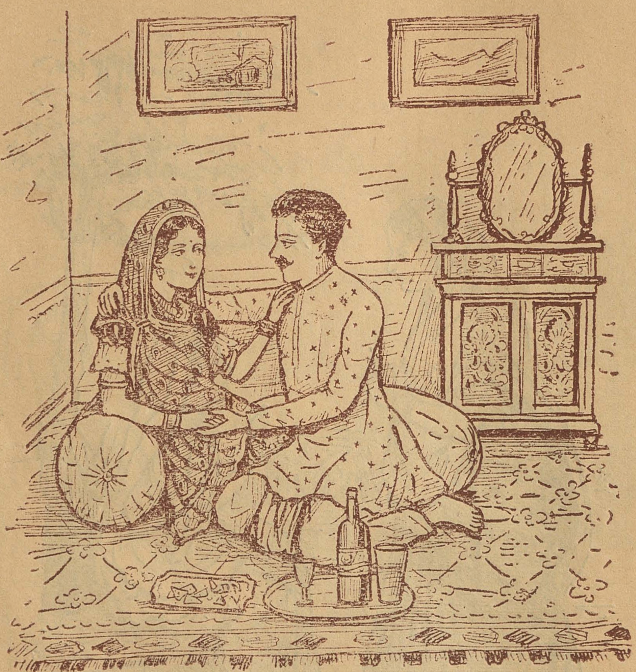
(७)



जब पण्डे ने उसे निकाला भटकी तब वह बन-बन में !
अपने सारे दुखड़े रोती, हुई विवश अपने मन में !!
कुटनी मिली और फुसलाया—और ले गई अपने घर !
फूली नहीं समाई वह भी उसका देख रूप सुन्दर !!

चाँद

(८)



वेश्या बनकर अब उसने ही पाया है सब से सम्मान !
जिन लोगों ने उसे निकाला, वही आज उसपर कुर्बान !!
इसी तरह करता है चौपट, कुल-ललनाएँ 'वृद्ध विवाह' !!
खोल रहे हो यों समाज तुम, अपने लिए नरक की राह !!

* * *

देख रहे हो बोलो कैसे, जीते जी यह अन्तिम दृश्य ?
यदि देखे जाओगे यों ही, हो जाओगे कभी अदृश्य !!

—आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव

मनोरञ्जक कहानियाँ

[लेखक—अध्यापक श्री० ज़हूरबख़्श जी 'हिन्दी-कोविद']

श्री० ज़हूरबख़्श जी की लेखन-शैली बड़ी ही रोचक और मधुर है। आपने बालकों की प्रकृति का अच्छा अध्ययन किया है। यह पुस्तक आपने बहुत दिनों के कठिन परिश्रम के बाद लिखी है। इस पुस्तक में कुल १७ छोटी-छोटी शिक्षाप्रद, रोचक और सुन्दर हवाई कहानियाँ हैं, जिन्हें बालक-बालिकाएँ बड़े मनोयोग से सुनगे। बड़े-बूढ़ों का भी मनोरञ्जन हो सकता है।

पृष्ठ-संख्या १५० से अधिक; छपाई-सफ़ाई अच्छी; सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १॥) स्थायी ग्राहकों से १=)

मनोहर ऐतिहासिक कहानियाँ

इस पुस्तक में पूर्वीय और पाश्चात्य, हिन्दू और मुसलमान, स्त्री-पुरुष—सभी के आदर्श छोटी-छोटी कहानियों द्वारा उपस्थित किए गए हैं, जिससे बालक-बालिकाओं के हृदय पर लड़कपन ही से दयालुता, परोपकारिता, मित्रता, सच्चाई और पवित्रता आदि के सद्गुणों के बीज अङ्कुरित करके उनके नैतिक जीवन को महान्, पवित्र और उज्ज्वल बनाया जा सके!

इस पुस्तक की सभी कहानियाँ शिक्षाप्रद और ऐसी हैं कि उनसे बालक-बालिकाएँ, स्त्री-पुरुष—सभी लाभ उठा सकते हैं। लेखक ने बालकों की प्रकृति का भली-भाँति अध्ययन करके इस पुस्तक को लिखा है। ६५० पृष्ठों की समस्त कपड़े की जिल्द-सहित पुस्तक का मूल्य केवल २) रु०; स्थायी-ग्राहकों से १॥) मात्र!

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

STRIKING OPINIONS

Mr. S. H. Thompson, I. C. S., Collector and Magistrate, Allahabad:

. . . I consider for the most part highly artistic. Some of the pictures, which are not quite at a par with the majority, might be omitted; but otherwise the album (*Adarsh Chittrawali*) is a very praiseworthy production.

Mr. Sam Higginbottom, Principal of the Allahabad Agricultural Institute Naini (Allahabad):

. . . I think it is beautifully done. Most of the guests who come into the drawing room pick it up and look at it with interest.

The Private Secretary to His Excellency the Governor of Punjab:

. . . His Excellency considered the reproduction of the pictures to have been most successfully carried out.

The Private Secretary to His Excellency the Governor of Central Provinces:

. . . His Excellency the Governor has looked through it (*Adarsh Chittrawali*) with interest.

Lt.-Col. H. R. Nutt, I.M.S., Civil Surgeon Allahabad:

. . . The color execution is exceedingly good.

G. P. Srivastava, Esq., B. A., LL. B:

. . . Really it is a unique publication of its kind. The pictures are excellent and choicest; at the same time the printing is simply marvelous. It must have its success.

A. H. Mackenzie, Esq., M. A., C. I. E., M. L. C., Director of Public Instruction, United Provinces:

. . . I congratulate your Press on the get-up of the Album (*Adarsh Chittrawali,*) which reveals a high standard of fine Art printing.

The Hon'ble Mr. Justice Lal Gopal Mukerjea of the Allahabad High Court:

. . . The Pictures are indeed very good and indicate not only the high art of the painters but also the consumate skill employed in printing them in several colours. I am sure the Album (*Adarsh Chittrawali*) will be very much appriciated by the public.

The Indian Daily Mail:

. . . The album (*Adarsh Chittrawali*) is probably the one of its kind in Hindi—the chief features of which are excellent production, very beautiful letter press in many colours, and the appropriate piece of poem which accompanies each picture. . . .

दो तिरङ्गे और चार सादे चित्रों से सुसज्जित लगभग २५० पृष्ठ की इस सुन्दर पुस्तक का मूल्य केवल २); स्थायी ग्राहकों से १॥); नवीन संस्करण अभी-अभी प्रकाशित हुआ है।

शैल कुमारी

[ले० पं० रामकिशोर जी मालवीय, सहकारी सम्पादक 'अभ्युदय']

यह उपन्यास अपनी मौलिकता, मनोरञ्जकता, शिक्षा, उत्तम लेखन-शैली तथा भाषा की सरलता और लालित्य के कारण हिन्दी-संसार में विशेष स्थान प्राप्त कर चुका है। अपने ढङ्ग के इस

अनोखे उपन्यास



में यह दिखाया गया है कि आजकल एम० ए०, बी० ए० और एफ़ ए० की डिग्री प्राप्त स्त्रियाँ किस प्रकार अपनी विद्या के अभिमान में अपने योग्य पति तक का अनादर कर उनसे निन्दनीय व्यवहार करती हैं; किस प्रकार उन्हें घरेलू काम-काज से घृणा उत्पन्न हो जाती है; अपने पति से वे किस प्रकार ख़िदमतें कराती हैं और उनका गार्हस्थ्य जीवन कितना दुखपूर्ण हो जाता है।

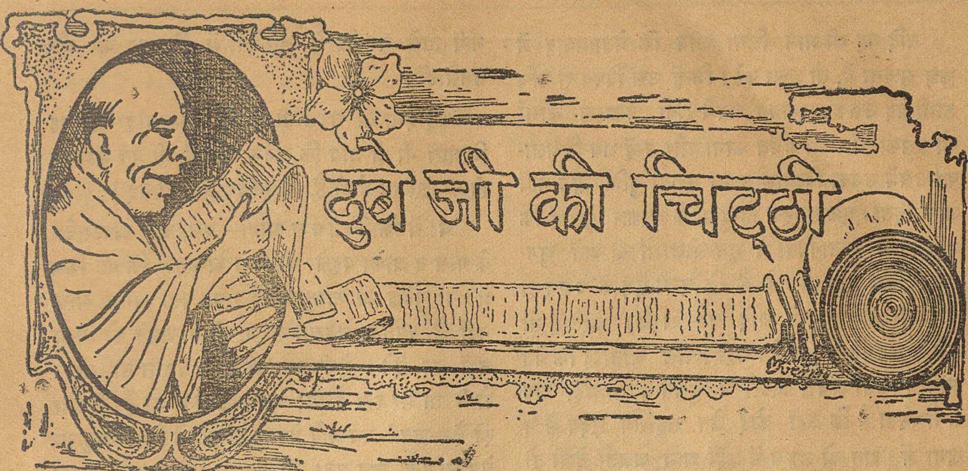
दूसरी ओर

यह दिखाया गया है कि पढ़े-लिखे युवकों के साथ फूहड़ तथा अनपढ़ और गँवार कन्याओं का बेजोड़ विवाह ज़बरदस्ती कर देने से दोनों का जीवन कैसा दुखमय हो जाता है। इन सब बातों के अलावा स्त्री-समाज के प्रत्येक

महत्वपूर्ण

विषयों पर प्रकाश डालकर उसकी बुराइयाँ दूर करने के उदाहरण दिए गए हैं। चित्रों को देख कर हँसते-हँसते आप लोट-पोट हो जायँगे, इनमें समाज का नङ्गा चित्र व्यक्त किया गया है।

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद



श्रजी सम्पादक जी महराज,

जयराम जी की !

प्रेतात्माओं के सम्बन्ध में आप जो लेखमाला प्रकाशित कर रहे थे वह आपने बन्द कर दी, यह अच्छा किया। वैसे मैं एक हद तक प्रेतात्मवाद पर विश्वास करता हूँ। यह मैं मानता हूँ कि प्रेतात्माओं का अस्तित्व है और यह भी मानता हूँ कि वे कभी-कभी मनुष्यों को दिखाई भी पड़ती रहती हैं, परन्तु यह मैं नहीं मानता कि संसार में जितने रोग, कष्ट तथा दुख होते हैं, वे प्रेतात्माओं ही का उपद्रव होता है। प्रेतात्मवादी तो यहाँ तक मानते हैं कि संसार में जो हत्याएँ और चोरियाँ होती हैं, उनमें भी बहुधा प्रेतात्माओं का ही हाथ होता है। प्रेतात्माएँ जिससे रुष्ट होती हैं, उसका अनिष्ट किसी दूसरे मनुष्य से (उस पर अपना प्रभाव डाल कर) करा देती हैं। यह बात कहाँ तक ठीक है, यह मैं नहीं कह सकता। अन्य शास्त्रों की तरह प्रेतात्मवाद भी मनुष्यों के कर्मों पर अपना आधिपत्य जमाना चाहता है। ज्योतिष-शास्त्र कहता है कि मनुष्य के जीवन में जो सुख-दुखपूर्ण परिवर्त्तन होते हैं, वह सब ग्रहों का फल है। आयुर्वेद-शास्त्र कहता है कि कफ, पित्त, वात, ये तीन ही मनुष्य का जीवन हैं और जब ये कुपित हो जाते हैं तो मनुष्य के प्राणों पर आ बनती है। होम्योपैथी 'विषस्य विषमौषधम्' का सिद्धान्त मानती है। वायोकेमिक अपने बारह लवणों को ही मनुष्य के स्वास्थ्य तथा रोगों का कारण बताती है। यह दशा देखकर प्रेतात्मवादियों ने सोचा कि हम ही फिसड्डी क्यों रहें, अतएव उन्होंने कहना आरम्भ किया कि प्रेतात्माएँ रोग भी उत्पन्न करती हैं !! चलिए, अब तो प्रेतात्मवाद को लोग मानेंगे। आदमी किसी वस्तु को उसी समय मानता है जब उससे उसे सुख अथवा दुख मिलता है। प्रेतात्मवाद से किसी को कोई विशेष लाभ अथवा सुख मिला हो, यह तो अभी तक सुना नहीं। हाँ, अपने मृत सम्बन्धियों का दर्शन तथा उनसे वार्त्तालाप करने की बात कही जाती है। परन्तु उसमें बड़ा मतभेद है। अधिकांश लोग यह कहते हैं कि यह सब ढोंग है। विज्ञान की कृपा से मनुष्य में अब इतनी शक्ति उत्पन्न होगई है कि वह इस ढङ्ग की बातें बहुत सरलतापूर्वक दिखा सकता है। तीन-चार वर्ष हुए अङ्गरेज़ी के सुप्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र "पियर्सन वीकली" में लण्डन की एक बड़ी प्रसिद्ध "मध्यस्थ" (Medium) ने प्रेतात्माओं के दर्शन तथा उनसे वार्त्तालाप करने के रहस्य पर प्रकाश डाला था। उसने जो कुछ लिखा, उसके पढ़ने से ज्ञात होता है कि प्रेतात्माओं का खेल दिखाना बहुत साधारण बात है। स्वयं उसने वर्षों तक बड़े-बड़े चतुर लोगों की आँखों में धूल झोंकी। इसी प्रकार अन्य अनेक विद्वानों की धारणा भी यही है कि प्रेतात्मवाद में ढोंग, धोखा तथा फ़रेब बहुत और सत्यता नाम-मात्र की है।

यदि यह भी मान लिया जाय कि प्रेतात्मवाद में कुछ सत्यता है, तो हुआ करे। जिन्हें उस विषय से रुचि होगी वह उसका अध्ययन करेंगे। यों अकारण लोगों को इसकी ओर आकर्षित करना और उन्हें भय दिखला-कर उसमें उनका विश्वास उत्पन्न कराना युक्ति-सङ्गत नहीं जान पड़ता। एक तो हम हिन्दुओं के संस्कार ऐसे हैं कि बालपन में माता-पिता से भूत-लीलाओं की बातें सुन-सुनकर यह दशा हो गई है कि दाढ़ी-मूँछ के ज्वान हो जाने पर भी रात में यदि चूहे खड़बड़ करते हैं तो कलेजा धड़कने लगता है। यही ख़्याल आता है कि प्रेत आया। किसी अँधेरी कोठरी में घुसते हैं तो यही भय लगा रहता है कि कहीं कोई प्रेत महाशय हृदय से न लगा लें। रात को जङ्गल में कहीं आग जलती देखी तो यह सोचकर रोंए खड़े हो जाते हैं कि अगिया-बैताल है। छोटे-छोटे बच्चों के मस्तिष्क में हमारी माताएँ बाल्यावस्था में ही भूत तथा चुड़ैलों का भय ठूँस-ठूँस कर भर देती हैं। इसका फल यह होता है कि वे जन्म भर के लिए डरपोक तथा कायर हो जाते हैं। सम्पादक जी, मैं ऐसे-ऐसे लोगों को जानता हूँ कि जो तीन-तीन, चार-चार बच्चों के बाप हैं, पर यदि उन्हें रात में अपने ही मकान की किसी अँधेरी कोठरी में जाना होता है तो जोरू को साथ लेकर जाते हैं। क्यों? इसलिए कि यदि अकेले जायँगे तो प्रेत महाशय उन्हें गले लगा लेंगे या जान से मार डालेंगे। दूसरा आदमी साथ रहने से वे इन बातों से बच जायँगे। या तो प्रेत महाशय उसी दूसरे आदमी को चिपटेंगे या फिर नाक-दुम दबाकर भागेंगे। इस मूर्खता का भी कुछ ठिकाना है? परन्तु वे बेचारे करें क्या, उनके बचपन से ही ऐसे संस्कार पड़े हुए हैं, वे दूर कैसे हो सकते हैं? ऐसे लोगों को तो निर्जन तथा अँधेरे स्थान में चारों ओर प्रेत ही प्रेत दिखाई पड़ते हैं। अब बताइए, ऐसे लोग क्या तीर मार सकते हैं—वीरता का कौन काम कर सकते हैं। हाँ, यदि उनके साथ एक आदमी ऐसा रहे, जो उन्हें प्रेतों से बचाता रहे तो चाहे भले ही वह कोई वीरता का काम कर दिखाएँ। पाश्चात्य देशों के लोगों को देखिए कि वह अकेले ही अफ़्रीका के निर्जन जङ्गलों में पड़े रहते हैं। जहाँ और जिस समय चाहते हैं, अकेले चले जाते हैं। इसका कारण क्या है? इसका कारण यही है कि बाल्यावस्था में उनके संस्कार ऐसे नहीं डाले गए कि वे भूत-प्रेतों में विश्वास करें और उनसे डरें।

यह दशा तो पहले ही से है। अब यदि कहीं यह विश्वास भी हो जाय कि अनेक रोगों में भी प्रेत महाशय ही की शरारत होती है, तो चलिए छुट्टी हो गई!

घर में किसी को ज्वर आया—बस, अब डॉक्टर-वैद्य के पास न जाकर पहले यह पता लगाइए कि यह किस प्रेत या चुड़ैल की कारगुज़ारी है। यह पता लगना सरल नहीं है, क्योंकि प्रेतराम सहज ही में अपने को प्रकट नहीं कर देते। ऐसी दशा में रोगी बेचारा तो मरा। रोगी तो मर रहा है और घर वाले प्रेत को ढूँढ़ते फिर रहे हैं—ख़ूब! अब यदि प्रेतात्मवादियों के सिद्धान्तानुसार प्रेत का पता लग गया तो अब उसको भगाने अथवा जलवाने-फुँकवाने का इन्तज़ाम होना चाहिए। यदि घर में दो-तीन आदमी एकदम से बीमार हो जायँ तो, जितने आदमी बीमार हों उतने ही प्रेतों की हुलिया जारी कराई जाय—क्योंकि ऐसा सुनने में नहीं आया है कि अनेक व्यक्तियों को एक समय में एक ही प्रेत पीड़ित करता हो। यदि चार आदमी बीमार हैं तो चार ही प्रेत होंगे। चार-चार प्रेतों का पता लगाना साधारण बात नहीं है। एक ही कमबख़्त बड़ी मुश्किल से ढूँढ़े मिलता है—चार-चार को ढूँढ़ना तो बहुत ही कठिन है। ऐसी दशा में रोगियों के प्राण तो दो ही तरह से बच सकते हैं। या तो ईश्वर स्वयं प्रेतों को समझा-बुझाकर या डरा-धमकाकर हटावे या फिर प्रेत महाशय ही ऊब कर भाग जावें। सो प्रेत महाशय तो ऊबते हुए कम सुने गए हैं—उन्हें तो दूसरों को पीड़ा देने में आनन्द आता है। अतएव केवल ईश्वर का भरोसा रह जाता है। यद्यपि यह कहा जाता है कि ऐसे लोग हैं जो प्रेतों को क़ैद कर लेते हैं, और दस-पाँच वर्ष अथवा जन्म भर के लिए उन्हें कारावास-दण्ड दे देते हैं या फाँसी का हुक्म सुना देते हैं और उनके फ़ैसले की कोई प्रेत अपील नहीं कर सकता—जो मनुष्य के लिए बड़े सन्तोष की बात है। परन्तु इन सब बातों के होते हुए भी यह बात सर्वमान्य है कि प्रेत अधिक हैं और प्रेतों को दण्ड देने वाले कम। प्रेतों के इन न्यायाधीशों की संख्या इतनी अल्प है कि जैसे दाल में नमक होता है। ऐसी दशा में प्रेतों का उत्पात कम कैसे हो सकता है, जबकि मनुष्यों

का यह हाल है कि प्रत्येक स्थान में अपराधियों को दण्ड देने वालों के प्रस्तुत होते हुए भी वे अपराध करते ही हैं। ऐसी दशा में मनुष्यों का सहायक केवल ईश्वर ही रह जाता है।

हाँ, यदि प्रेतात्म-विद्या-विशारद प्रेतों को पकड़ने के लिए बाक़ायदा पुलिस, ख़ुफ़िया-पुलिस, अदालतें, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति सरलतापूर्वक किसी भी प्रेत पर नालिश कर सके, और प्रेतों के लिए दण्ड-विधान इत्यादि का प्रबन्ध कर दें तब तो मनुष्य की रक्षा इन प्रेतों से हो सकती है। परन्तु उस दशा में एक बड़ी ख़राबी यह होगी कि वहाँ भी हम लोगों को मुक़दमेबाज़ी का चस्का पड़ सकता है। उदाहरणार्थ श्याम की शत्रुता राम से है। श्याम ने सोचा कि राम का तो मैं कुछ बिगाड़ नहीं सकता—चलो राम के स्वर्गीय पिता के ख़िलाफ़ एक झूठी नालिश दायर कर दो और उनकी छीछालेदर करा दो। इधर राम को जो यह पता लगा तो वह अपने पिता की ओर से पैरवी करने लगा—चलिए मुक़दमेबाज़ी आरम्भ हो गई। परन्तु उस दशा में इतनी बात अच्छी रहेगी कि दोनों पक्षों को अपनी-अपनी बात कहने का अवसर दिया जायगा। यदि ऐसा हो जाय तब तो कदाचित् प्रेतों से बचत हो सकती है—यद्यपि मुझे इसमें सन्देह है। यदि ऐसा नहीं हो सकता तो फिर प्रेतात्मवादियों का यह प्रचार कि प्रेतात्माएँ पीड़ा देती हैं, बड़ा ही ख़तरनाक है। इससे व्यर्थ लोगों के हृदय में भय का सञ्चार होता है। एक तो हम लोगों में देवी-देवताओं के मारे ही नाक में दम रहता है। पूजते-पूजते आयु ख़तम हो जाती है फिर भी पता नहीं चलता कि कौन देवता सच्चा है और कौन झूठा। उस पर यदि प्रेत भी लाद दिए गए तो बस फिर बेड़ा पार है! आज मङ्गल ग्रह का कोप है, कल राहु डाह रहे हैं, परसों अमुकेश्वर रुष्ट हो गए—अभी तो इसी से छुट्टी नहीं थी, अब प्रेतों के नख़रे भी उठाने पड़ेंगे। रहे डॉक्टर-वैद्य, सो वे केवल पशुओं की चिकित्सा करके अपना पेट पालेंगे—क्योंकि प्रेत लोग पशुओं को नहीं सतावेंगे। यदि किसी का कुत्ता-बिल्ली बीमार हो, तब तो डॉक्टर-वैद्य बुलाए जायँ, अन्यथा वही प्रेत और पिशाच-पुरोहितों की पूछ हो!

इस सम्बन्ध में मैंने एक व्यक्ति से प्रश्न किया। वह बैसवारे के रहने वाले हैं। मैंने उनसे पूछा—आप प्रेत को मानते हैं?

उन्होंने कहा—प्रेत! प्रेत को क्यों मानें, वह हमारा कोई रिश्तेदार लगता है?

"नहीं, मेरा मतलब यह नहीं है, मेरा मतलब यह है कि आप उसके अस्तित्व में विश्वास करते हैं?"

"हमें तो आज तक कोई भूत-प्रेत ससुरा मिला नहीं—हाँ सुनते हैं कि होते हैं। हमारी तो यह इच्छा है कि एक बार कहीं दर्शन हो जायँ, पर मिलते ही नहीं, न मालूम साले कहाँ चले गए। बड़े-बूढ़े लोग कहते हैं कि जब रेल नहीं चली थी तब थे, जब से रेल चली तब से लापता हो गए।"

मैंने पूछा—क्यों, क्या रेल में भर-भर कर किसी टापू में भेज दिए गए?

"नहीं, यह बात नहीं, रेल के चलने में जो शब्द होता है उससे भाग गए। दूसरे रेल में आग भी रहती है—आग से भी प्रेत बहुत डरते हैं।"

"ओहो! यह नई बात मालूम हुई। तब तो रेल से बड़ा लाभ हुआ।"

"हमारा तो नुक़सान हो गया। हमारी तो इच्छा थी कि ज़रा दर्शन कर लेते।"

"महाशय जी, जिस प्रकार ईश्वर के दर्शन दुर्लभ हैं उसी प्रकार प्रेतों के दर्शन भी दुर्लभ हैं—समझे! जो बड़े ज्ञानी, तपस्वी होते हैं प्रेत उन्हीं को दर्शन देते हैं, उन्हीं से बातचीत करते हैं और उन्हीं के घर में आते हैं। रही-खही, बेपढ़े-लिखे और अज्ञानी आदमियों को प्रेत दर्शन नहीं देते—उन्हें देखकर भागते हैं। समझे! हाँ, यह तो बताइए आप यह मानते हैं कि प्रेत मनुष्यों को पीड़ा दे सकते हैं?"

"कौन प्रेत? उनकी ऐसी-तैसी, वे बेचारे क्या पीड़ा देंगे। जो देह धारण करके कुछ न कर सका, वह मरने पर क्या कर सकता है? यह सब ढोंग है। न जाने रोज़ कितने ख़ून और हत्याएँ होती हैं—तो जनाब यदि प्रेतों में पीड़ा देने की सामर्थ्य होती तो जिसकी हत्या की गई वह प्रेत बनकर हत्यारे को रगड़ देता। परन्तु ऐसा नहीं होता—हत्यारों को यदि पुलिस न पकड़े तो वह आनन्द किया करें। तब जो अपनी हत्या करने वाले का कुछ अनिष्ट नहीं कर सकता, वह दूसरे का क्या बिगाड़ सकता है?"

मैंने कहा—मित्र, कहते तो पते की हो। हमने भी आज तक ऐसा न देखा न सुना।

वह महाशय बोले—सुदा भइया एक बात है। रात में कहीं अँधेरे में जो अकेले जाते हैं, तो रोएँ खड़े होने लगते हैं।

"अच्छा ! यह बात भी है ?"

"हाँ !"

"क्यों ?"

"लड़कपन में सब लोग भूत-भूत कह कर डराया करते थे, सो उसी कारण कभी-कभी ध्यान आ जाता है कि शायद भूत होते हों।"

उनकी यह बात सुन कर मुझे बड़ा खेद हुआ। मैंने सोचा—देखिए, यह स्वयम् तो इतने साहसी हैं कि प्रेत के दर्शनों के लालायित हैं, परन्तु बाल्यकाल के संस्कार हृदय में भय उत्पन्न करने की चेष्टा करते हैं।

सम्पादक जी ! बाल्यकाल के संस्कारों का तो यह हाल है कि बुढ़ापे तक पिण्ड नहीं छोड़ते। अब जो जवानी में यह संस्कार पड़ गए कि प्रत्येक बात में प्रेतों की झलक देखने लगें तो बस, फिर क्या कहना है। पूरे तीसमार ख़ाँ हो जाएँ।

ईश्वर इन बातों से बचावे। यदि प्रेत हैं तो, और नहीं हैं तो—हमारी बला से ! हमारा वह कुछ बना-बिगाड़ नहीं सकते। इसी सिद्धान्त में हम लोगों का कल्याण है।

भवदीय,

—विजयानन्द (दुबेजी)

उसास

[रचयिता—श्री० "श्याम" विद्यार्थी]

(१)

जीवन की यह करुण-पहेली आ—
सुलझाएगा अब कौन ?
मेरी इस सोई वाणा का—
आन जगाएगा अब कौन ?

(२)

सूनेपन की सूनी घड़ियों में—
उत्थित होकर यह कौन ?
बिलख-बिलख कर ठण्ढी साँसें,
देतीं किसे निमन्त्रण मौन ?

(३)

ले, किसको बिठला लूँ मन में,
तन में आज रमा लूँ मैं ?
किसकी पुण्य-स्मृति में, प्रियतम !
आँसू चार बहा लूँ मैं ?

(४)

किस अनन्त रोदन-वारिधि में,
जी की तपन बुझा लूँ मैं ?
फिर योगी बन उसी किनारे—
लेकर अलख जगा लूँ मैं ?

(५)

मत छेड़ो, यों हा रहने दो,
भग्न-हृदय को बन बेपीर !
देखूँगा कब तक तड़पेगा,
टूटे 'पिञ्जर' में यह कीर !!

स्त्रियाँ बनाम पुरुष

[ले० श्री० शिवप्रसाद सिंह जी]

IN every part of the world, one of the general characteristic of the savages is to despise and disgrace the female sex.—*Robertson.*

अर्थात्—"संसार के प्रत्येक भाग में वहशियों का मुख्य स्वभाव स्त्री-जाति से घृणा करना और उनका निरादर करना है।"

स्वामी दयानन्द (सनातनी) अपने "सत्यार्थ-विवेक" में लिखते हैं:—

कन्याऽप्येवं पालनीया शिक्षणीयाऽतियत्नतः।

अर्थात्—"कन्याओं को भी अत्यन्त प्रयत्न के साथ पालना और शिक्षा देनी चाहिए।"

गत् पाँचवीं जनवरी को कलकत्ते में भाषण देते हुए कवि-सम्राट् श्री० ठाकुर रवीन्द्रनाथ कहते हैं:—

"स्त्रियाँ गृहस्थी की सच्ची लक्ष्मी हैं और देश को स्वर्गीय सुख देने वाली हैं।"

और महर्षि मनु ने तो यहाँ तक कहा है:—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रै तास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

अर्थात्—"जहाँ स्त्रियों का आदर होता है वहाँ देवता वास करते हैं और जहाँ निरादर होता है, वहाँ सब कार्य निष्फल होते हैं।"

पर आज उनकी क्या दशा है?

हम अपनी स्त्रियों को परदे के बाहर नहीं निकलने देते, कहते हैं—'परदा छोड़ देने से वे स्वतन्त्र हो जायँगी, और उस स्वतन्त्रता का फल होगा उनमें दुर्व्यसनों का प्रचार' कैसी विचित्र बात है! आप तो स्वतन्त्र होकर दुर्व्यसनी न होंगे, पर उसी स्वतन्त्रता को पाकर स्त्रियाँ दुर्व्यसनी हो जायँगी! प्राचीन काल में परदा नहीं था तो क्या सब स्त्रियाँ दुर्व्यसनी ही हुआ करती थीं? नहीं, कदापि नहीं। सच तो यह है कि इस परदे की प्रथा ने समाज में क्या-क्या बुराइयाँ नहीं फैलाईं? आजकल की स्त्रियाँ जो अपने सतीत्व की भी रक्षा करने में नितान्त असमर्थ हैं, उसका एक मुख्य कारण है परदा। इसके लिए मुझे दलील देने की आवश्यकता नहीं, यह स्पष्ट है कि इस समय भी जो स्त्रियाँ परदा फाड़ कर बाहर निकल आई हैं वे आदरणीय समाज-सेवा कर रही हैं और जो अब तक परदे में हैं उनका विकास ही कुण्ठित हो रहा है। श्रीमान् तो देशाटन करने के लिए इङ्गलैण्ड, अमेरिका, स्विज़रलैण्ड आदि घूमने प्रति वर्ष निकल जाते हैं और उनके लिए यदि कोई स्थान है तो वह अपनी अँधेरी कोठरी से निकल कर शौच-गृह तक! कैसी दयनीय दशा है? परदे के कारण न वे पढ़ सकती हैं और न पढ़ा सकती हैं। सार्वजनिक सूचना-विभाग के डाइरेक्टर श्री० जे० कोटमैने अपनी 'इण्डिया—२५-२६' में लिखते हैं—"प्रारम्भिक शिक्षा का प्रचार न होने का कारण अब तक भारतीय स्त्रियों का शिक्षा-विभाग से नितान्त पृथक् रहना है।" परदे के कारण वे बाहर निकल ही नहीं सकतीं, शिक्षा का प्रचार हो कैसे?

बाल-विवाह स्त्रियों को दुर्बल बनाने में पूर्ण सहायता दे रहा है। यह नहीं कहा जा सकता कि इस रोग में हिन्दू ही ग्रस्त हैं। भारत की मर्दुमशुमारी की १६२१ की रिपोर्ट में लिखा है कि "बाल-विवाह का प्रचार हिन्दुओं की ऊँची जातियों की अपेक्षा छोटी जातियों में अधिक है और यह केवल हिन्दुओं में ही प्रचलित नहीं है।" आगे उसमें यह भी लिखा है कि "बाल-विवाह की प्रथा में कमी चाहे जिस कारण से हो, पर तालिका देखने से पता चलता है कि अविवाहितों की संख्या बढ़ गई है, हिन्दू-समाज ने इस प्रथा को दूर करने का अपेक्षाकृत अधिक प्रयत्न किया है, पर अन्य धर्मावलम्बियों ने भी इस प्रथा को दूर करने का प्रयत्न किया है। १० वर्ष से १५ वर्ष की अवस्था वाली स्त्रियों और १० से २० वर्षीय अवस्था वाले पुरुषों की संख्या में इस आन्दोलन के प्रचार का प्रभाव आश्चर्यजनक हुआ है। बङ्गाल और बिहार-उड़ीसा में अवस्था की बढ़ती अच्छी है। १० से १५ तक अवस्था वाले अविवाहित पुरुषों की संख्या प्रति सहस्र ८२६ से जो सन् १८८१ में थी, बढ़कर स १६२१

में ८६८ प्रति सहस्र पहुँची है। लड़कियों की दशा और भी देखने योग्य है। बङ्गाल और बिहार-उड़ीसा की अविवाहिता लड़कियों की प्रति सहस्र संख्या निम्न-लिखित अवस्थाओं में दी जाती है : —

सन्	५ से १० वर्ष	१० से १५ वर्ष
१९२१ ...	८९१ ...	... ४६४
१९११ ...	८५१ ...	... ४२२
१९०१ ...	८३६ ...	... ४०२
१८९१ ...	८२७ ...	... ३७२

ठीक, क्या तीव्र उन्नति है! पूरे तीस वर्ष में प्रति सहस्र ५-१० वर्ष की अविवाहिता बालिकाओं की संख्या ६४ और १०-१५ वर्ष की अवस्था वालों की संख्या १२२ बढ़ी है; ख़ैर। अल्पायु वालों में २ से कुछ अधिक का प्रति सहस्र प्रति वर्ष का औसत है। एक बात और ध्यान देने योग्य यह है कि ये अङ्क उन प्रदेशों के हैं, जहाँ बाल-विवाह का प्रचार अन्य प्रदेशों से कम था।

नीची जातियों में बाल-विवाह के अधिक प्रचार का कारण उनकी अशिक्षित अवस्था ही है। ऊँची जातियाँ ज़्यादा पढ़ी-लिखी हैं। शिक्षा के ही प्रचार से समाज की उन्नति होती है। मारवाड़ी-समाज में इस प्रथा के होने का कारण उनका अज्ञान ही है। पर जो मारवाड़ी भाई कुछ देश देख चुके हैं, उनके हृदय में अपने देश के सुधारने की लगन अवश्य पैदा हो गई है; इससे भविष्य आशाजनक प्रतीत होता है। पर सरकार ने जो प्रयत्न शिक्षा-प्रचार के लिए किया, वह ज़ाहिर-ज़हूर है। स्वर्गीय श्री० गोपाल कृष्ण गोखले का अनिवार्य शिक्षा-सम्बन्धी बिल केवल इस बात पर अस्वीकृत किया गया था कि 'रुपया नहीं है।' पर यूरोपियन और डायरों को पेन्शन देने के लिए सदा रुपया रहता है। कोटमैन साहब भी अपने "इण्डिया २५-२६" में लिखते हैं—"सरकार की शिक्षा-विषयक नीति के आलोचकों को याद रखना चाहिए कि भारत को शिक्षित करना एक महाद्वीप को शिक्षित करना है और इसमें अत्यधिक धन की आवश्यकता है।" ख़ूब! 'महाद्वीप' को शिक्षित करना है तो 'महाद्वीप' से ज़ालिमाना कर भी तो लिया जाता है!

पर क्या करें, हमारे शिक्षक और सरपरस्त बनने वालों को हमारी इस दशा पर भी दया नहीं आती, और जब श्री० हरविलास शारदा अपना बाल-विवाह-विषयक बिल बड़ी धारा-सभा में पेश करते हैं, तो सरकार के भूतपूर्व स्वराष्ट्र-सचिव सर अलेक्ज़ैण्डर मुडीमैन बड़े आवेश के साथ कहते हैं—"महाशयो! मैं यह प्रथा तोड़ना नहीं चाहता कि बिल पेश करते समय उसे न टोका जाय, परन्तु चूँकि यह बिल एक अजीब ढङ्ग का है, इसलिए इस पर भारत-सरकार की स्वीकृति की आवश्यकता है। भारत-सरकार की ओर से जो कुछ मुझे कहना है वह यही है कि मैं इसके पेश होने के बाद इसके विषय में प्रत्येक प्रस्ताव का विरोध करूँगा, सिवाय इसके कि यह जनता की राय लेने के लिए प्रकाशित किया जाय।"

ख़ूब! जनता की राय लेना सरकार के लिए वाञ्छनीय वस्तु है। पर क्या मैं इतना पूछ सकता हूँ कि इसी बिल के लिए जनता की राय ली गई या और भी कभी? क्या ही अच्छा हुआ होता, यदि माननीय होम मेम्बर काकोरी डकैती के अभियुक्तों और बङ्गाल के नज़रबन्दों के बारे में भी जनता की राय पर इतना ही महत्व देते।

हमारे समाज में एक बात बड़ी लज्जाजनक है, वह है पुरुषों का स्त्रियों को पीटना और उनका निरादर करना। यह रोग अनपढ़ों से पढ़े-लिखे लोगों में अधिकता से पाया जाता है। कुछ उदाहरण लीजिए :—

(१) पण्डित × × × की स्त्री ने प्राण दे दिया। पता लगा कि उसकी यह इच्छा नहीं थी कि पण्डित जी मुवक्किलों से घूस लिया करें। पण्डित जी सरिश्तेदार थे, घूस न लें तो काम न चले। स्त्री ने कई बार समझाया। इस पर यह कहकर कि 'तू मुझको उपदेश देने चली है' उस पर टूट पड़े और फिर कई दिन तक उससे बोले तक नहीं। स्त्री ने दूसरा रास्ता न देख कर, विष खाकर प्राण दे दिए। पुलिस ने मुक़द्दमा चलाना चाहा, पर वहाँ भी घूस की विजय रही।

(२) एक कन्या-पाठशाला की अध्यापिका की पुत्री ने, जो विवाहिता हैं और उसी पाठशाला में काम करती हैं, मेरी बहिन कमला से एक दिन ज़हर माँगा। कमला एक ६-७ वर्ष की भोली लड़की है। वह क्या जाने कि ज़हर क्या होगा? अध्यापिका यह जानती थी कि मेरे यहाँ औषधियों के तौर पर कुछ ज़हर भी रहता है। कमला ने वादा कर लिया कि 'भैया जब कहीं चले जायँगे

तो उनकी आलमारी खोल कर ला दूँगी।' यह बात अध्यापिका की माता को मालूम होगई। वे दौड़ी-दौड़ी मेरे पास आईं और मुझे आलमारी की ताली सुरक्षित स्थान में रखने के लिए बाध्य किया। विष खाने का कारण पूछने पर पता चला कि उनके पति उनको अकारण ही पीटते रहते हैं।

(३) तहसीलदार साहब बचपन से ही अप्राकृतिक व्यभिचारी हैं और लज्जावश आपने विवाह कर लिया। फलतः पत्नी भी व्यभिचारिणी है। घर में दिन-रात देवासुर-संग्राम हुआ करता है। एक पुत्र तथा एक बाल-विधवा पुत्री है। वह तहसीलदार साहब के साथ ही रहती है। माता की देखा-देखी वह भी व्यभिचारिणी है। तुर्रा तो यह है कि पिता का माशूक़ पुत्री का आशिक़ है। पुत्र सदाचारी है और उसने पिता को बुरे पथ से बचाने के लिए बहुत से व्यर्थ-प्रयत्न किए—तहसीलदार साहब धार्मिक इतने हैं कि बिना 'श्रीगणेशाय नमः' लिखे कोई कार्य ही आरम्भ नहीं करते।

(४) पण्डित जी कथावाचक हैं, पर हैं मांसाहारी! उनकी स्त्री ने कभी मांसाहार किया ही नहीं। मांस पकाना नहीं आता—कभी नमक अधिक हो जाता है तो कभी मांस जल जाता है। यहाँ भी पण्डिताइन जी की पीठ-पलस्तर की जाती है।

(५) हेडमास्टर साहब नपुंसक हैं। लुई कुहनी का बॉथ और शिलाजीत का सेवन करते-करते थक गए, पर सब व्यर्थ। तिस पर जान-बूझ कर शादी कर ली। सन्तान न होने से दुखी हैं। और उसका रञ्ज स्त्री की पीठ पर घूँसा बजाकर निकालते हैं। उनकी पत्नी पढ़ी-लिखी है। जहाँ तक मुझे परिचय है, उसने अपने मुँह यह बात अपने किसी प्रिय से भी न कहा होगा—यह मैंने स्वयं अपने नेत्रों देखा है।

(६) एक कहते बड़ी हँसी आती है। पेशकार साहब कमज़ोर कायस्थ हैं। आपके हाकिम कलक्टर साहब ताज़ा-ताज़ा फ़ौज से आए हैं। जब कोई बात साहब के समझ में नहीं आती तो फ़ौरन पेशकार के मुँह पर एक चाँटा जमाते हैं। पेशकार साहब भी बड़े बहादुर हैं। दिन भर गिनते जाते हैं और सन्ध्या-समय उनका वर्ग निकाल कर, अपनी पत्नी ही को साहब मानकर उसी से बदला लेते हैं। भई वाह !!

उपरोक्त कतिपय प्रमाणों से पुरुषों की निरङ्कुशता का पता चल सकता है। मैं यह नहीं कहता कि पीटने का रोग अनपढ़ों में है ही नहीं, पर जिस रोग की आशा जहाँ न हो और वह रोग वहाँ अधिक रूप में पाया जाय तो उससे बढ़कर लज्जाजनक बात और क्या हो सकती है? मेरे विचार में इसकी एक ही औषधि है—प्रत्येक गाँव और मुहल्लों में नवयुवकों का एक ऐसा दल स्थापित किया जाय, जो ऐसे पतित पतियों का पता लगाया करे और जब घटना पूर्ण रूप से प्रमाणित हो जाय तो तत्काल किसी स्थानीय समाचार-पत्र में प्रकाशित करा दे और ग्राम में उस पुरुष के इस दुर्व्यवहार के विरुद्ध सभाएँ करे। यह कार्य नवयुवकों के हाथ में लेने से ही सफल होगा। आशा है, कदाचित् वह पुरुष लोक-लज्जा से अपना अमानुषिक कार्य छोड़ दे।

यहाँ मुझे एक बात याद आती है। एक दिन नैपोलियन अपने दो सरदारों के साथ फ़ौज की छावनी में घूम रहा था कि एक ग़रीब मोदी की स्त्री से साक्षात् हो गया, जो एक पञ्च वर्षीय बालक की उँगली पकड़े हुए फूट-फूटकर रोती जा रही थी। वह सम्राट् नैपोलियन को नहीं पहचानती थी। समझती थी कि कोई साधारण कप्तान होगा। नैपोलियन ने घोड़ा रोक कर उस स्त्री से उसके रोने का कारण पूछा। स्त्री घबराई हुई थी, उसने कोई उत्तर न दिया। परन्तु लड़के ने बेधड़क उत्तर दिया कि मेरी माँ इसलिए रो रही है कि मेरे बाप ने इसे मारा है।

"तुम्हारा बाप कहाँ है?"—नैपोलियन ने पूछा।

"वह पास ही पहरे पर हैं।"

नैपोलियन ने स्त्री से उसके पति का नाम पूछा। स्त्री ने बताने से इन्कार कर दिया। वह सोचती थी, कप्तान उसको सज़ा दे देगा।

नैपोलियन ने कहा—तुम्हारा पति तुमको पीटता है, तुम रो रही हो, तिस पर भी उसके दुख पाने से तुम इतना डरती हो कि मुझको उसका नाम भी नहीं बतलातीं। यह ठीक नहीं है। क्या यह नहीं हो सकता कि तुम्हीं दोषी हो?

स्त्री ने उत्तर दिया—कप्तान साहब, उनमें सहस्रों गुण हैं। हालाँ कि एक उनमें बड़ा बुरा दोष भी है। वह एक अविश्वासी पुरुष हैं और जब उनको क्रोध आ जाता

है तो वह आपे से बाहर हो जाते हैं। मैं उनको प्यार करती हूँ; क्योंकि वह मेरे धार्मिक पति हैं और मेरे प्यारे पुत्र के पिता हैं।

"तुम और तुम्हारा पति एक दूसरे को प्यार करो या न करो; परन्तु मैं यह नहीं चाहता कि वह तुमको पीटे। अपने पति का नाम बतलाओ और मैं सब मामला 'सम्राट्' से कहूँगा।" सम्राट् नैपोलियन ने कहा।

"यदि आप स्वयं सम्राट् होते तो भी मैं उनका नाम न बतलाती; क्योंकि मैं जानती हूँ कि वह दण्ड पावेंगे।"

"कैसी मूर्ख स्त्री है! मैं केवल यही चाहता हूँ कि उसको तुम्हारे साथ अच्छा बर्ताव करने के लिए शिक्षा दे दूँ।" यह कहते हुए उसने घोड़ा दौड़ाया और अपने ख़ेमे में जाकर सामान-रक्षा के अधिकारी को बुला भेजा। अधिकारी से उसने उस स्त्री के पति के बारे में पूछा।

अधिकारी ने उत्तर दिया—वह अपनी टोली में सब से अच्छा आदमी है। पर वह अपनी स्त्री से अकारण ही ईर्ष्या रखता है। उसकी स्त्री के चाल-चलन के विरुद्ध कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

"यह पता लगाओ कि उस सिपाही मोदी ने मुझे देखा है या नहीं? यदि नहीं, तो उसे यहाँ लाओ।" सम्राट् ने कहा।

वह सिपाही नैपोलियन को नहीं पहचानता था। जब वह सामने आया, तो उसने पूछा—मेरे बच्चे! क्या कारण है कि तुम अपनी पत्नी को पीटते हो? वह एक सुन्दर युवती है और वह अपने पतिधर्म को तुम्हारे पति-धर्म-पालन से अच्छी तरह पालन करती है। एक फ़्रान्सीसी योद्धा के लिए यह एक लज्जा की बात है।

"सरकार! मैंने अपनी स्त्री को किसी भी पुरुष से बात करने से मना कर दिया था, चाहे वह कोई क्यों न हो, तिस पर भी वह मेरे साथियों से बात करने से बाज़ नहीं आती।" उसने उत्तर दिया।

"यही तो तुम्हारी भूल है! तुम एक स्त्री को बात करने से मना करना चाहते हो; तुम इसी तरह डेन्यूब (Danube) नदी का पथ बदलने का भी प्रयत्न कर सकते हो। मेरा कहना मानो; शक्की मत बनो—अपनी पत्नी को बात करके प्रसन्न-चित्त रहने दो। यदि वह अपराध करेगी तो प्रसन्न रहने की अपेक्षा वह स्वयं दुखी रहेगी। मैं चाहता हूँ कि तुम अपनी पत्नी को फिर न मारो। अगर तुम मेरी आज्ञा न मानोगे तो मैं सम्राट् से तुम्हारी शिकायत करूँगा। मान लो, यदि सम्राट् तुमको डाँटें तो तुम क्या कहोगे?" नैपोलियन ने कहा।

"मेरी स्त्री मेरी ही है और यदि मैं चाहूँ तो उसे पीट भी सकता हूँ। उस दशा में मैं सम्राट् से कहता कि आप अपने शत्रु को सँभालिए और मुझे अपनी पत्नी को स्वयं ठीक करने के लिए छोड़ दीजिए।"—सिपाही ने उत्तर दिया।

नैपोलियन हँस पड़ा और बोला—अजी, ख़्याल करो, तुम सम्राट् से बातें कर रहे हो।

अपराधी घबरा गया, उसका सिर नीचे हो गया और नम्रतापूर्वक बोला—सरकार! तब तो बात दूसरी है। जब आपकी आज्ञा है तो मुझे अवश्य माननी पड़ेगी।

"ठीक है। मैं तुम्हारी स्त्री की बड़ी प्रशंसा सुनता हूँ। उसने तुमको दण्ड दिलाने की अपेक्षा मेरी अप्रसन्नता सहन करना उपयुक्त समझा। उसके साथ दया का बर्ताव करो। ध्यान रक्खो, यदि फिर कभी मैंने सुना कि तुम अपनी पत्नी को पीटते हो, तो मैं तुम्हारे साथ भी सख़्ती का बर्ताव करूँगा।"

कई वर्ष पश्चात् नैपोलियन ने फिर उस स्त्री से पूछा—अब तुम्हारी क्या दशा है? क्या तुम्हारे पति ने जो प्रतिज्ञा मुझसे की थी, उसको पूरा किया?

"हाँ सरकार! जब से मुझको सरकार के दर्शन हुए तब से संसार में मैं सबसे भाग्यवती स्त्री हूँ।"—उसने उत्तर दिया।

सम्राट् नैपोलियन के जीवन-काल की एक दूसरी घटना लीजिए:—

नैपोलियन का एक सरदार वियना (Vienna) में एक साबुनी के यहाँ ठहरा हुआ था। एक दिन उसने शराब के नशे में उसको एक प्रेम-पत्र लिखा। उस स्त्री ने तत्काल सेनापति अण्डोसी के पास रक्षा के निमित्त प्रार्थना की और उक्त प्रेम-पत्र भी प्रार्थना-पत्र के साथ भेज दिया। सेनापति अण्डोसी ने प्रार्थना-पत्र और प्रेम-पत्र दोनों सम्राट् नैपोलियन के पास भेज दिया। नैपोलियन ने उस सरदार को दूसरे दिन परेड पर उपस्थित होने की तत्काल आज्ञा दी। निश्चित समय पर नैपोलियन महल के बाहर निकला और अपने हाथ में पत्र लिए

सीधा सेना की ओर गया। सेना में जाकर उसने कहा—श्रीयुक्त × × × बाहर निकल आवें।

जब सरदार बाहर निकल आया तो नैपोलियन ने उस सरदार से क्रोधपूर्वक पूछा—क्या यह गन्दा पत्र तुम्हीं ने लिखा है?

सरदार ने घबराकर कहा—सरकार, क्षमा करें। मैं उस समय नशे में था और नहीं जानता था कि मैं क्या कर रहा हूँ।

"तुम एक साधुनी से, जो आदर-योग्य है; परन्तु युद्ध की आपदाओं से घिरी हुई है, बलात्कार करना चाहते हो! मैं तुमको लीजियन ऑफ़ ऑनर (Legion of Honour) के पद से हटाता हूँ। तुम उस आदरणीय पद पर रहने के योग्य नहीं हो। सेनापति डरसोन! देखना, मेरी आज्ञा का पालन करना। एक बूढ़ी स्त्री का सतीत्व भ्रष्ट न करना! मैं एक बूढ़ी स्त्री को अपनी माता के समान आदर करता हूँ।"—नैपोलियन ने कहा।

सचमुच स्त्रियाँ वह देवी हैं, जिनके सामने सब लोग सिर नवाते हैं। यह न समझिए कि स्त्रियाँ खिलौना हैं। इनके हृदयोद्गार परम पिता के पास जल्दी पहुँचते हैं। द्रौपदी चीर-हरण के कारण ही कौरव-वंश का नाश हुआ। सीता-हरण से रावण-वंश का नाश हुआ। चित्तौड़ की राजपूत-सतियों की हृदयाग्नि ने मुग़ल-वंश का इस तरह नाश किया कि आज कोई उनके नाम पर रोने वाला भी नहीं है।

वृद्ध-विवाह आदि से भी समाज में बहुत सी कुरीतियाँ फैल गई हैं, और उनकी भी औषधि वही नवयुवक-दल का सङ्गठन है। देश को आज दास-वृत्ति की स्त्रियों की आवश्यकता नहीं है। देश को आज खिलौने और बालकों की आवश्यकता नहीं है। आज वीर-माताएँ, वीर बहिनें और वीर-पत्नियों की आवश्यकता है। हमें तो आज एलोर की अन्नपूर्णा देवी सदृश पत्नियों की आवश्यकता है, जिन्होंने अपने पति को अमेरिका में सन्देशा भेजा था—"आप मुझे भूल सकते हैं, पर अपने देश को न भूलिएगा।"

हमें आज काकोरी-डकैती में फाँसी पाने वाले रामप्रसाद 'बिस्मिल' की माता की तरह माताओं की आवश्यकता है, जिन्हें अपने हृदयांश को भारत-माता की स्वतन्त्रता की बलि-वेदी पर आहुति करते हर्ष होता है। अपने पुत्र की मृत्यु के पश्चात् वह पूजनीया जननी कहती है—"मैं पुत्र की इस प्रकार की मृत्यु से दुखी नहीं हूँ। तुम लोग सत्य न छोड़ना और सत्य के लिए मर मिटना। मैं राम-सा ही पुत्र चाहती हूँ।" आप स्त्रियों का निरादर करके ऐसी माताएँ और बहिनें नहीं बना सकते, बल्कि उनका आदर करके ही बना सकते हैं।

अभिमन्यु की वीर जननी सुभद्रा का अर्जुन सदा आदर करते थे। कोर्सिका का प्रसिद्ध वकील लुई बोनापार्ट अपनी पत्नी श्रीमती लेटिशिया का सदा आदर करता था।

परन्तु स्त्रियों को भी द्विजेन्द्र बाबू के निम्न-लिखित शब्दों को कण्ठस्थ कर लेना चाहिए :—

"जो पति अपनी स्त्री का आदर करता है, उसकी पूजा सभी स्त्रियाँ करती हैं। वास्तविक साध्वी वही है, जो अपने पति के उन्हीं पैरों की पूजा करती है, जिनसे वह उसे मारता है। जिसकी पति-भक्ति का वियोग होने पर भी क्षय नहीं होता, पति के निष्ठुरता दिखलाने पर भी ह्रास नहीं होता, जिसकी पति-भक्ति अन्धकार में चन्द्रमा के समान शान्त, आँधी में पर्वत के समान दृढ़ और घूमने में तारों के समान स्थिर हो, जिसकी पति-भक्ति सब अवसरों पर, सब अवस्थाओं में, विश्वास के समान स्वच्छ, करुणा के समान अयाचित और मातृ-स्नेह के समान निरपेक्ष हो, वही सच्ची साध्वी है।"

हमारे सुधार का लक्ष्य प्रतिस्पर्धा कदापि न होना चाहिए, बल्कि सदैव यह स्मरण रखना चाहिए कि बिना स्त्री-पुरुषों के सम्मिलित उद्योग के हमारे देश का उत्थान नहीं हो सकता और देश का उत्थान ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए। जिन कुरीतियों और कतिपय सुधारों की ओर ऊपर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया गया है, आशा है पाठकगण इन पर अवश्य विचार करेंगे।

विविध विषय

सेवा-धर्म

एक अनन्त अतीत काल से इस निखिल विश्व में सेवा-धर्म के मोहक सङ्गीत की मधुर ध्वनि होती आ रही है। सेवा-धर्म का पालन करने के लिए मनुष्य के हृदय में दो ही भावनाएँ उद्भूत होती हैं। प्रथम भावना मनुष्य को इस ओर आकर्षित करती है कि वह सेवा को—पर-हित को मनुष्य-धर्म का एक अतीव प्रधान अंश समझे। इस भावना से आक्रान्त हो मनुष्य केवल निरुद्देश्य लक्ष्य से सेवा-धर्म अर्थात् पर-हित में प्रवृत्त होता है, यह भावना मनुष्य के हृदय को पर-दुख-कातरता से मथ डालती है—यह भावना दैवी है। इस भावना से भावान्वित हो जो जन सेवा-धर्म के लिए अपने अस्तित्व को उत्सर्ग कर देते हैं, संसार उन्हें अपने हृदय के बहुमूल्य, बहुसम्मान्य आसन पर स्थान देता है, उनकी यश-दीप्ति से संसार अनायास ही मुखरित हो उठता है। परन्तु इस भावना से सेवा-धर्म का पालन करने वाले जन विरले ही दिखाई देते हैं, इसीलिए संसार शोक-सन्ताप की लीला-भूमि के दृश्य दिखा रहा है।

दूसरी भावना वह है, जिससे मनुष्य अपने अन्तस्तल के एक कोण में अपनी श्रेष्ठता या ख्याति के भाव ले सेवा-धर्म का पालन करने के लिए, वेगवत् आँधी के समान क्षेत्र में अवतीर्ण होते हैं। परन्तु ऐसे मनुष्यों की अभिलाषा कभी पूर्णता की सीमा का स्पर्श नहीं कर पाती। इसका कारण यह है कि वे अपनी इच्छित श्रेष्ठता का मूल्य देने में सर्वथा ही असमर्थ रहते हैं। इतना ही नहीं, श्रेष्ठता की कुत्सित कामना उन्हें संसार को कुछ देने की अपेक्षा, उससे कुछ ग्रहण कर लेने का ही प्रलोभन देती है। यह भावना आसुरी है, संसार का ग्रास करने वाली है, इससे संसार के लाभ की आशा करना कोरी मृग-मरीचिका है। यही भावना है, जिसके कारण संसार में वैतरणी का भैरव-नाद हो रहा है, और जिसके कारण आज अनन्त काल से संसार अशान्ति के अञ्चल में आकुल हो रहा है। इस प्रकार सेवा-धर्म का पालन करने वालों को संसार क्यों सम्मान्यपूर्ण सौहार्द्र-दृष्टि से देखेगा! विस्मृति के महासागर में ऐसे कितने जीव भरे पड़े होंगे, इसकी गणना करने में कौन समर्थ है?

जिन्होंने संसार-तत्व के अन्वेषण में अपनी आयु का सर्वांश व्यय कर दिया है, उनका स्वर्ण-कथन तो यही है कि पर-सेवा करना, केवल अपनी सेवा करना है। यह विचार नितान्त दृढ़ है; क्योंकि समष्टि के हित में ही एक का और समाज के हित में ही व्यक्ति का हित निहित है। जो जन सेवा-धर्म के इस सत्य स्वरूप का चिन्तन निष्काम-भावना से करते हैं, वे शीघ्रता-पूर्वक सफलता को प्राप्त होते हैं, और उनकी योजना उज्ज्वल, स्थिर और उच्च परिणाम पर पहुँचती है। मनीषिजनों ने इसी उज्ज्वल आकर्षण से प्रलुब्ध हो, विश्व को उपदेश दिया है—अहिंसा परम धर्म है। किसी भी मत-प्रवर्त्तक महात्मा ने यह नहीं कहा कि अहिंसा या दया उपेक्षणीय पदार्थ है। परन्तु संसार में सेवा-धर्म की भेरी गुँजाने वाले ऐसे कितने महज्जन हुए हैं, जिन्होंने इस ठोस सत्य की अपेक्षा

की हो ! यदि ऐसे जनों की संख्या अधिकता से हुई होती, जिन्होंने अहिंसा की परम साधना करते हुए सेवा-धर्म का पालन किया होता, तो आज संसार में सुख-शान्ति की अजस्र धारा प्रवाहित होती दीखती।

एक विद्वान् का कथन है—"जो दुख, शोक, परतन्त्रता और विवशता दूर करने के लिए प्रयत्नशील होते हैं और प्रधानतः जो दीन-जनों को अपनी विशाल भुजाओं की छाया में आश्रय देते हैं, वे ही सच्चे पर-दुख-भञ्जन—सच्चे जन-वल्लभ का महत् पद प्राप्त करते हैं। संसार में जो थोड़े से जीवन-कण दिखाई देते हैं, वे इन्हीं धार्मिक जनों की गाढ़ी कमाई के परिणाम हैं। जिस समाज के एक-एक व्यक्ति की यह भावना रहती है कि मैं अवसर प्राप्त होते ही सेवा-धर्म के किसी भी अंश के पालनार्थ अपने अस्तित्व को भी उत्सर्ग कर दूँगा, वही समाज उन्नति के मधुर फलों का आस्वादन लाभ करता है। परन्तु धर्म के इस महा-मन्त्र से दीक्षित जन अत्यन्त विरल ही दिखाई देते हैं। यद्यपि उपदेशकों की संख्या में न्यूनता नहीं होती, पर कहना और कर दिखाना दो भिन्न बातें हैं, जो बहुधा परस्पर विरोधिनी होती हैं।

यह सत्य है कि प्रत्येक मनुष्य, वह चाहे जैसी परिस्थिति में क्यों न हो, सेवा-धर्म का कुछ न कुछ पालन अवश्य कर सकता है, वह अपने द्रव्य से, अपने शरीर से और अपने सङ्कल्प से जन-साधारण का कुछ न कुछ हित अवश्य कर सकता है; पर सङ्कीर्ण और लुब्ध वृत्ति उसे ऐसा करने से स्तम्भित कर देती है। इन वृत्तियों का दास चाहे जैसा ऐश्वर्यशाली, चाहे जैसा बलशाली और चाहे जैसा विद्यावान् क्यों न हो, वह सर्वदा यही कहता रहेगा—'क्या करें भई, इच्छा तो बहुत रहती है कि मैं भी कुछ करता, पर परिस्थिति ऐसी है, वैसी है।' इन ऐसी-वैसी परिस्थिति का रोना रोने वाले अन्त में सब कुछ यहीं छोड़, अनन्त-पथ के पथिक हो जाते हैं। जिस व्यक्ति से पर-हित साधन न हुआ वह तो पशु से भी तुच्छ है, क्योंकि पशु का जीवन तो सदा पर-हित में ही व्यय होता है, और जो व्यक्ति सदा स्वार्थ-चिन्तन में रत रहा वह पशु से किस बात में कम है, पशु में भी तो स्वार्थ-साधन की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

परन्तु यथार्थ तो यह है कि धर्म का रास्ता कुछ टेढ़ा होता है, उस पर अतिक्रमण करने से कुछ न कुछ कठिनाई होती है और कायर आत्माएँ कठिनाइयों से भयातुर हो उठती हैं। इसीलिए सेवा-धर्म का पालन करने में मनुष्य अपनी असमर्थता के कुछ न कुछ बहाने गढ़ लेता है। अनादि-काल से दशों दिशाओं से छलना, प्रवञ्चना का एक अचम्य स्वर सुनाई दे रहा है—'आह! यदि मेरे पास द्रव्य की प्रचुरता होती तो मैं न जाने क्या कर डालता। यदि मुझमें पूर्ण पाण्डित्य होता तो मैं संसार को ज्ञानालोक से प्रकाशित कर देता।' ऐसे लोग संसार के साथ, समाज के साथ और स्वयं अपने साथ विश्वासघात करते हैं। ऐसे लोग घोर अन्धकार में खद्योत की नाईं झलक दिखा कर सर्वदा के लिए तिरोहित हो जाते हैं।

सूर्य सेवा-भाव का कैसा उत्कृष्ट उदाहरण है—उसकी सेवा-साधना कैसी गहन है। काल की अक्षुण्ण निर्झरिणी प्रवाहित होते संसार न जाने कहाँ का कहाँ जा पहुँचा, पर सूर्य अब भी उसी भावना से, उसी स्थिर गति से अपनी महोज्ज्वल साधना में प्रवृत्त है, अब भी वह स्वयं को उसी प्रकार तप की महाग्नि में कण-कण करके भस्मसात् कर रहा है। और यह किस लिए ? केवल इस सुविशाल ब्रह्माण्ड की सेवा के लिए—उसके महदुपकार के साधनार्थ ! परन्तु क्या संख्यातीत तारागण के सेवा-धर्म की लगन उपेक्षणीय है। नभ-मण्डल में सूर्य के उदित होते ही वे आकाश के सुनील, सुविस्तृत अञ्चल में मुँह छिपा लेते हैं, और उसके अस्त होते ही गगनाङ्गण में क्रीड़ा करने आ पहुँचते हैं। आँख-मिचौनी का यह खेल कब से हो रहा है, पर तारागण की सेवा-साधना की वह लगन अब भी ज्यों की त्यों है ! अवसर पाते ही वे अपनी क्षीण शक्ति को सम्मिलित कर विश्व को अन्धकार से प्रकाश में ले जाने की चेष्टा में संलग्न हो जाते हैं।

क्या तारागण की इस सतत एवं अविश्रान्त साधना में शिक्षा का कुछ तत्व नहीं है। तुमसे कौन कहता है कि तुम इन्द्र का ऐश्वर्य, कुबेर की सम्पत्ति, वायु का बल और बृहस्पति की विद्या लेकर, वरुण की नाईं सेवा-क्षेत्र में समुपस्थित हो जाओ। जो तुम्हारे पास नहीं है, तुमसे उसका हिसाब ही कौन माँगता है ? हाँ, जो तुम्हारे पास है, संसार उसे अवश्य चाहता है, और उसे पत्र-पुष्प के समान सेवा-धर्म के अर्पण कर देना तुम्हारा मानवी धर्म

है। इसी में तुम्हारा, तुम्हारे समाज का, तुम्हारे देश का और संसार का कल्याण है। इसी से तुम्हारे दोनों लोक बनेंगे।

जो कुछ तुम्हारे पास है, वस्तुतः तुम उसके स्वामी नहीं हो। वह तो तुम्हारे निकट विश्वपति की धरोहर है, जो तुम्हें इसलिए दी गई है कि तुम उससे विश्व-नियन्ता की सन्तानों की कुछ कल्याण-साधना कर सको! यदि तुम इस परम सत्य, परम धर्म से च्युत होगे, तो दुखियों का अतिक्रन्दन ईश्वर के समक्ष तुम्हारी पुकार करेगा, जहाँ तुम्हारी जिह्वा कुण्ठित हो जायगी। तुम्हें कोई अधिकार नहीं है कि एक दीन मनुष्य, एक मुट्ठी चनों के लिए तुम्हारे सामने हाथ फैलावे और तुम उस पैसे से जिसके द्वारा उस क्षुधाकुल जन के प्राणों को कुछ आधार हो जाता, पान खाकर थूक दो। क्या यह सौजन्य पर अत्याचार नहीं है? क्या यह मनुष्यता का गला घोटना नहीं है?

स्मरण रखना चाहिए कि जनता में जनार्दन की सजीव प्रतिभा विलास करती है। जनता का हित-साधन करना मानो जनार्दन की सेवा करना है। जनता के आत्म-सन्तोष में ही जनार्दन आह्लादित होते और उस सेवा-धर्म के साधक की ओर मुस्करा कर देखते हैं—उस पर उनकी स्नेह-धारा अजस्र रूप से दया का वर्षण करती है, जिससे वह अनायास ही अमरत्व को—देवत्व को प्राप्त हो जाता है। इसीलिए कहते हैं कि सेवा का महत्व अत्यधिक है, उसकी साधना व्यक्ति और समष्टि का हित करती है, वह जगत्-वत्सल माता है, संसार का जीवन है। सेवा जनार्दन को वशीभूत करने का मोहन मन्त्र है, सेवा मनुष्यों का अमरत्व और देवों का देवत्व है—सेवा परम धर्म है। महात्मा तुलसीदास जी ने भी कहा है—"पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।"

—ज़हूरबख़्श

* * *

झूसी

प्रयाग में श्री० गङ्गाजी के बाएँ किनारे झूसी नाम की एक पुरानी बस्ती है। इस स्थान में एक प्राचीन क़िला बना है, जिसके भीतर गड़े हुए पत्थरों का एक कुआँ है, जो समुद्र-कूप कहलाता है। रायबहादुर बाबू सीताराम जी, बी० ए० ने लेखक से उसके देखने का आग्रह किया, इसलिए २१ जून को मैंने कई मित्रों के साथ उसका अवलोकन किया और जो कुछ मुझे वहाँ पर देखने को मिला और उससे जो अनुमान मेरे चित्त में उमड़ा उसको मैं प्रकाशित कर देना इसलिए आवश्यक समझता हूँ कि झूसी की ओर कदाचित् किसी पुरातत्ववेत्ता का ध्यान आकृष्ट हो जाय और झूसी के दुर्ग पर अधिक प्रकाश डालने की सामग्री मिल सके। सम्भव है, पुरातत्व-विभाग की किसी रिपोर्ट में इसका वर्णन दे दिया गया हो, परन्तु वह मेरे सामने नहीं है और कटनी में, जहाँ से मैं लिख रहा हूँ, ऐसा पुस्तकालय नहीं, जिसकी सहायता से झूसी का प्राचीन इतिहास लभ्य हो सके। बाबू सीताराम साहब का अनुमान है कि कदाचित् यह दुर्ग समुद्रगुप्त ने बनवाया हो, क्योंकि उनके विजय का वर्णन मुसलमानी क़िले में एक शिला-स्तम्भ पर अङ्कित है और झूसी के कुएँ का नाम भी उस सम्राट् के नाम से मिलान खाता है। जिस राजा का प्रयाग में कीर्ति-स्तम्भ खड़ा किया गया उसके ठहरने के लिए कोई दुर्ग भी रहा होगा। बाबू साहब का ख़्याल है कि झूसी का क़िला ही उस चतुर्थ शताब्दी के राजा की द्वितीय राजधानी अथवा अल्पकालिक निवास-स्थान था।

झूसी-दुर्ग में प्राचीनता के परिचय देने वाले ध्वंसावशेष बहुत कम हैं, वहाँ पर जो मकान इत्यादि बने हैं वे सब आधुनिक हैं। क़िले के नीचे अनेक गुफाएँ हैं, जो धुस खोद कर बना ली गई हैं। गङ्गा के किनारे की रेत को धुस कहते हैं। जो बस्ती धुस पर बसी उसका नाम धूसी होना स्वाभाविक है। जान पड़ता है कि वर्त्तमान नाम झूसी उसी धूसी का अपभ्रंश है।

इस स्थल में सबसे प्राचीन समुद्र-कूप ही जान पड़ता है। यह चौड़ा और सुन्दर कुआँ पत्थरों का बना है। कई वर्ष पूर्व जब वह साफ़ किया गया था तो उसमें से एक मूर्त्ति निकली थी, जो अब उसी कुएँ पर रक्खी है। मूर्त्ति की बनावट से जान पड़ता है कि वह कदाचित सहस्रेक वर्ष पुरानी होगी। कुएँ से कुछ गढ़े पत्थर भी निकले थे और अब वहीं पड़े हैं। परन्तु उन पर कोई ऐसे चिह्न नहीं हैं जिनसे उनके गढ़े जाने के समय का अनुमान किया जा सके। एक पत्थर पर 'सुमेरगिरकोट' लिखा

है। यह लेख वर्तमान समय के अक्षरों ही में है। पूछने से ज्ञात हुआ कि यहाँ कुछ दिन पूर्व सुमेरगिर नामी गुसाईं रहता था, उसी ने अपना नाम अमर करने की यह युक्ति निकाली थी। इस कूप में भेंट-स्वरूप रुपए-पैसे डाले जाने की प्रथा बहुत दिनों से है। इस कारण साफ़ करते समय अनेक सिक्के उपलब्ध हुए थे, जो सरकार को मिले। पता नहीं है कि उनकी जाँच की गई थी या नहीं। यदि उनमें प्राचीन सिक्के गुप्त-कालीन वा हैहय-कालीन रहे हों तो ऐतिहासिक खोज में उनसे भी कुछ सहायता मिल सकती है। अब भी यदि खोज लगाई जाय तो कदाचित् कोई मतलब की बात निकल आए। इस क़िले में बहुत सी ईंटें मिली हैं जो बहुत बड़े परिमाण की हैं और प्राचीनता की द्योतक हैं। इनकी भी यथोचित जाँच से कुछ उपयोगी निष्कर्ष प्राप्त हो सकता है। क़िले की गुफाओं और इमारतों में साधु-सन्त रहते हैं। इनमें एक वयोवृद्ध महन्त भी हैं। उनसे प्रश्न करने पर ज्ञात हुआ कि इस क़िले के निर्माता पुरूरवा थे, जिनकी स्त्री उर्वशी थी। इस स्थल में एक यज्ञ हुआ था, उस समय नृपतिगण के सिवाय देवी-देवताओं को निमन्त्रण दिया गया था, उनमें समुद्र भी शामिल था। समुद्र का डेरा कूप में डलवाया गया था, इसलिए उसका नाम समुद्र-कूप पड़ गया। एक अन्य साधु का कथन है कि यज्ञ के समय सात समुद्रों का जल लाया गया था, जो जल बच गया वह एक कुएँ में डाल दिया गया, उसी कारण उस कूप का नाम समुद्र-कूप पड़ गया। यह कथा महन्त जी की कथा से अधिकतर सङ्गत जान पड़ती है और चित्रकूट के भरत-कूप के इतिहास से मिलान खाती है। निदान इन कथाओं से ऐतिहासिक घटनाओं का कुछ न कुछ सङ्केत अवश्य प्रकटित होता है।

मेरी समझ में ये सब बातें गुप्त-कालीन कल्पना का खण्डन करती हैं। पहली बात तो यह है कि समुद्रगुप्त का जो कीर्त्ति-स्तम्भ खड़ा किया गया था, उसी के आस-पास उसका निवास-स्थान या दुर्ग होना चाहिए था। ऐसा कोई कारण नहीं दीखता कि जिसके वश कीर्ति-स्तम्भ गङ्गा के दाहिने किनारे खड़ा किया जाता और दुर्ग बाएँ किनारे दूर बनवाया जाता। कदाचित् इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि कीर्ति-स्तम्भ प्रयाग में खड़ा ही नहीं किया गया, वह पहले कोशाम्बी में था, जहाँ से मुसलमान राजा उठवा लाए, जैसे कि मेरठ और शैवालिक पर्वतों की लाटें उखड़वा कर दिल्ली में खड़ी कर दी गई थीं। अस्तु—

यदि झूसी का क़िला समुद्रगुप्त का बनवाया हुआ हो तो उसका नाम स्वभावतः समुद्रदुर्ग या समुद्रकोट पड़ता, जिससे सम्राट् का गौरव अधिक जाग्रत होता, न कि एक क्षुद्र कुएँ को उसका नाम देने से। गुप्त-वंश के राजाओं के अनेक शिलालेख मिले हैं, उनमें कहीं भी उस वंश का मूल पुरुष पुरूरवा नहीं बतलाया गया, न कहीं उल्लेख मिलता है कि गुप्त-नृप चन्द्रवंशी थे। पुरूरवा तो चन्द्रवंश का मूल पुरखा गिना जाता है। स्पष्ट रूप से कहीं भी नहीं बतलाया गया कि गुप्त-नृपति सूर्यवंशी या चन्द्रवंशी थे, परन्तु किसी-किसी लेख में सूर्य की वन्दना की गई है, यथा गङ्गधार शिलालेख में "× × × तस्मै सवित्रे नमः" लिखा पाया जाता है। मेरी राय में झूसी का क़िला त्रिपुरी के हैहयों का बनवाया हुआ जान पड़ता है। समुद्र-कूप की बनावट जबलपुर ज़िले के दैमापुर के कुओं से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। दैमापुर के कुएँ निस्सन्देह त्रिपुरी के हैहयों के समय के हैं। हैहयों के लेखों में उनकी वंशोत्पत्ति इस प्रकार लिखी मिलती है:—"पुत्रं पुरूरवसमौरसमवाप सुनुर्देवस्य सप्तजल राशि रसायनस्य। आसीदनन्य समभागशनोप भोग्य। यस्योर्व्वशी सुकलत्रमिहोर्व्वराच॥" अर्थात् इस सात समुद्र के रसायन-रूपी देवपुत्र के पुरूरवा औरस पुत्र हुआ जिसकी साध्वी स्त्रियाँ उर्वशी और पृथ्वी हुईं, जिनके कारण वह सैकड़ों भोग-विलास का भागी हुआ।

जान पड़ता है कि हैहयों के पश्चात् झूसी का ह्रास हो गया। वह किसी ऐसे मूर्ख राजा के हाथ जा लगी, जिसके यहाँ न्याय का स्थान शून्य था। उस समय इसका नाम हरबोंगपुर हो गया। कहते हैं "अन्धेर नगरी अनबूझ राजा, टका सेर भाजी टका सेर खाजा" का यही स्थल है। हैहयों के ह्रास-काल में अनार्य लोग उठ खड़े हुए थे। ये अशिक्षित जङ्गली लोग थे। टका सेर भाजी टका सेर खाजा होने की सम्भावना इन्हीं लोगों के अमल में हो सकती है। लेखक को एक बार इन लोगों से नमूने के लिए तीर-कमान ख़रीदने का मौक़ा पड़ा। जङ्गली विक्रेता ने क़ीमत तीन बोड़ी

कौड़ियाँ माँगीं, जो एक पैसे के बराबर होती हैं। लेखक ने कौड़ियाँ न होने के कारण आठ पैसे अर्थात् अठगुने दाम देने को कहा, परन्तु उस मूर्ख ने लेने से इन्कार कर दिया। तब एक बनिए ने वे पैसे लेकर उस जङ्गली को तीन बोड़ी कौड़ियाँ तुरन्त दे दीं और बात की बात में सात पैसे का मुनाफ़ा हासिल कर लिया।

—(रायबहादुर) हीरालाल, बी० ए०

* * *

पातिव्रत्य का ढोंग

हिन्दू-समाज में सती और पातिव्रत्य की महिमा विशद रूप से कही गई है। इतना ही नहीं, इस देश का प्राचीन इतिहास इस गौरवजनक आदर्श से परिपूर्ण है। महासती अरुन्धती और हिमाचल-कन्या पार्वती से लेकर यवन-राज्य-काल की अन्तिम घटिका तक भारतीय वीराङ्गनाओं ने स्वच्छन्दतापूर्वक पातिव्रत्य की रक्षा के लिए सतीत्व का अपूर्व जौहर दिखलाया है। सच पूछिए तो पातिव्रत्य-रक्षा के लिए भारतीय महिलाओं ने नवीन और प्राचीन सभी देशों से बाज़ी मार ली है। यहाँ का सा उदाहरण आज भी कहीं नहीं मिलता है। हमारी प्राचीन उन्नति भी इन्हीं महासतियों के बल पर हुई थी, और वर्त्तमान समय में हमारा जो दिन पर दिन पतन हो रहा है, उसका कारण हमारी देवियों की विपन्नावस्था और पातिव्रत्य के असली स्वरूप को भूल जाना है। भारतीय रमणियाँ तो आज भी अपने सतीत्व-पालन में विमुख नहीं हैं। आज भी मूर्ख से मूर्ख भारतीय महिला सतीत्व और पातिव्रत्य का अनुभव करती है। पर समाज की कमज़ोरी से एक बारगी ही उनकी पातिव्रत्य-रक्षा पर प्रहार हुआ है। समाज ने पातिव्रत्य के महत् उद्देश को भूल कर उसका विचित्र रूप दे दिया है। वे देवियाँ पातिव्रत्य-पालन के लिए ऐसे बन्धनों में जकड़ दी गई हैं कि उनका जीना न जीना समान है। वे जीवित अवस्था में मृत-तुल्य हैं। अण्डमन में आजीवन कारावास सहने वाले क़ैदियों को भी इतना कष्ट न होता होगा। सतीत्व-रक्षा के लिए पातिव्रत्य का जो रूप उनके सामने आज रक्खा जाता है, वह तो उलटा विघातक है। उनके लिए रौलट-ऐक्ट से बढ़ कर काले क़ानून हर समय पुरुषों की जिह्वा से बनते हैं। आडम्बर-युक्त लज्जा और परदा सतीत्व-रक्षा के प्रधान अङ्ग समझे गए। इन नियमों का जिस देवी ने ज़रा भी उल्लङ्घन किया, उसके लिए यही समझा गया कि उसमें पातिव्रत्य नहीं रहा और सतीत्व का विनाश हो गया। अयोध्या के धोबी की कथा वेद-वाक्य बन गई। इससे क्या हुआ? समाज का दिन पर दिन पतन! हमने पातिव्रत्य और सतीत्व का जो बाहरी रूप समझ रक्खा है, उससे यह विदित होता है कि हम प्राचीन देवियों को एकबारगी ही भूल गए। जिस प्राचीन समय का हवाला आज दिया जाता है, उस समय देवियाँ क्या इसी प्रकार पैरों की जूतियाँ बना कर रक्खी जाती थीं कि जब चाहा, बदल ली? क्या उनके स्वाधीन होने से पातिव्रत्य का लोप हो गया था? यदि नहीं तो फिर इतनी ज़िद क्यों है?

पुरुष-वर्ग तो बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह और बहु-विवाह के रूप में अत्याचार कर पतिव्रताओं को कुमार्गगामी बना रहा है। "पर उपदेश कुशल बहुतेरे" सी बात हो गई है। धर्म का बन्धन एक के लिए रहा, दूसरे के लिए नहीं। इससे हमारा यह आशय कदापि नहीं है कि देवियाँ अपना धर्म पालन न करें। वे चाहती हैं, न्यायकारी पुरुषों से पातिव्रत्य की सच्ची रक्षा। पुरुष-समाज को जिस प्रकार उनके कुमार्गगामी होने पर दुख होता है, उसी प्रकार वे भी अपने पति और भ्राताओं को भ्रष्ट होते हुए देख कर शोकातुर होती हैं; अपने अभिमान को भङ्ग हुआ समझती हैं। वे कभी स्वेच्छा से अपने पातिव्रत्य को नहीं भङ्ग करतीं। पुरुष-वर्ग चाहे जिस दृष्टि से उन्हें देखे, चाहे जितनी आपत्तियाँ उन्हें दे, वे पातिव्रत्य-रक्षा के लिए सब कुछ सहेंगी—यहाँ तक कि प्राणों पर भी खेल जायँगी। पर यह उनकी आन्तरिक प्रेरणा है कि समाज की बल-वृद्धि के लिए पुरुष-वर्ग भी उनके समान आचरण करे। यदि शास्त्र की आज्ञा "पतिन्त्व पतितं भजेत्" देवियों के लिए है, तो पुरुषों के लिए क्या यह आदेश नहीं है:—

> कृतदारोऽस्मि भवति भार्य्येयं द्पितामय।
> त्वंद्विधानान्तु नारीणां सुदुःखा स सपत्नता॥

पातिव्रत्य का नियम यदि देवियों के लिए है, तो पत्नीव्रत का पुरुषों के लिए। कारण, बिना पुरुष के संयमी हुए देवियों की रक्षा नहीं होती दिखाई देती

है। इस कठिन समय में हिन्दू-देवियों पर भीषण आपदाएँ आ रही हैं। इसलिए नियम दोनों के लिए पूर्ण व्यावहारिक और समान रक्खा जाय। यदि पुरुष संयम से रहें तो स्त्रियाँ उनसे भी अधिक रह सकती हैं। आज अब ज़रा-ज़रा सी बात पर उनके पातिव्रत्य भङ्ग होने की धमकी न दीजिए। हम कहेंगे, इससे विनाश न होता होगा तो होगा। स्त्रियों के ही आत्म-विश्वास को प्रबल कीजिए कि वे अपने धर्म का पालन महान् सङ्कट के समय में भी करें और किसी दुष्ट के छेड़ने पर शिव-नेत्र की दृष्टि से उसे भस्मीभूत कर दें। इस नियम का पालन किसी बनावटी उपाय से नहीं हो सकता। हाँ, जिस गड्ढे में आप उन्हें रख रहे हैं, उससे उलटे उनके पातिव्रत्य पर वज्रपात हो रहा है और दिन पर दिन वैसा होने की आशङ्का है। देवियाँ पातिव्रत्य-रक्षा के लिए ऐसे स्थान में रक्खी जाती हैं कि उनका स्वास्थ्य पूर्ण नष्ट हो जाता है। किसी समय कोई अत्याचारी के प्रहार करने पर वे देवियाँ निर्बलतावश अपने आप की रक्षा नहीं कर सकती हैं। आए दिन नित्य-प्रति ऐसी घटनाएँ हमारे समाज में हो रही हैं। इसका यह कदापि तात्पर्य नहीं कि आप यूरोप की नक़ल कीजिए—आप अपने देश के अनुसार ही कीजिए। यदि यूरोप में कोई अच्छा ज्ञान है, तो उसे लेने में कोई हर्ज नहीं; क्योंकि ज्ञान तो अन्तर्राष्ट्रीय वस्तु है, जिस पर किसी एक का अधिकार नहीं हो सकता।

इस समय सबसे बड़ी आवश्यकता है कि आप एक क्षण भर की देरी न करके, पातिव्रत्य और सतीत्व-रक्षा के लिए उनके स्वास्थ्य को सुधार कर बलवती बनाइए और उनमें पवित्र भावों का सञ्चार कीजिए कि वे न तो अपने सत्य पथ से विचलित हो सकें और न सधर्मी और विधर्मी उन पर अत्याचार करने की चेष्टा करें। इतना ही नहीं, ऐसा होने पर सामाजिक जगत् इतना पवित्र हो जायगा कि हमारी अनेक कठिनाइयाँ स्वयं ही हल हो जायँगी। ऐसा न कीजिए कि एक देवी यदि घर में आए हुए सज्जन व्यक्ति को—जो दरवाज़े पर खड़ा है—भीतर से उत्तर दे दे कि मेरे पति घर में नहीं हैं, ऑफ़िस गए हुए हैं, आप शाम को मिलिएगा, तो इतने ही से उसे निकाल दें, यदि कोई चुग़लख़ोर इस बारे में आपसे यह आकर कह दे कि वह देवी अमुक व्यक्ति से गुपचुप बातें करके न जाने किस फ़िराक़ में है। यदि आप समाज में अपयश फैल जाने के भय से निकाल देते हैं, तो क्या आपका यह अक्षम्य अपराध नहीं है। अच्छा, तब आपकी शक्ति कहाँ चली जाती है, आप क्यों नहीं आगे बढ़ कर रक्षा करते हैं और स्वयं कायर, पौरुषहीन तथा अपराधी होने पर उस सती अबला को त्याग देते हैं, जबकि आपके देखते-देखते उस पर दुष्ट लोग जघन्य अत्याचार कर डालते हैं और आप टकटकी लगाए खड़े देखते रहते हैं, और उन लोगों के जाने के बाद निर्दोषिता को समाज से बाहर करके कुमार्ग का पथ अनुसरण कराते हैं। यदि उसने स्वेच्छा से व्यभिचार किया होता, तो वह निस्सन्देह अपराधिन है और आप भी उसे त्याग सकते हैं। लेकिन जब उस पर दूसरों ने अत्याचार किया, तब आप उसे बचाने के स्थान पर रक्षा करने वाले धर्म-ग्रन्थों से अपयश का टीका देकर त्याग देते हैं, तो क्या दुगुना अत्याचार नहीं करते हैं? आप पातिव्रत्य-धर्म को ज़रा गम्भीरता से सोचिए! जब किसी स्त्री ने स्वेच्छा से व्यवहार नहीं किया और दुष्ट पुरुषों से वह सताई गई; जबकि मन, वचन और कर्म से अपने पतिदेव के सिवा किसी को स्मरण नहीं किया, तब वह किस प्रकार अपराधिन हुई? आप हिन्दू-धर्मशास्त्रों का परिशीलन कीजिए। आपको अनेक स्थानों पर शास्त्राज्ञा मिलेगी कि इस अवस्था में देवियों का त्याग वर्जनीय है। धर्मशास्त्र तो अपवित्र को शरण देते हैं—पाप से छुड़ा कर सच्चे पथ पर लाते हैं।

आर्ष-ग्रन्थों में रामायण के वीर-पुङ्गव पुरुष श्रीरामचन्द्र के सीता-त्याग के विषय में सन्देह है। श्रीराम के आदर्श-चरित्र से ऐसा व्यवहार न हुआ होगा। कविवरों ने इसे दूसरे ही अभिप्राय से गान किया है। इसलिए और नहीं तो शास्त्रों की ही दृष्टि से अपनी सामाजिक कमज़ोरी दूर कीजिए, अन्यथा इसका परिणाम अत्यन्त भीषण होगा। इससे तो सभी देवियों की रक्षा होना कठिन होगा। उस समय सिवा पछताने और हाथ मलने के कुछ न होगा। जाति का पतन हो जायगा। धर्मशास्त्र को मानिए, पर विवेक से, समय की गति भी देखिए। शास्त्र की उन आज्ञाओं को भी देखिए, जो आपत्तिकाल के लिए दी गई हैं। शास्त्रों से बलवान बनने में ही हिन्दू-जाति का कल्याण है। वे बातें भुला देनी चाहिए, जो इस समय अव्यावहारिक प्रकट हों। ऐसे काम कीजिए,

जिससे जघन्य अत्याचार—भ्रूण-हत्याएँ और धर्म-विसर्जन न हो। सती-प्रथा बन्द हो गई है, यद्यपि आज भी कभी-कभी पति-प्रेम से विह्वल हो या पति-कुल के सङ्कटों से त्रसित हो अथवा पातिव्रत्य-रक्षा के लिए देवियाँ सती हो जाती हैं। पर आज यह साधन सबके लिए नहीं है। सती होना प्राचीन आदर्श था, और यह हमारे लिए गौरव की बात है। आज हमारे लिए यह नियम उपलब्ध नहीं है। आज तो देवियों के वैधव्य प्राप्त करने पर संयम ही एकमात्र अवलम्ब है। ऐसे अवसर पर ज़रा-ज़रा सी बात पर अविश्वास प्रकट किया जायगा तो उनका जीवित रहना और अपने स्वर्गीय पतियों के प्रति पातिव्रत्य स्थिर रखना दुस्तर हो जायगा। सच जानिए, पुरुष-वर्ग की ग़लती से देवियों का सतीत्व हरण होता है। फिर वे ज़रा डिगीं नहीं कि तुरन्त ही असहयोग का शङ्ख फूँक दिया गया—तुरन्त उनका घर से विसर्जन कर विधर्मियों के लिए शिकार पैदा कर दिया गया! इससे विजातियों की संख्या बढ़ती है। उनके आचरण की रक्षा पशुवत् व्यवहार से न होगी। हमारे और उनके पूर्ण सहयोग से रमणियों की मर्यादा क़ायम रहेगी। यदि दैववश वे पतित हो जायँ तो भी घर से बाहर विधर्मियों को ले जाने का रास्ता न दीजिए। आप उन्हें अपने आश्रय में ही रखिए, चाहे आपका इस अवस्था में वैसा व्यवहार भले ही न हो। पातिव्रत्य छुईमुई नहीं है, वह तो तलवार की तेज़ धार है—आदर्श धर्म-पालन है। यदि आप चाहते हैं कि हमारी माताएँ और बहिनें आदर्श पतिव्रता हों तो वे भी यह चाहती हैं कि हमारे पिता, पुत्र और भ्रातृगण आदर्श-पत्नीव्रत हों। दोनों समान रूप से अपनी-अपनी ज़िम्मेदारी का पालन करें। इसी में देश की और हिन्दू-समाज की भलाई है।

—जी० एस० पथिक, बी० ए०, बी० (कॉम)

* * *

बहुविवाह-प्रथा

अन्य धर्मों में विवाह एक सामाजिक रीति है, परन्तु हिन्दू-धर्म में विवाह उन सोलह संस्कारों में से है, जिसका जन्म से मरण तक मनुष्य-जाति में होना आवश्यक समझा जाता है; अतएव जिस प्रकार अन्य संस्कार एक ही बार होते हैं, उसी प्रकार यह संस्कार भी धर्मानुसार एक ही बार होना चाहिए, परन्तु देखने में आता है कि बहुधा दो-तीन बार भी पुरुष अपना यह संस्कार कर डालते हैं, इससे विवाह का आदर्श नष्ट होता है। हिन्दू-शास्त्रकारों ने तो विवाह का उद्देश्य केवल सन्तानोत्पत्ति बताया है, भोग-विलास के लिए विवाह करना अनुचित ही नहीं, हानिकारक और निन्दनीय भी ठहराया है। इसी कारण केवल ऋतुमती होने के पश्चात् ही, स्त्री-पुरुष का संयोग होने का उल्लेख शास्त्रों में पाया जाता है। विवाह-सम्बन्धी जितने मन्त्र वेदों में पाए जाते हैं, उन सबों का प्रायः यही अर्थ है कि उत्तम, धार्मिक, कार्य-कुशल, साहसी और विद्वान् सन्तान उत्पन्न करना चाहिए और पितृ-ऋण चुकाना चाहिए। केवल हिन्दू-धर्म को छोड़ कर और किसी धर्म में विवाह का इतना उच्च आदर्श लौकिक और पारलौकिक दोनों दृष्टि से नहीं रक्खा गया है। मुसलमानी-धर्म-ग्रन्थों में, जहाँ बहु-विवाह की इजाज़त है, वहाँ विवाह-विच्छेद की भी इजाज़त है; परन्तु हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों में विवाह-विच्छेद का पता नहीं है। एक पुरुष को एक ही पत्नी करना चाहिए और एक स्त्री को एक ही पति करना चाहिए; हिन्दू-धर्म में यही आदेश है। एक पत्नीव्रत और पातिव्रत्य-धर्म की ही महिमा का शास्त्रों में सर्वत्र उल्लेख है; इसी कारण हिन्दू-धर्म में, विवाह-बन्धन केवल सामाजिक प्रथा ही नहीं समझी गई, वरन् इसे धार्मिक स्वरूप दिया गया है। परन्तु मुसलमानी व ईसाई-धर्म में, विवाह एक सामाजिक प्रथा-मात्र समझी गई है; और इसी कारण विवाह-त्याग की उन धर्मों में इजाज़त है।

मुसलमानी-धर्म में तो पत्नी-त्याग करने से पहले भी दूसरा विवाह करने की इजाज़त है; परन्तु ईसाई-धर्म में ऐसा नहीं है। ईसाइयों में एक पत्नी का त्याग हुए बिना, दूसरी का ग्रहण करना वर्जित है। इन दोनों धर्मों की बहु-विवाह प्रथा के साथ पत्नी-त्याग प्रथा का परिणाम स्त्री-समाज पर बड़ा भयङ्कर पड़ा है। जो गृह सुख का आगार होना चाहिए था, वे बहु-विवाह प्रथा के कारण, नर्क-धाम बन गए हैं। इस निन्दनीय प्रथा के कारण, अनेक गृहों में, नित्य-प्रति कलहाग्नि धधका करती है। जिन समाजों में यह प्रथा प्रचलित है,

उनमें परस्पर स्त्री-पुरुष के अविश्वास के कारण, सच्चे प्रेम का अभाव रहता है। सांसारिक वासनाओं की तृप्ति के अभाव और सुख-कामनाओं के साधनों की कमी होने पर स्त्रियों में उदासीनता का भाव उत्पन्न होकर, प्रेम-पुरस्कार में कमी होने लगती है; और यही कमी आगे चल कर विकारों का कारण बन कर विवाह-विच्छेद की सामग्री जुटाती है। जिस समाज में धार्मिक आज्ञा के रूप में बहु-विवाह का प्रचार है, वहाँ सुख की मात्रा बहुत कम दिखाई पड़ती है। धर्म के नाम पर उसका पालन स्वार्थ-वश भले ही किया जाय, परन्तु मानवी प्रकृति इसे स्वाभाविक रूप में ग्रहण करने में असमर्थ है।

हिन्दू-समाज में भी, बहु-विवाह की प्रथा प्रचलित है; परन्तु पत्नी-त्याग की प्रथा का कहीं शास्त्रों में उल्लेख नहीं पाया जाता। अब विचारणीय बात यह है कि जिस समाज का उच्च ध्येय एक पत्नीव्रत और पातिव्रत्य धर्म हो, उसमें इस कलुषित प्रथा का प्रचार क्यों हुआ? हिन्दुओं में भी यह बुरी प्रथा कोई नवीन नहीं, बहुत प्राचीन काल से इसका प्रचार है। त्रेतायुग में राजा दशरथ के तीन स्त्रियाँ थीं। रामायण, महाभारत और पुराणों में राजाओं को छोड़ कर, ऋषियों तक का बहु-पत्नीक होना पाया जाता है। हिन्दू-समाज ने धर्म-मर्यादा क़ायम रखने के लिए बहुत प्रयत्न किया और यदि यह भी कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी कि यह धर्म अपनी इसी मर्याद-रक्षा के कारण जीवित है। ऐसे धर्म में बहु-विवाह का विधान किस उद्देश्य से रक्खा गया, समझ में नहीं आता है। मनुष्य के सोलह संस्कारों में जब विवाह भी एक संस्कार है, तो क्या बहु-विवाह प्रथा से इस संस्कार की मर्यादा भङ्ग नहीं होती है?

हिन्दू-धर्म में विवाह-संस्कार का उद्देश केवल सन्तानोत्पत्ति बताया गया है; और इसका मुख्य कारण पितृ-ऋण चुकाना समझा जाता है। इसलिए यह अनुमान करना कुछ कठिन नहीं मालूम होता कि एक पत्नी द्वारा सन्तान उत्पन्न होने की सम्भावना नष्ट होने पर सन्तानोत्पत्ति के हेतु ऋषियों ने दूसरे विवाह की आज्ञा दी और इसी उद्देश से बहु-विवाह का सूत्रपात हुआ। हिन्दू-समाज में, परन्तु आज्ञा मिल जाने से, सुखोपभोग के लिए भी, पुरुषों ने इसका उपयोग किया और शुद्ध धार्मिक कार्यों के लिए ऋषियों की दी हुई आज्ञा का दुरुपयोग होने लगा। काम-वासना की तृप्ति के लिए बहु-पत्नी की निन्दनीय प्रथा ने, हिन्दू-धर्म की मर्यादा को घटाया और समाज में उच्छृङ्खलता का भाव उत्पन्न किया। बहु-विवाह प्रथा कोई सनातन-धर्म न था, आपद्धर्म था; इसका उपयोग ऐसे कठिन समय में ही करने की शास्त्रकारों ने आज्ञा दी है, जब पितृऋण चुकाने के लिए सन्तान की आवश्यकता समझी जाय; अन्यथा यह प्रथा अत्यन्त वर्जित समझी जानी चाहिए।

पुरुष तो बहु-पत्नी कर सकते हैं, इसका उल्लेख भी शास्त्रों में है; क्योंकि उद्देश ही पितृऋण चुकाना विवाह का मूल बताया गया है। परन्तु क्या स्त्रियाँ भी ऐसा कर सकती हैं? क्या शास्त्रों ने स्त्रियों को भी बहु-विवाह अर्थात् बहु-पति करने की आज्ञा दी है? क्या एक पति की मौजूदगी में दूसरे पति का होना हिन्दू-धर्म के अनुकूल है? और ऐसा करने का कोई विधान शास्त्रों में पाया जाता है या नहीं? द्रौपदी के पाँच पति थे, यह सभी जानते हैं। उनका विवाह भी शास्त्रानुकूल हुआ था, यह भी कह सकते हैं। अतएव शास्त्रों में ऐसा विधान अवश्य होना चाहिए। पुराणों में भी ऐसे अनेक उदाहरण पाए जाते हैं। जाबाल ऋषि का उदाहरण इसी प्रकार का है। मत्स्यपुराण में भी इसके कई उदाहरण मिलते हैं। उशीज मुनि के भाई वृहस्पति ने एक बार काम-वासना से प्रेरित होकर अपनी भावज अर्थात् उशीज मुनि की पत्नी ममता से काम-वासना-तृप्ति के लिए याचना की थी। परन्तु इस प्रस्ताव को ऋषी-पत्नी ने बुरा न मान कर केवल यही उत्तर दिया था कि मैं तुम्हारे भाई से गर्भवती हूँ, इस समय मैं तुम्हारे उपभोग के योग्य नहीं हूँ, अतएव इस गर्भ-निवृत्ति के पश्चात् मैं तुम्हारी कामना पूरी करूँगी। इसी प्रकार महाभारत में जटिला नामक स्त्री के सात ऋषिपति होने का उल्लेख है। भागवत में कण्डु नामक मुनि की कन्या ने प्रचेत नामक पुरुष की पत्नी होकर उसके दस भाइयों से व्यवहार रक्खा था।

उपरोक्त दृष्टान्तों से इस बात का पता तो चलता है कि इस प्रकार की प्रथा प्राचीन काल में अवश्य प्रचलित थी और इस प्रथा को निन्दनीय भी नहीं समझा जाता था; और न इस प्रकार के सम्बन्ध से उत्पन्न हुई सन्तान

को समाज में घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। इतना ही नहीं, धर्म की इस पर छाप लगा देने से इस प्रकार के व्यवहार को धर्मानुमोदित माना जाता था। हिन्दू-समाज में इस प्रथा के प्रचार का कारण केवल यह जान पड़ता है, जैसा ममता ने कहा था—"मैं इस समय गर्भवती हूँ, अतएव मैं उपभोग के योग्य नहीं हूँ।" केवल गर्भ धारणार्थ ही पति-पत्नी का संयोग होना उस काल में उचित समझा जाता था। इसके विपरीत काम-वासना के लिए स्त्री-पुरुष का संयोग निन्दनीय माना जाता था। सन्तानोत्पत्ति ही स्त्री-पुरुष के संयोग का मुख्य उद्देश्य था और इसी उद्देश्य-पूर्ति के लिए इसकी लोग इच्छा करते थे। काम-वासना की तृप्ति के लिए यह काम बुरा समझा जाता था। स्त्रियाँ भी पुत्र-कामना के हेतु पर-पुरुषों से सहवास करके सन्तान उत्पन्न करती थीं; और यह नियोग-प्रथा कहलाती थी। नियोग से उत्पन्न सन्तान औरस पुत्र के समान ही समाज में उच्च स्थान पाती थी। परन्तु ज्यों-ज्यों काम-वासना की वृद्धि होकर मनुष्यों के विचारों में परिवर्त्तन होता गया, उच्च ध्येय से समाज च्युत हुआ। ऋषियों ने इस प्रथा को वर्जित क़रार दे दिया। यदि मनुष्य-स्वभाव में उच्छृङ्खलता के भाव की जाग्रति न होती, पवित्रता और धर्म-भाव का प्राबल्य रहता तो यह प्रथा निन्दनीय और त्याज्य न मानी जाती। जब वर्त्तमान समय में विवाह का ही वह उच्च-आदर्श नहीं रहा तब एक स्त्री के बहु-पति होने अथवा नियोग-प्रथा के प्रचार से समाज की क्या गति होती, यह तो भगवान् ही जानें। विवाह की धर्म-मर्यादा टूट जाने पर भी पुरुषों ने तो अपने लिए बहु-पत्नी की प्रथा बनाए रक्खी, परन्तु स्त्रियों के लिए बहु-पति की प्रथा को रोक दिया गया; इसे पुरुषों का स्त्रियों पर अत्याचार समझना चाहिए या नहीं, यह बात विज्ञ पाठक ही विचार सकते हैं।

विवाह-प्रथा का आरम्भ ही केवल सन्तानोत्पत्ति के विचार से हुआ था, अतएव सन्तान के अभाव में जहाँ पुरुषों को दूसरी पत्नी करने का अधिकार रक्खा गया है, वहीं पर स्त्रियों को भी ऐसे अवसर पर अधिकार देने में क्यों आपत्ति की जानी चाहिए, यह समझ में नहीं आता? यदि यह प्रथा दूषित है, तो दोनों के लिए इसका समान व्यवहार क्यों न हो? धर्मशास्त्र की सूक्ष्म गति का आडम्बर रचने वाले लोग चाहे इन विचारों की निन्दा करें, परन्तु संसार के प्रवाह को रोकना उनके लिए तभी सम्भव होगा, जब स्त्री और पुरुष दोनों के लिए समान मर्यादा का सङ्गठन किया जायगा। अब यह समय नहीं रहा है कि केवल धर्मशास्त्र का नाम लेकर लोगों को धर्मात्मा बनाया जा सके। धर्म-धर्म चिल्लाने से अब कल्याण की आशा नहीं है। या तो बहु-विवाह की प्रथा को धर्मानुसार स्त्री और पुरुष दोनों के लिए त्याज्य समझना होगा या दोनों को इस विषय में समान अधिकार प्रदान करना होगा। समाज के कल्याण के हितार्थ, पुरुषों में भी इस प्रथा का बन्द होना श्रेयस्कर है। ऐसा होने से स्त्री-समाज के सन्तोष का कारण होगा; और पुरुषों में संयम की वृद्धि होकर इहलोक और परलोक दोनों में सुख की प्राप्ति होगी। धर्म की मर्यादा की रक्षा भी हो सकेगी। स्त्रियों में जो वर्त्तमान समय में उच्छृङ्खलता का भाव बढ़ रहा है और जिसके कारण समाज में बहुत-कुछ व्याकुलता उत्पन्न हो गई है, उसमें भी कमी होकर देश का कल्याण होगा। जिस प्रकार ऋषियों ने स्त्रियों में बहु-पति-प्रथा को बन्द करके धर्म और समाज को उस समय नष्ट होने से बचाया था, उसी प्रकार वर्तमान समय के धर्माचार्यों का भी कर्त्तव्य है कि वे पुरुषों में भी इस प्रथा को उठाकर भविष्य के लिए हिन्दू-समाज की रक्षा करें; नहीं तो स्त्रियाँ पुरुषों को भोग-विलास का आनन्द लेते हुए देखकर अपने लिए भी कोई ऐसा रास्ता निकालेंगी, जो हिन्दू-समाज को अधिक नीचे ले जायगा; और ऋषियों के तपोबल से जो मर्यादा स्थापित हुई है, वह नष्ट-भ्रष्ट होकर हिन्दुओं का और भी अधिक भयङ्कर पतन होगा।

—(ठाकुर) सूर्यकुमार वर्मा

* * *

स्वराज्य कब मिलेगा?

यह बीसवीं शताब्दी स्वातन्त्र्य-सूर्योदय का मङ्गल-प्रभात है। कोई भी देश, जाति या समाज अपने को परतन्त्रता-निशा के अन्धकार में अधिक समय तक नहीं रख सकता। भला कौन ऐसा भाग्य-विहीन

व्यक्ति होगा जो पराधीनता के पाश में जकड़ कर अपने को सुखी माने। इस उन्नति के युग में संसार की नारियाँ भी पिछड़ी नहीं रहीं। इङ्गलैण्ड, फ़्रान्स, जर्मनी, अमेरिका और रूस की नारियों ने उन्नति की घुड़दौड़ में बाज़ी मार ली है। और अभी कल ही जिनके घरों के आँगन में स्वातन्त्र्य-सूर्य की सुनहली किरणों ने अपनी रोशनी फैलाना शुरू किया है, उन टर्की तथा प्रबुद्ध अफ़ग़ान आदि देशों की नारियों ने भी चेहरे पर से पुराना बुर्क़ा उतार कर उन देदीप्यमान प्रकाशमयी किरणों का स्वागत किया है। अबला के नाम से पुकारा जाने वाला संसार का आधा भाग प्रमाणित कर रहा है कि वह पुरुष-जगत् से किसी बात में रत्ती-मात्र भी कम नहीं है।

ज्ञान, विज्ञान, काव्य, कला, वाणिज्य, व्यापार, युद्ध, राजनीति, संस्था और देश के शासन में स्त्रियों ने अपना जन्म-सिद्ध अधिकार पूर्णता के साथ प्रकट किया है। फलतः सावित्री, सीता, द्रौपदी मैत्रेयी, गार्गी, अहल्याबाई और झाँसी की महाशक्ति लक्ष्मीबाई की प्यारी पुत्रियाँ भी कब तक इस अज्ञान एवं विवशता के अन्धकार में पड़ी सड़ती रहतीं!

समय-चक्र परिवर्त्तनशील है। वह घूमता ही रहता है और उसका काम है दुनिया में उथल-पुथल मचाते रहना, आज इधर तो कल उधर। जहाँ पुरुषों की मस्तिष्क-शक्ति स्त्रियों को पराधीनता के पाश में बाँध रखने के लिए नित्य नए-नए नियमों और धर्म-शास्त्रों के सूत्रों की रचना किया करती थी, वहाँ अब उसी मस्तिष्क-धारा में स्त्रियों के उद्धार के लिए श्रेष्ठ, पवित्र और उन्नति-पथ की ओर शीघ्रगामी विमल उदार विचार प्रवाहित हो रहे हैं। और तदनुसार अनुकूल दशा में कुछ कार्य भी हो रहा है।

अब भी ऐसे कुछ कट्टर महात्मा लोग हमारे देश में विराजमान हैं, जो आकाश-पाताल एक कर कहा करते हैं कि स्त्रियों को पढ़ाने-लिखाने से वे किसी के वश में न रहेंगी, उद्दण्ड हो जायँगी, अपने पतियों को धता बता देंगी, घर के काम-काज में उनका मन न लगेगा, अपने धर्म को तिलाञ्जलि देकर वे किरस्तान बन जायँगी, और महाकविवर श्री० तुलसीदास की "जिमि स्वतन्त्र होई बिगरहिं नारी" इस चौपाई का उदाहरण हमारे सामने उपस्थित करेंगी तथा भारतीय गृहस्थाश्रम की सुख-शान्ति पर झाड़ू फेर देंगी।

परन्तु अब भारत की नारियाँ इस प्रकार के पोच आक्षेपों के विकारों से बहुत दूर पहुँच गई हैं। रात के घने अन्धकार को तहस-नहस कर सूर्य के प्रकाश की तरह यह बात सर्व-सम्मत हो गई है कि भारतीय नारियों को आवश्यक, सम्पूर्ण और उचित शिक्षा देने से ही भारतवर्ष का कल्याण होगा। पुरुषों को अब अच्छी तरह समझ लेना होगा कि स्त्री, समाज का आधा अङ्ग है। अङ्ग का एक हिस्सा सबल हो, शिक्षित हो और हो सम्पन्न, एवं दूसरा निर्बल, अशिक्षित, असभ्य और हीन हो तो भारत के लिए स्वराज्य स्वप्न की कहानी मात्र है। मन के लड्डुओं से भूख नहीं बुझती। जब तक भारतीय महिलाओं की पूर्ण उन्नति न होगी, तब तक न तो इस पतित देश का उद्धार हो सकता है और न स्वराज्य का सच्चा सुख ही हम भोग सकेंगे। जिस देश या समाज में विदुषी, पतिव्रता, शीलवती और कर्त्तव्यपरायणा स्त्रियाँ होंगी उसी देश में सुख-शान्ति का साम्राज्य होगा, उसी देश की माताओं के बालक वीर, देश-सेवा-परायण और अपने कर्त्तव्य के पालक होंगे। क्योंकि सुशिक्षित माता ही राष्ट्र की उन्नति करने वाली है, वही राष्ट्र-निर्माता है, उसी के भुज-बल से भारत को स्वराज्य मिलेगा। अब केवल ऐसी माताओं को अपने कन्धे पर आज़ादी का झण्डा उठाने भर की देर है!

—हृषीकेश शर्मा (सम्पादक 'हिन्दी-प्रचारक')

* * *

प्रेम का अत्याचार

लोगों का विश्वास है कि केवल प्रेम, दया आदि से रहित व्यक्ति ही हमारे ऊपर अत्याचार करते हैं। किन्तु यह बात हम लोगों के ध्यान में नहीं आती कि उनकी अपेक्षा भी भारी अत्याचार करने वाले एक श्रेणी के लोग हैं। जो प्रेम करता है वही अत्याचार करता है। प्रेम करने से ही अत्याचार करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। मैं यदि तुमको प्यार करता हूँ, तो तुमको मेरी बात सुननी पड़ेगी, मेरा अनुरोध रखना पड़ेगा। तुम्हारा इष्ट हो या अनिष्ट, तुमको मेरा मत

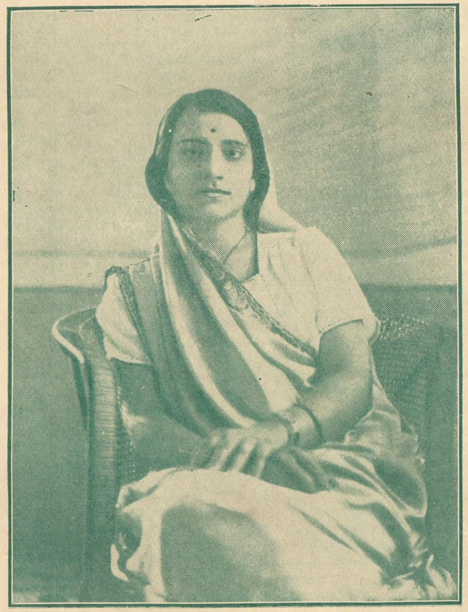
स्वीकार करना पड़ेगा। वास्तव में जो प्रेम करता है उससे यह उम्मीद कभी नहीं की जाती है कि जान-बूझ कर वह तुम्हारी बुराई के लिए तुमसे अनुरोध करेगा। किन्तु मङ्गल तथा अमङ्गलजनक कार्य का निर्णय बहुत कठिन है और प्रायः दो व्यक्तियों की राय इस बारे में नहीं मिलती। राजा, समाज और प्रणयी, ये तीन जन इस संसार में अत्याचार किया करते हैं। राजा के अत्याचार रोकने के उपाय बहुत से हैं, समाज के अत्याचार को रोकने के लिए भी पण्डितों तथा विद्वानों ने कुछ उठा नहीं रक्खा है, किन्तु प्रेम का अत्याचार रोकने के लिए कभी किसी को यत्न करने की बात आज तक देखी-सुनी नहीं गई। कैकेयी के प्रेमात्याचार से दशरथ-कृत राम-वनवास तथा द्यूत में आशक्त युधिष्ठिर के किए भाइयों के निर्वासन तथा अन्यान्य सैकड़ों स्थानों में इस महती नीति का प्रतिपादन हुआ है। इस अत्याचार के करने वाले अत्याचारी अनेक हैं। पिता-माता, स्त्री-स्वामी भाई-बहिन, पुत्र-कन्या, आत्मीय-कुटुम्ब, सुहृद-भृत्य, जो कोई प्यार करता है, वही कुछ न कुछ अत्याचार और अनिष्ट करता है।

तुम्हारी प्रबल इच्छा है कि अमुक प्रकार की अच्छे लक्षणों वाली, अच्छे कुल की, अच्छे चरित्र की कन्या से विवाह हो और इसी बीच में तुम्हारे बाप ने बिना पूछे, बिना समझे-बूझे ही किसी लड़की के साथ तुम्हारे ब्याह की बात पक्की कर ली। तुम यदि बालिग़ हो तो इस विषय में पिता की आज्ञा मानने के लिए बाध्य नहीं हो। किन्तु पितृ-प्रेम के वशीभूत होकर तुमको प्रेमात्याचार सहना पड़ा। मान लो कोई ग़रीब है। दैव के अनुग्रह से उसे कोई अच्छी जगह दूर देश में मिल गई और वह वहाँ जाकर ग़रीबी से पीछा छुड़ाने का उद्योग कर रहा है। इसी बीच में माता ने रोना-धोना मचा दिया। उसे दूर जाने से मना किया। वह मातृ-प्रेम से लाचार होकर रह गया। मातृ-प्रेम के अत्याचार से उसने अपने को सदा के लिए ग़रीबी के गढ़े में डाल दिया। लायक़ भाई के कमाए रुपए को निकम्मे-नालायक़ भाई नष्ट करते हैं। यह बिलकुल ही प्रेम का अत्याचार है। भार्य्या के प्यार के अत्याचार का उदाहरण उद्धृत करने की कोई आवश्यकता ही नहीं जान पड़ती; और स्वामी के अत्याचार के सम्बन्ध में इतना ही कह देना पर्याप्त है कि उनमें से कुछ प्रेम के अत्याचार भी होते हैं, किन्तु अधिकांश अत्याचारों का सम्बन्ध बाहु-बल से ही होता है।

और उदाहरण देखिए। दशरथ-कृत राम-निर्वासन की बात को ही ले लीजिए! यहाँ कैकेयी और दशरथ दोनों ही प्रेम के अत्याचार में प्रवृत्त हैं। कैकेयी दशरथ के ऊपर और दशरथ राम के ऊपर प्रेम का अत्याचार कर रहे हैं। इनमें से कैकेयी का कार्य स्वार्थपूर्ण और नीच कह कर चिर-परिचित है। कैकेयी ने अपने किसी इष्ट की कामना नहीं की—अपने पुत्र की भलाई सोची थी। दशरथ ने सत्य-पालन के लिए राम को वन भेज कर भरत को राज्य दिया। इसमें उन्हें प्राणाधिक-पुत्र का वियोग स्वीकार करना पड़ा और अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। इसीसे भारतवर्ष के साहित्य का इतिहास उनके यश-कीर्त्तन से परिपूर्ण है। किन्तु उत्कृष्ट धर्म-नीति के विचार से यही सिद्ध होता है कि दशरथ ने पुत्र को अपने अधिकार से च्युत और निर्वासित करके सत्य का पालन किया, तो इसमें उन्हें घोर अधर्म हुआ। यह पूछा जा सकता है कि क्या प्रतिज्ञा-मात्र का पालन करना चाहिए। यदि सती-कुल-कामिनी किसी फेर में पड़ कर किसी दुश्चरित्र पुरुष के निकट धर्म-त्याग का वादा कर ले तो क्या उस वादे को पूरा करना चाहिए? यदि कोई किसी ठग के बहकाने से बिना किसी दोष के मित्र को मारने की प्रतिज्ञा कर ले तो क्या उसे उसका पालन करना चाहिए?

मनुष्य-जीवन प्रेम के अत्याचारों से पूर्ण है। जैसे परस्पर समाज-बन्धन में बँधे बिना मनुष्य-जीवन का उद्देश सुसम्पन्न नहीं होता, वैसे ही परस्पर आन्तरिक बन्धन में बँधे बिना मनुष्य-जीवन का अच्छी तरह निर्वाह नहीं होता। अतएव समाज का जैसा प्रयोजन है, वैसा ही बल्कि उससे भी अधिक प्रेम का प्रयोजन है। बाहु-बल या समाज का अत्याचार होने के कारण जिस तरह बाहु-बल या समाज को मनुष्य त्याज्य या अनादर की चीज़ नहीं समझते, उसी प्रकार प्रेम का अत्याचार होने के कारण यह भी त्याज्य या अनादरणीय नहीं हो सकता।

प्रेम के अत्याचार रोकने का एक उपाय धर्म का अवलम्बन है, तथा दूसरा कहा जाता है कि प्रेम के ही द्वारा प्रेम का अत्याचार शान्त किया जा सकता है।



श्रीमती शारदा दीवान, एम० ए०



कुमारी बचुबेन लोटवाला



श्रीमती हंसा मेहता, बी० ए०

सभी विज्ञ इसे स्वीकार करते हैं कि यह बात यथाथ है। प्रेम यदि स्वार्थपरता से शून्य हो तो यह हो सकता है, किन्तु साधारण मनुष्यों की प्रकृति ऐसी है कि स्वार्थपरता-शून्य प्रेम इस संसार में दुर्लभ है। मनुष्य के निस्स्वार्थ प्रेम का अधिकांश प्रणयी और प्रणय-पात्र दोनों के चित्त को सुखदायक, किन्तु स्वार्थपूर्ण पशु-चरित्र होता है। प्रेम मनुष्य के हृदय में स्वार्थ-साधन के लिए नहीं स्थापित हुआ है। मनुष्य के चरित्र ने अब तक वैसा उत्कर्ष प्राप्त नहीं किया, इसीसे मनुष्य-प्रेम अब तक पशुवत् है। पशुवत् इसलिए है कि पशुओं में भी दाम्पत्य के अतिरिक्त परस्पर वत्स-स्नेह, दाम्पत्य और वात्सल्य आदि अन्य प्रकार के प्रणय हैं। सन्तान का स्नेह पशुओं में मनुष्य की अपेक्षा कम नहीं है।

प्रेम का यथार्थ स्वरूप ही अस्वार्थपरता है। जिस माता ने पुत्र के सुख के लिए पुत्र-मुख-दर्शन सुख की कामना छोड़ दी, वही यथार्थ स्नेह करने वाली है। जो प्रणयी प्रणय-पात्र की भलाई के लिए प्रणय-सुख-भोग को छोड़ सका, वही सच्चा प्रणयी है।

जब तक साधारण मनुष्यों का प्रेम इस तरह विशुद्धता को प्राप्त न करेगा, तब तक मनुष्य के प्रेम से स्वार्थ-परता का कलङ्क दूर न होगा और प्रेम की यथार्थ स्फूर्ति न होगी। जहाँ प्रेम को ऐसा शुद्ध रूप प्राप्त होगा, या जिसका प्रेम ऐसे शुद्ध रूप को प्राप्त हो चुका है, वहीं प्रेम के द्वारा प्रेम का अत्याचार रोका जा सकता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रेम का अत्याचार धर्म तथा निस्स्वार्थ प्रेम से रोका जा सकता है। निस्स्वार्थ प्रेम और धर्म की एक ही गति और एक ही परिणति है। दोनों का साध्य दूसरे का मङ्गल है। वास्तव में प्रेम और धर्म एक ही पदार्थ हैं। सब संसार जब प्रेम का विषय हो जाता है, तब वह प्रेम ही धर्म नाम को प्राप्त होता है। धर्म जब तक सार्वजनिक प्रेम के रूप को धारण नहीं करता, तब तक वह सम्पूर्णता को नहीं प्राप्त होता, किन्तु मनुष्यों ने कार्यतः प्रेम को धर्म से अलग कर रक्खा है। अतएव प्रेम का अत्याचार रोकने के लिए धर्म के द्वारा प्रेम पर शासन होने की आवश्यकता है।

—शिलानाथप्रसाद सिंह

देव !

[रचयिता—श्रीमती महादेवी जी वर्मा, श्रीवास्तव]

(१)

सोकर मूक व्यथा में अपने,
मुझे जाग लेने दे !
अहम् भाव की चिर समाधि पर,
देव ! त्याग लेने दे !!

(२)

छेड़ न, विस्मृति फूट पड़ेंगी,
पीड़ा पागल घड़ियाँ !
अध-कच्ची हो रह जाएँगी,
कच्ची जीवन-कलियाँ !!

(३)

उस अनन्त के पथ पर तेरे—
चित्रित तो हो जाऊँ !
घोर तिमिर में ज्योति-राशि की,
आभा कुछ लख पाऊँ !!

छोटके भैया

[ले० श्री० जनार्दनप्रसाद जी झा 'द्विज']

दहेज में बड़ी से बड़ी रक़म और अधिक से अधिक चीज़ें पाकर भी वर-पक्ष के लोग सन्तुष्ट हो सके हों, ऐसा कम ही देखा गया है। मेरे विवाह में भी यही बात हुई। उस दहेज के पीछे मेरे बाबू जी तबाह होगए, फिर भी दहेज पाने वालों की इच्छा भूखी ही रही। बारात की बिदाई के समय हल्दी की थाली में सिर्फ़ एक सौ एक रुपए देख कर मेरे ससुर साहब के तन-बदन में आग लग गई। यह वह आग थी, जिसने उनके साधारण सौजन्य और शिष्टाचार के भावों को भी जला दिया। लात मार कर, हल्दी की थाली को दूर ठुकराते हुए, क्रोध-कम्पित स्वर में वे ज़ोर से चिल्ला उठे—"मुझसे यह अपमान नहीं सहा जा सकता। भला चाहते हो तो अपनी ये सड़ी हुई चीज़ें (थाली, लोटे, गिलास, कटोरे, कलसी, गगरे, आदि) मेरे सामने से उठा ले जाओ, नहीं तो मैं इन्हें चूर-चूर करके यहीं मिट्टी में मिला दूँगा।"

यद्यपि वे सारी चीज़ें एकदम नई, बहुत ही सुन्दर और क़ीमती थीं, फिर भी मेरे बाबू जी ने उनकी ओर से कोई वकालत न करते हुए बड़ी ही दीनता से हाथ जोड़ कर कहा—"ग़रीब की चीज़ें ऐसी ही हुआ करती हैं समधी जी! मैं किस लायक़ हूँ कि आपको कुछ दे सकूँ? इधर-उधर से भीख माँग कर जो कुछ जुटा सका, आपके चरणों पर समर्पित है। इस तरह अगर आप उन्हें ठुकरा देंगे तो मैं कहीं का न रह जाऊँगा। मेरी लाज बचाइए।"

इस करुण विनती से मेरे ससुर जी पसीजने वाले नहीं थे। उन्होंने और भी आग-बबूला होकर कहा—"लाज उसकी बचाई जाती है, जिसके पास वह हो। आपको अपने लाज-धरम का ख़्याल होता तो इस तरह छूछी हल्दी की थाली देकर आप मेरा अपमान न करते। आख़िर मुझे भी तो अपने समाज में अपनी प्रतिष्ठा रखनी है! आपके ये सारे बरतन पुराने हैं। ऊपर से इन पर पॉलिश करवा दिया गया है। इन्हें साथ ले जाऊँगा तो गाँव भर के लोग मेरा उपहास करेंगे। मैं इन्हें छू भी नहीं सकता। जी चाहे, आप उठाकर ले जाइए या यहीं पड़े रहने दीजिए।"

मेरे बाबू जी की आँखों में आँसू भर आए। क्रोध और अपमान की चोटों से आहत होकर भी उन्होंने अपनी स्वाभाविक नम्रता से उत्तर दिया—"मैं तो आपसे निवेदन कर चुका समधी जी! नई या पुरानी जैसी भी हों, अब ये चीज़ें आपकी हैं। मेरे-जैसे भिखारी से आप हल्दी की थाली में और क्या पाने की आशा कर सकते हैं? मेरे पास है ही क्या? गोबर उठाने के लिए मैं आपको अपनी बेटी दे सका, यही मेरा अहोभाग्य! आपकी इतनी कृपा न होती तो मेरा उद्धार असम्भव था।

मेरे ससुर जी कुछ बोलने ही वाले थे कि इतने में ही उधर से कोई और सज्जन बोल उठे—"रुपए ख़र्च करने में पीड़ा हो तो बेटी का ब्याह ही नहीं करना चाहिए। रख लेना चाहिए चुपचाप उसको अपने ही घर में।"

उनके बाद ही एक दूसरे सज्जन ने कहा—"ठीक तो है। बेटी जनमाने के पहले ही अच्छी तरह सोच लेना चाहिए कि उसके लिए कुछ ख़र्च करने की भी सामर्थ्य है या नहीं।"

अब इधर के लोग भी अपने बढ़ते हुए क्रोध को क़ाबू में नहीं रख सके। क्रोध में काँपते हुए बड़के भैया ने बाबू जी से डपट कर कहा—आप भी किन बेहूदों के आगे हाथ जोड़े खड़े हैं! जाइए यहाँ से। जितना ही हम दबे जाते हैं उतनी ही इनकी शेख़ी और भी बढ़ती जा रही है। ले जाइए दहेज की ये सारी चीज़ें घर; इन्हें देने की कोई ज़रूरत नहीं। अब इनकी गाली का जवाब गाली से और मार का जवाब मार से दिया जायगा।

"इतनी जल्दी घबरा मत जाओ बेटा!" कह कर बाबू जी उन्हें शान्तिपूर्वक कुछ समझाना ही चाहते थे कि इतने में मेरे ससुर जी ने बड़के भैया की पीठ पर पड़ाक

से एक जूता पटक कर, राक्षसी-स्वर में चिल्लाते हुए, चुनौती दे दी—"मार तो मार ही सही। देखें, किन सालों में इतनी हिम्मत है !"

बड़के भैया ने भी उसके जवाब में जूता उठाया ही था कि बाबू जी उनसे लिपट गए और अपनी क़सम देकर उनको वैसा करने से रोक लिया।

"निकाल लो तलवार, फरसा और काट दो खीरे की तरह इन बलिदान के बकरों को ! फूँक दो आग इस समूचे गाँव में ! मारो, काटो, लूटो, पीटो, चखा दो मज़ा इन पाजियों को बढ़-बढ़ कर बातें करने का" इन्हीं शब्दों का उच्चारण करते हुए मेरे ससुर जी और भी पागलों की तरह चिल्ला-चिल्ला कर ऊधम मचाने लगे।

बड़के भैया की पीठ पर जूता पड़ते ही मेरे गाँव के पचीसों नवजवान लाठी लेकर बारात पर टूट पड़े। ससुर जी झोंक में आकर तलवार-फरसा निकालने की बात तो कह गए, मगर सच पूछिए तो उनके दल में दो-चार लाठियों के सिवाय आत्म-रक्षा के लिए और कोई अस्त्र-शस्त्र था ही नहीं ! सब के सब बेचारे बुरी तरह पिट जाते, अगर छोटके भैया ने आगे बढ़ कर उन क्रोधोन्मत्त नवजवानों को रोक न लिया होता। "ख़बरदार ! मेरे सम्बन्धियों पर हाथ छोड़ने का किसी को अधिकार नहीं है। उनकी गालियाँ और मार सहने का काम हमारा है। आप लोग व्यर्थ ही रक्तपात करने पर उतारू न हों।" छोटके भैया के इन शब्दों ने उन्हें लाठी चलाने का मौक़ा ही नहीं दिया।

बाबू जी अब भी मेरे ससुर के पैरों पर लोट-लोट कर अपने आँसू से धरती गीली कर रहे थे। बड़के भैया खड़े-खड़े क्रोध से दाँत पीस रहे थे। छोटके भैया अपनी ओर के लोगों को इस दृढ़ता से रोके हुए थे मानों वे उनके अधिनायक हों। और मैं ? हाय ! मेरी बाबत कुछ न पूछिए। मैं अपने सिसकते हुए पतिदेव के साथ पालकी के भीतर से ही रो-रोकर यह सब देख रही थी ! मन ही मन यह भी सोच रही थी कि यदि मेरा जन्म ही न होता तो आज इस दारुण लीला की सृष्टि ही किस लिए होती !

भयङ्कर मार-पीट की नौबत तो किसी प्रकार टल गई। मगर मेरे ससुर जी को कोई शान्त न कर सका। वे दौड़ कर मेरी पालकी के पास आ गए और मेरे पतिदेव को उससे बाहर खींचते हुए बोले—तुम इसके भीतर बैठ कर औरतों की तरह क्यों रो रहे हो ? चलो मैं तुम्हारा दूसरा ब्याह करा दूँगा। इस बेईमान की बेटी अब मेरे घर नहीं जा सकती। इसने हमारा घोर अपमान किया है।

मैंने देखा, अपने बाप की इस अमानुषिक निष्ठुरता का वे किसी तरह भी प्रतिरोध नहीं कर सके। बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोने लगे। मुझे ऐसा मालूम हुआ मानों मेरा सर्वस्व ही छिन गया। मैं भी रोती हुई पालकी से बाहर निकल आई और पछाड़ खाकर वहीं गिर पड़ी। मरी नहीं; अगर उसी समय मर गई होती तो आज यह दिन न देखना पड़ता। जब मेरी आँखें खुलीं तो मैंने अपने को छोटके भैया के कमरे में बिस्तर पर लेटी हुई पाया। वे धीरे-धीरे मेरे ऊपर पङ्खा झल रहे थे।

प्यार से माथे पर हाथ फेरते हुए उन्होंने सजल स्वर में पूछा—अब तबीयत कैसी है नीरो ?

मैं क्या जवाब देती ? धैर्य का बाँध टूट गया था, मैं एक बार ही फूट कर रो पड़ी। वे भी उसी तरह रो-रोकर मुझे चुप कराने लगे।

२

सुना, घर जाते ही मेरे पतिदेव भी बीमार होकर चारपाई पर गिर पड़े। पूरे महीने भर एक दिन छोड़ कर एक दिन, उन्हें ज्वर आता रहा। उसके बाद वे चारपाई से उठ तो ज़रूर गए, लेकिन केवल नाम-मात्र के लिए। अच्छे होकर भी वे दिन-रात किसी अगाध चिन्ता में डूबे रहते थे। हँसने-बोलने की तो बात ही क्या, लोगों का कहना है, खाने-पीने की ओर से भी बुरी तरह उदासीन रहने लगे। फल यह हुआ कि उनके खोए हुए स्वास्थ्य के लौट आने की बात तो दूर रही, जो कुछ बच रहा था उसमें भी धीरे-धीरे घुन लगने लगा। अब वे सप्ताह में चार दिन अच्छे रहते तो तीन दिन बीमार। कॉलेज का पढ़ना तो छुड़ा दिया गया, लेकिन घर पर पुस्तकों के सिवाय और उनका कोई साथी ही नहीं था। उस हालत में भी कभी-कभी रात-रात भर वे किताब लेकर बैठे ही रह जाते थे। लोग लाख समझाते, मगर उसका कोई असर नहीं होता। परिणाम वही हुआ जो ऐसी हालत में हो सकता है—उन्हें क्षय की बीमारी ने अपना शिकार

बना लिया। वे कभी अच्छे और कभी बीमार रह कर बड़े कष्ट के साथ जीवन बिताने लगे।

मुझे समय-समय पर बराबर उनके सम्बन्ध में सारी बातें मालूम होती रहती थीं। मगर उनके पिता जी ने भूल कर भी कभी उनकी बीमारी का हाल मेरे पिता जी को नहीं लिखा। अब भी उनकी आँखें न खुलीं और न उनके हृदय का वह अमङ्गल अनुष्ठान ही पूरा हुआ, जिसका आरम्भ करके उन्होंने हम दोनों प्राणियों के असहाय जीवन को एक भयानक अन्धकार से ढँक दिया था। मैं जैसे-जैसे उनके बारे में सुनती जाती वैसे ही वैसे मेरा कलेजा भी कटा जाता। मन की यही साध मुझे दिन-रात विकल बनाए रहती कि मैं किसी तरह इस बीमारी में उनके पास बैठ कर उन्हीं की चरण-सेवा में अपना समय बिताऊँ। मगर यह मेरे भाग्य में लिखा ही नहीं था। क्या करती? भीतर ही भीतर रो-रोकर मैं भी अपने जीवन की उन दारुण घड़ियों का अवसान करने लगी!

इसी तरह एक वर्ष बीत गया। अच्छी होने के बदले दिनोंदिन उनकी अवस्था और भी बिगड़ती ही गई। उस दिन जब मैंने सुना कि उनके मुँह से अब और भी अधिक मात्रा में ख़ून गिरने लगा है, उनकी देह में अब ज्वर बराबर बना ही रहता है, वे बहुत ही बेचैन रहने लगे हैं, तब तो मेरे धीरज का बाँध ही टूट गया! हृदय इस तरह हिल उठा जैसे इसका सारा अवलम्ब ही टूट गया हो! मन में आया, अभी-अभी उड़ कर उनके पास पहुँच जाऊँ, मगर देखा तो पङ्ख का पता ही नहीं था! इच्छा हुई, दौड़ कर उनके चरणों पर जा गिरूँ, लेकिन रास्ता चारों ओर से बन्द था। मैं माथा ठोक कर बैठ गई!

बाबू जी मेरी दशा देख कर रो पड़े। मेरे पास आकर ममता-भरी वाणी में उन्होंने मुझसे कहा—तुम तो देख ही रही हो बेटी! मैं हाथ के फोड़े से कितना विकल हूँ। पीड़ा के मारे मरा जा रहा हूँ, मुझसे लिखते नहीं बनता। चलो, तुम्हीं मेरी ओर से एक पत्र लिख दो।

मैं समझ गई, उन्हें किसके पास पत्र भेजना था। बाबू जी सचमुच फोड़े की भयङ्करता के मारे लिख नहीं सकते थे। वह उनके दाएँ ही हाथ पर हो गया था और बहुत ही कड़ी यातना दे रहा था। मेरा हृदय भर आया। मैंने बड़ी कठिनता से, अपनी उछलती हुई करुण भावनाओं को दबा कर, उनसे कहा—मैं न लिख सकूँगी बाबू जी, बड़के भैया से कहिए।

उनकी आँखों में आँसू भर आए। बहुत ही दुखित होकर उन्होंने कहा—प्रताप से वहाँ पत्र लिखने के लिए कहते हुए मुझे भय मालूम होता है, इसे क्या तुम नहीं जानती हो नीरो? उसका हठ क्या तुमने देखा नहीं है?

मैंने कहा—आप न कहिए, मैं किसी और से कहला दूँगी।

बाबू जी ने कहा—मेरी बात रख लो, वह देवता का कहा भी नहीं सुनेगा। इस मामले में उसका स्वभाव मैं अच्छी तरह जानता हूँ—सुनते ही झल्ला उठेगा। झूठ-मूठ उसे छेड़ने की ज़रूरत नहीं।

"तो फिर किसी और से लिखवा लीजिए" मैंने कहा—"गाँव में और भी तो लिखे-पढ़े लोग हैं।"

"उस पत्र में मुझे जो कुछ लिखाना है बेटी!" बाबू जी ने बड़ी गम्भीरता से मुझे समझाया—"वह बाहर विदित हो जायगा तो लोग मेरा उपहास करेंगे। मैं तो इसकी परवाह नहीं करता, लेकिन प्रताप से यह नहीं सहा जायगा। वह क्रोध में आकर गाँव भर का बखेड़ा मोल ले लेगा। जानता हूँ, मुझे तुमसे भी यह काम नहीं करवाना चाहिए; मगर इस समय मैं और कर ही क्या सकता हूँ? दुख के इस अथाह पारावार में डूबते हुए अपने बूढ़े बाप को इतना-सा भी सहारा न दे सकोगी बेटी?"

मैं इसके आगे और कुछ न कह सकी। चुपचाप उठी और उनके कमरे में जाकर काग़ज़-क़लम लेकर बैठ गई।

बाबू जी ने पत्र लिखवाना शुरू किया। वह मेरे ससुर जी के नाम था। मेरे हृदय में बड़े ज़ोर से धड़कन शुरू हो गई! उन्होंने कहा "इसके आगे लिखो, बेटी!"

मेरी लेखनी काँपने लगी। वे लिखाने लगे—"आपका अपराधी तो मैं हूँ। मुझे चाहे जो दण्ड दीजिए। कहिए, इसी समय आकर आपके चरणों पर गिर पड़ूँ और आप मेरी नङ्गी पीठ पर चाहे जितने जूते लगा लें। मगर मेरी बेटी का क्या क़ुसूर है? इसे तो कम से कम एक बार अपने पति का मुँह निहार लेने दीजिए।"

बाबू जी रो-रोकर एक ही साँस में ये सारी बातें

कह गए। जैसे वे पत्र नहीं लिखा रहे थे—साक्षात् किसी से बोल ही रहे थे। मेरे हाथ से लेखनी गिर पड़ी और मैं बाबू जी के गले से लिपट कर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी।

इसी समय किसी ने उनके गले से मेरा हाथ छुड़ाते हुए कहा—इस तरह रो-रोकर तुम भी मत मरो नीरो! धीरज बाँधो।

ये मेरे छोटके भैया थे। मुझे बरबस रोना बन्द करना पड़ा, नहीं तो वे और भी बुरी तरह रोने लगते।

उन्हें एकाएक कमरे में देख कर बाबू जी को भी ढाढ़स बँध आया। आँसू पोंछते हुए वे बोले—तुम कैसे आगए प्रमोद? कॉलेज में छुट्टी है?

उन्होंने बाबू जी के पैर छूते हुए कहा—छुट्टी लेकर आया हूँ; बहनोई जी को देखने जाना है।

बाबू जी ने सन्तोष की साँस खींच कर कहा—बड़ा अच्छा किया बेटा! मैं बड़ी उलझन में पड़ गया था। तुमने उसे दूर कर दी।

"मगर मैं नीरो को भी अपने साथ लिवा जाऊँगा"—छोटके भैया ने बिना किसी प्रकार के सङ्कोच का भाव दिखाते हुए कहा।

बाबू जी थोड़ी देर तक चुप रहे। फिर उन्होंने कहा—नहीं, यह ठीक न होगा बेटा! अपमान की इतनी कड़वी घूँट तुम लोग नहीं पी सकोगे। अच्छा हो, पहले तुम अकेले ही हो आओ। उन लोगों की मार-गाली सह कर भी उन्हें इस बात के लिए राज़ी कर आओ कि घड़ी भर के लिए भी वे तुम्हारी बहिन को अपने घर बुला लें।

"अच्छी बात है"—कह कर छोटके भैया उसी समय कमरे से निकल गए। मैं इतना भी नहीं कह सकी कि कम से कम वे मुँह-हाथ धोकर कुछ जलपान तो कर लें!

३

उसके दूसरे ही दिन छोटके भैया वहाँ से लौट आए। सीधे बाबू जी के पास पहुँच गए। उनका चेहरा देख कर हिम्मत न हुई कि उनसे कुछ पूछूँ। कमरे के बाहर ही दीवार की ओट में चुपचाप खड़ी होकर उनकी बातें सुनने लगी। सुनने में जितनी पीड़ा हुई थी, सुनाने में इस समय उससे भी बढ़ कर पीड़ा हो रही है। उस समय हृदय पर केवल एक ही चोट पड़ रही थी, आज उसी चोट के सिलसिले में न जानें कितनी चोटें सहनी पड़ रही हैं।

वह मेरा ससुर नहीं, पिछले जनम का कोई प्रतिहिंसक शत्रु था। वह मेरी सास नहीं, मेरे जन्म-जन्मान्तर की बैरिन थी। वह मेरी ननद नहीं, कभी की मुझसे चोट खाई हुई काली नागिन थी। इन सब लोगों ने एक साथ ही मुझसे बदला चुकाया।

छोटके भैया को देखते ही सब के सब कुत्तों की तरह उन पर टूट पड़े। सास और ननद ने गालियों से सत्कार किया और मेरे ससुर देवता उन्हें पीट भी देते, अगर छोटके भैया अपनी असाधारण सहनशीलता और पुरुषार्थ-भरी गम्भीरता से काम न लेते। वे इन उत्पातों से बिलकुल विचलित हुए ही नहीं। अन्त तक नम्रता, शान्ति और सद्भाव का साथ उन्होंने न छोड़ा। और यह सब उन्होंने सिर्फ़ मेरे लिए किया; नहीं तो उनके जैसा हृष्ट-पुष्ट नवजवान दस आदमियों को अकेले चबा सकता था।

उन्होंने बार-बार पैरों पड़ कर विनती की कि एक बार मेरी बहिन को इनका मुँह देखने दीजिए।

ससुर ने कहा—आज तक कहाँ थे?

सास ने कहा—इस कुदिन में उसे यहाँ बुला कर मैं अपना अमङ्गल करूँगी क्या? अभी गौना का दिन बहुत दूर है।

ननद ने कहा—किस कुघड़ी में मेरे भाई ने उस डाइन के माँग में सेन्दुर डाला कि उसी दिन से अभी तक खाट पर पड़े हुए हैं! उसे यहाँ बुला कर मैं अपने घर को मसान बनाऊँ तब न?

मेरे भैया सब तरह से निरुपाय होकर अपने बहनोई के कमरे में गए। उन्हें देखते ही वे बच्चों की तरह फूट-फूट कर रो पड़े। रोते ही रोते उन्होंने कहा—इन लोगों को आप व्यर्थ ही क्यों समझा रहे हैं? इनके आगे झुकना नम्रता का अपमान करना है।

छोटके भैया ने रोकर जवाब दिया—मुझे एक ही बहिन है, उसमें मेरे प्राण बसते हैं, उसी के लिए मुझे सब कुछ करना पड़ेगा।

"नहीं, अब आप कुछ मत कीजिए" उन्होंने बड़ी कातरता से कहा—"ये लोग आदमी नहीं, राक्षस हैं। इन लोगों को मेरे ऊपर तो दया ही नहीं आई, पराए की बेटी का दुख देख कर ये कब पसीजने वाले हैं! मैंने स्वयं इन लोगों से कई बार रो-रोकर विनती की; लज्जा-

सङ्कोच छोड़ कर इनके आगे अपना हृदय खोल कर रख दिया, फिर भी इनकी पत्थर की छाती न पसीजी। इसलिए आप अब इनसे अधिक अपमानित न होइए। जाइए, अपनी बहिन को सान्त्वना दीजिए। बड़ी साध थी कि उसे गले लगा कर एक बार रो लेता। पर सब तरह से निरुपाय हो गया हूँ। कह नहीं सकता, उस बेचारी के भाग्य में क्या बदा है!"

इसी समय मेरे ससुर जी कमरे में घुस आए और बोले—आप लोग जो सलाह कर रहे हैं, वह मैंने भी सुन लिया है। अब अगर आप चुपचाप यहाँ से चल नहीं देते तो मैं कहे देता हूँ, ठीक नहीं होगा।

"अब तो मैं मर ही रहा हूँ बाबू जी!" मेरे पतिदेव ने कहा—"क्या इस समय भी मुझे थोड़ी देर तक सुखी नहीं रहने दीजिएगा?"

"वही तो मैं कह रहा था"—ससुर जी ने सिर हिला कर कहा—"चल गया न ससुराल का जादू! मगर याद रखना, मेरे जीते जी यह नहीं होने पाएगा।"

"सो तो मैं ख़ूब अच्छी तरह से जान गया हूँ" उन्होंने कहा—"मगर पूछता हूँ आपके इस अत्याचार का कहीं अन्त भी होगा या नहीं? मैं ऐसी कौन सी बातें कर रहा था, जिनको बन्द करने के लिए आप यहाँ लाठी लेकर आ धमके? कृपा कर थोड़ी देर के लिए मेरे कमरे से हट जाइए, नहीं तो दीवार में सिर पटक कर मैं इसी समय आत्म-हत्या कर लूँगा।"

वे जोश में आकर उठ बैठे। ससुर साहब चुपचाप कमरे से बाहर हो गए।

छोटके भैया ने उन्हें पकड़ कर लिटा दिया और पूछा—तो मैं उसे थोड़ी देर के लिए आपके पास ले आऊँ?

"नहीं"; उन्होंने हाथ जोड़ कर कहा—"ईश्वर के लिए ऐसी ग़लती न कीजिए। यह सच है कि मैं उसे देखे बिना सुख से नहीं मर सकता, फिर भी मरते समय मैं अपनी आँखों के सामने उसे अपमानित नहीं होने दूँगा।"

"मैं उसके अपमान करने वालों की लाश गिरा दूँगा"—भैया ने जोश में आकर कहा।

"इसकी ज़रूरत नहीं प्रबोध भाई!" उन्होंने बड़ी कातरता से कहा—"आख़िर अब वह यहाँ आकर ही क्या करेगी? जाइए, उसे ढाढ़स बँधाइए। उसकी रक्षा कीजिए और मुझ पापी की ओर से उससे क्षमा माँग लीजिए। लाइए, एक बार उसके नाते आप ही का हाथ चूम लूँ।"

"नहीं, आप किसी बात की चिन्ता न करें। मैं उसे एक बार आपके चरणों के पास देखना चाहता हूँ"—कह कर छोटके भैया आतुरता से उठ खड़े हुए।

उन्होंने भर्राए हुए स्वर में उत्तर दिया—जाइए, मगर जल्दी आइएगा।

बाबू जी को मेरे दुर्भाग्य की यह करुण गाथा छोटके भैया ठीक इसी तरह रो-रोकर सुना रहे थे, जिस तरह इस समय मैं आपको सुना रही हूँ। बाबू जी की आँखों से भी आँसू का सोता बह रहा था! और मैं एक अवलम्बहीन लतिका की तरह दीवार से टिकी हुई थी। मेरी आँखों का आँसू उस समय जैसे सूख-सा गया था।

वहाँ की सारी बातें सुना कर अन्त में छोटके भैया ने पूछा—तो मैं अब नीरो को वहाँ ले जाने की तैयारी करूँ न?

"हाँ" कह कर बाबू जी ने स्वीकृति दे दी। मेरा हृदय इस वेग से धड़कने लगा कि मालूम होता था अब फट ही जायगा। मगर यहाँ तो करम में लिखा हुआ था जन्म-जन्मान्तर के करोड़ों पापों का फल भोगना। वह फट कैसे जाता?

ख़ैर, थोड़ी ही देर के भीतर मेरे चलने की तैयारी होगई। मैं हहरते हुए हृदय और काँपती हुई आशा से पालकी के भीतर जा बैठी।

आँगन से पालकी बाहर निकली ही थी कि इधर से रोते और सिर पीटते हुए, गिरते और पछड़ते हुए मेरे बड़के भैया को कोई सम्हाले आ रहा था।

छोटके भैया ने आगे बढ़कर पूछा—क्या हुआ?

बड़के भैया ने सिर धुनते हुए जवाब दिया—होगा क्या मेरे भाई! हम लोग लुट गए! हमारी सोने की दुनिया जल गई! देखो, यही आदमी वहाँ से अभी यह चिट्ठी लेकर आ रहा है। तुम्हारे आने के बाद ही बहनोई जी चल बसे! हाय, हमारी दुलारी बहिन के जीवन को एकदम सूना करके वे न जाने कहाँ भाग गए!

मेरे आगे एकाएक अँधेरा छा गया। छोटके भैया ने जी कड़ा करके पूछा—कहीं उस राक्षस ने धोखा देने के लिए तो पत्र नहीं भेजा है?

पत्र-वाहक की आँखों में आँसू भर आए। उसने विश्वास दिलाया—मैं उनके हाथ का पत्र लेकर नहीं आया हूँ बाबू जी ! वे सचमुच राक्षस हैं। मुरली बाबू आपके भाई साहब के सच्चे दोस्त हैं। मैं उन्हीं की चिट्ठी लेकर आया हूँ। उधर उनकी लाश गाँव से बाहर निकली है, इधर मैं चिट्ठी लेकर यहाँ आया हूँ।

अब सन्देह के लिए कोई स्थान नहीं था। सब लोग सिर धुन-धुन कर रोने-पीटने लगे। मैं रो नहीं सकी, उसके पहले ही बेहोश होकर गिर पड़ी ! पता नहीं, उस बेहोशी को भी मुझसे कौन सा बैर था, जो थोड़ी ही देर बाद उस रुदन भरे संसार में मुझे तड़पती हुई छोड़-कर, वह भाग गई। वह भी तो मुझ हतभागिनी के साथ कुछ दया का बर्ताव करती ! पर दुख में कौन किसका साथ देता है ? फिर उसी को क्या पड़ी थी ?

४

मेरी माँ तो विवाह के पहले ही मर गई थीं। दुर्भाग्य के दिन आते ही बाबू जी भी चल बसे। मेरे वैधव्य-शोक की वह निदारुण यन्त्रणा उनसे सही न गई। मरते समय बड़के भैया से वे कह गए—देखो बेटा ! नीरो को अब तुम्हीं दोनों भाइयों का भरोसा है। इसे किसी तरह का कष्ट न पहुँचने पावे।

छोटके भैया का ब्याह अभी तक नहीं हुआ था। वे इसके लिए राज़ी ही नहीं होते थे। कहते थे, कॉलेज की पढ़ाई समाप्त हो जाय, फिर देखा जायगा। घर भी बहुत ही कम आते थे। लेकिन बाबू जी के मर जाने पर वे क़रीब-क़रीब हर एक रविवार को घर आने लगे। केवल इसलिए कि कम से कम सात-आठ दिनों के बाद वे मुझे एक बार देख सकें कि मैं सुख से रहती हूँ या नहीं। भावज का स्वभाव अच्छा नहीं था। बड़के भैया स्वयं उनसे बहुत डरा करते थे। छोटके भैया को यह अच्छी तरह से मालूम था। इसी लिए मेरे सुख-दुख की ओर वे अपनी ख़ास निगरानी रखते थे।

जब तक मेरे बाबू जी रहे, मुझे भावज की स्वभाव-कटुता का कोई व्यावहारिक अनुभव नहीं था। इसकी नौबत ही नहीं आ पाती थी। उनके मरते ही मेरे प्राण सङ्कट में पड़ गए। रह-रह कर भावज के दुष्ट प्रहारों की वृद्धि होने लगी और मैं बड़ी धीरता के साथ उन्हें सहने लगी। छोटके भैया जब आते, मुझे यही उपदेश दे जाते—देखना बहिन, भूल कर भी अपनी ओर से कोई ग़लती न होने देना। दो बातें सह लेने की आदत न छोड़ोगी तो जीवन में हर तरह का कष्ट झेल कर भी तुम सुख से रह सकोगी।

उनकी इन बातों का मर्म मैं समझती थी और इसी-लिए भौजी के आगे मुझे गरदन झुका कर ही रहना पड़ता था। मेरी इस नम्रता से उन्होंने बहुत ही अनु-चित लाभ उठाना शुरू किया। मेरे झुके हुए कमज़ोर कन्धों पर उन्होंने धीरे-धीरे घर के सारे काम-काज का भार लाद दिया। मज़दूरिन की तरह मैं दिन-रात कठिन परिश्रम करने लगी। रसोई बनाना, आँगन-घर साफ़ करना, कपड़े धोना, धान कूटना, चक्की पीसना, बच्चों का मल-मूत्र फेंकना, कोई भी ऐसा काम न था जो मैं न करती होऊँ। फिर भी मीठी बोली सुनने को तरसना पड़ता था। किसी तरह से भौजी के मिज़ाज मिलते ही नहीं थे। बात-बात पर झुँझला उठतीं, गालियाँ बकने लगतीं, और ग़ुस्से में आकर बच्चों को पीटने लगती थीं।

एक दिन सौदा ख़रीदने गई। दूकान में बड़ी भीड़ थी। घर लौटने में देर होगई। फिर क्या था ? जैसे ही आँगन में पैर रक्खा, भौजी भूखी शेरनी की तरह मुझ पर टूट पड़ीं। बोलीं—दूकान पर कौन यार-भतार बैठा रहता है, जिसके साथ बातें करने में इतनी बेसुध हो जाती हो कि इतना भी ख़्याल नहीं रहता कि घर में भी कोई काम-धन्धा है या नहीं ?

सब कुछ होता था, मगर यार-भतार की बात सुनने की नौबत आज तक नहीं आई थी। मेरी सारी सहन-शीलता जाती रही। धरती पर सामान की गठरी पटकते हुए मैंने कड़क कर कहा—ज़रा, सम्हल कर बातें करना भी सीखो भौजी ! जितना ही सहती जाती हूँ, उतना ही तुम बढ़ती जाती हो। सब कुछ सह लूँगी, मगर इस तरह की गालियाँ बकोगी तो अच्छा न होगा।

"और उलटे मेरे ही ऊपर ताव जमा रही हो ?" आग-बबूला होकर वे बोलीं—"घर का सारा काम-धन्धा ज्यों का त्यों पड़ा है और तुम अभी टहलती हुई आ रही हो ! तिस पर ऊपर से यह रोब !"

"काम-धन्धा पड़ा हुआ है तो तुम्हारे हाँथ-पाँव क्या गल गए हैं ? करतीं क्यों नहीं ? दिन-रात कमाते-कमाते मैं मर जाती हूँ, फिर भी इनका काम ही नहीं पूरा होता;

और आप, चौबीसो घण्टे सेज ही पर पड़ी रहती हैं।" इस बार मैंने भी अपने दिल का बुख़ार निकालते हुए उसी तरह बिगड़ कर जवाब दिया।

"सेज पर सोऊँगी नहीं ?" उन्होंने कहा—"मैंने किसी की सेज छीन ली है क्या? जिसने जैसा करम किया है उसको वैसा ही फल मिल रहा है! तुम्हें तो जनम भर का रोना बदा है, सेज पर सोओगी कैसे ?"

"रोना बदा है तो रोने के लिए दुनियाँ में और भी जगहें मिल जायँगी" मैंने जवाब दिया—"तुम्हारे तलवे की धूल मुझसे अब न झाड़ी जायगी। देख लिया, तुममें कितनी आदमीयत है।"

"मेरी आदमीयत देख कर तुम क्या कर लोगी ?" उन्होंने कहा—"जाओ न, जहाँ जाना चाहो। कोई रोकता है ? देखें, किस चूल्हे-भाड़ में जगह मिलती है। किसके इशारे पर आज इस तरह नाच रही हो ?"

"नाचना तो तुम जानती हो" मैंने जवाब दिया—"मुझे क्या मालूम कि नाचना किसे कहते हैं ? क्यों इस तरह मेरे घाव पर नमक छिड़कती जा रही हो ? कुछ भगवान् का भी डर है या नहीं ?"

"भगवान् का नाम लेकर मुझे इस तरह सरापोगी तो झाड़ू मार कर आँगन से बाहर निकाल दूँगी। डाइन कहीं की! मेरे ही टुकड़ों से पल रही है और मुझे ही सराप (शाप) भी दे रही है"—कह कर सचमुच उन्होंने झाड़ू उठा लिया। इसी समय बड़के भैया आकर वहाँ खड़े होगए। उन्हें देखते ही मैं फूट-फूट कर रोने लगी!

५

सारे दिन की थकावट से देह टूट रही थी। पीड़ा के मारे सिर फटा जा रहा था। रात भर करवटें बदलती रही। सवेरे आँखें झप गईं। मुझसे उठा नहीं गया। क़रीब आध पहर दिन चढ़ आया और मैं नींद में बेहोश पड़ी रही। यह एक ऐसा अपराध था, जिसके लिए भौजी किसी तरह क्षमा नहीं कर सकती थीं। भरी तो रहती ही थीं, उन्हें बरसते कितनी देर लगती ? लगीं ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला कर बकने—"पटरानी की तरह, जब देखो बिस्तरे पर पड़ी रहती हैं। इतना बड़ा दिन चढ़ आया और अभी तक इनके लिए रात ही है।"

जिस आवाज़ से घर की दीवारें तक हिल उठती थीं उससे नींद उचटते देर लगती ? मैं हड़बड़ा कर उठ बैठी। मेरा समूचा शरीर अब भी अलसाया हुआ, थका हुआ और सूना-सा मालूम हो रहा था। मैं कमरे से निकल कर बाहर बरामदे में दीवार से टिक कर बैठ गई।

भौजी ने कड़क कर कहा—"इस तरह टिक कर बैठ क्या गई ? चौका-बर्तन योंही जूठा पड़ा है। बच्चे भूख के मारे रो-रोकर मेरे प्राण खा रहे हैं। इन्हें भी मार कर ही दम लोगी क्या ?

ग़ुस्से के मारे मेरी देह जल उठी। मुँह से आपही आप निकल पड़ा—मैं इन्हें मारने-जिलाने वाली कौन होती हूँ ? बच्चे तुम्हारे हैं तो प्राण किसके खाए जायँगे ? भूख के मारे रो रहे हैं तो जाकर इन्हें खिलाती क्यों नहीं हो ?

"खिलाऊँ किस चीज़ में रख कर ? तुम्हारे मुँह में ? बर्तन तो सब के सब जूठे पड़े हुए हैं।"

"सोने के बने हुए हाथ हैं क्या ? उनमें से उठाकर दो-तीन कटोरे धो लेतीं तो वे घिस जाते ?"

"हाँ ? अब तुम इतनी बड़ी नवाबज़ादी बन गई हो कि मैं तुम्हारे जूठे बर्तन धो दिया करूँ ?"

"मैंने तो रात में खाया भी नहीं। तुम्हारे ही नवाबज़ादे, नवाबज़ादियों और नवाब साहब के जूठे किए हुए बर्तन हैं।"

न जानें बड़के भैया कहाँ से छिप कर ये बातें सुन रहे थे। मेरा इतना कहना था कि धड़ाक से वे मेरे आगे आ खड़े हुए और अपनी लाल-लाल आँखें तरेरते हुए मुझसे बोले—मैं देखता हूँ, तुम अब बहुत ही बढ़-चढ़ कर बातें करना सीख गई हो। मुझे नवाब साहब कहते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती ?

अब मैंने बहुत ही ढीठ होकर जवाब दिया—और मैं भी देखती हूँ, इन बातों के लिए आप सदैव मुझे ही डाट-फटकार कर रह जाते हैं। उससे कुछ नहीं कहते जो दिन-रात सत्तू बाँध कर मेरे पीछे पड़ी रहती है।

"तो क्या तुम्हारे ख़ातिर उसे मार कर फेंक दूँ ?" बड़के भैया ने दाँत पीसते कहा—"तुम्हारे पीछे वह क्या पड़ी रहती है ? काम-धन्धा न करोगी तो कहेगी नहीं ? इतनी देर तक दिन में सोती भी रहती हो और काम करने को कहा जाता है तो गालियाँ बकने लगती हो !"

"हाँ, हमेशा मैं सोती ही रहती हूँ; और घर का सारा काम आप से आप हो जाता है। पूछिए तो श्रीमती जी से कभी एक तिनका भी टसकाती हैं? रात-भर खाट पर तड़पती रही वह तो किसी ने नहीं देखा, सवेरे थोड़ी देर के लिए आँख लग गई तो चिल्ला-चिल्ला कर आसमान फाड़ा जा रहा है!"

भैया को इतना ग़ुस्सा चढ़ा जा रहा था कि उनके मुँह का रङ्ग एकदम तमतमा उठा, आँखों से आग की चिनगारियाँ बरसने लगीं। इस बार वे सहसा कुछ बोल नहीं सके। उनकी श्रीमती जी ने हाथ चमकाते हुए कहा—रात भर तड़पती रही तो देखने कौन जाता? बुला क्यों न लिया किसी को अपने यार-दोस्तों में से, जिनके बल पर साँडिन की तरह जिससे पाती हो उसीसे भिड़ जाती हो?

वह मेरे क्रोध की पराकाष्ठा थी। मैं भूल गई कि बड़के भैया सामने खड़े हैं। उसी तरह चिल्ला कर बोल उठी—तुम्हारा भी ख़सम मर जायगा तब मेरे बदले तुम्हीं ऐसा किया करना। साँडिन की तरह क्या, उससे भी बढ़ कर भिड़ना तो तुम अब भी बहुत अच्छा जानती हो, तब और जान जाओगी।

"क्यों री हरामज़ादी! मेरे सामने ही तेरी यह हिम्मत?" कह कर बड़के भैया ने उसी समय मेरी पीठ पर खड़ाऊँ बरसाना शुरू कर दिया। झोंटा पकड़ कर, मारते-मारते उन्होंने मुझे धरती पर बिछा दिया। मुझमें रोने की भी सामर्थ्य नहीं रह गई।

भरपेट पीट चुकने के बाद उन्होंने मुझे आज्ञा दी—जाओ, अब सीधे से अपना काम देखो। फिर कभी झगड़ते देखूँगा तो जीती नहीं छोड़ूँगा।

मैं दौड़ कर अपने कमरे में जा घुसी। भीतर से दरवाज़ा बन्द कर लिया और छाती पीट-पीट कर रोने लगी।

प्रायः सारा दिन मैं उसी तरह सिर पटक-पटक कर, छाती पीट-पीट कर, धरती पर लोट-लोट कर, रोती ही रही। बीच-बीच में मैं गालियाँ भी बकती जाती थी, अपने मारने वाले को अभिशाप भी देती जा रही थी।

मालूम होता है, बड़के भैया मुझे मार-पीट कर भूखे ही कचहरी चले गए थे। खाते क्या? खाने-पीने की कोई चीज़ भी तैयार रहती तब तो?

सन्ध्या-समय वहाँ से लौटे तो भूख के मारे झुँझलाए हुए तो थे ही, मुझे अभी तक उसी हालत में पड़ी देख कर उनका क्रोध और भी भभक उठा! पत्नी से पूछा—अभी तक उसका रोना ख़तम नहीं हो सका है?

"अभी कैसे ख़तम हो जायगा?" उन्होंने मुझे सुना कर जवाब दिया—"तभी से यही रट रही हैं कि 'जब तक मेरे मारने वाले की लाश न निकल जायगी, तब तक मैं इसी तरह बैठ कर रोती रहूँगी।' लाख मिन्नतें कीं, हर तरह से समझा-बुझा कर, माफ़ी माँग कर हार गई, मगर किवाड़ खोलती ही नहीं हैं।"

"नहीं खोलती है, तो अब मैं खोलता हूँ। देखें, पहले मेरी लाश निकलती है या इसकी" कह कर वे किवाड़ के पास पहुँच गए और उस पर धड़ाधड़ लात मारने लगे। थोड़ी ही देर में उसके दोनों पट दो तरफ़ को होगए। कमरे में घुसते ही उन्होंने मेरी पीठ पर धमाधम दो-तीन धौल जमा दिए और झोंटा पकड़ कर घसीटते हुए कहा—"अब भी उठती हो या नहीं?"

"नहीं उठूँगी; मुझे मार कर यहीं गाड़ दो!" मैंने कहा।

"यहाँ नहीं मरने पाओगी" कह कर घसीटते हुए, वे मुझे आँगन में ले आए और बोले—"मरना ही है तो मेरे घर से निकल जाओ, इस काम के लिए कोई दूसरी जगह ढूँढ़ो।"

इससे अधिक और कुछ नहीं हो सकता था। बात यहाँ तक बढ़ जायगी, इसकी आशा कभी नहीं की थी। मैं उठी और आँगन से बाहर निकल गई।

मुझे जाती हुई देख कर भौजी ने कहा—इसे पकड़ कर बाँध रक्खो, नहीं तो यह कुल का नाम डुबो देगी।

"जाने दो" बड़के भैया ने डपट कर जवाब दिया—"मैं इस राक्षसी से आजिज़ आ गया हूँ।"

'कहाँ जाऊँ—क्या करूँ' के फेर में पड़कर मैं गाँव के बाहर एक गाछ के नीचे बैठ गई। जीवन से घोर अरुचि हो गई थी। इसी समय कानों में रेलगाड़ी की आवाज़ आई। मन में आगया, क्यों न इसी के नीचे पड़ कर एक ही क्षण के भीतर अपनी सारी यातनाओं का अन्त कर दूँ! दुख में मृत्यु की कल्पना बड़ी मीठी लगती है। मैं उसके स्वाद पर निछावर होकर उठ खड़ी हुई और तेज़ी के साथ स्टेशन की ओर बढ़ी। मुश्किल से अभी

दस गज़ का रास्ता तय कर सकी होऊँगी कि सामने से कोई आता हुआ दीख पड़ा। पास पहुँचते ही उसने पूछा—यह क्या, नीरो!

इतना सुनते ही मैं उसके चरणों पर गिर पड़ी। वह मेरे ही छोटके भैया थे।

६

मैं छोटके भैया के साथ ही शहर में रहने लगी। किराए का छोटा सा पक्का मकान था। बड़ा ही सुन्दर और स्वच्छ! जगह खुली हुई और स्वास्थ्य-प्रद थी। आस-पास में भले-भले लोगों के बँगले और बग़ीचे थे। पास ही गङ्गा जी की पवित्र धारा बह रही थी।

छोटके भैया ने घर से एकदम अपने को अलग कर लिया। पहले घर ही से उनके पढ़ने का ख़र्च आया करता था, उन्होंने उसे भी लेना बन्द कर दिया। कहा—जिस घर में मेरी बहिन का ऐसा अपमान हुआ उसकी कोई भी चीज़ मेरे छूने लायक़ नहीं रह गई।

बड़के भैया कई बार उनके पास आए। मेरे पैरों पर गिर-गिर कर माफ़ी माँगी, हर तरह से उनकी मिन्नतें कीं, लेकिन वे टस से मस नहीं हुए। बड़के भैया की उस अवस्था पर, उस पश्चात्ताप भरी दीनता पर, उनके उस आत्मसमर्पण की निर्मल कातरता पर, मुझे दया आ गई; परन्तु उन्होंने बिना किसी प्रकार की सहृदयता दिखाते हुए, कड़क कर कह दिया—मुझे आपकी सूरत से घृणा हो गई है। जो अपने ही आश्रय में रहने वाली एक अभागिनी अबला पर हाथ छोड़ सकता है, वह सब पापियों से बढ़कर है। कोई भी ऐसा नारकीय कृत्य नहीं, जिसे करते हुए उसकी आत्मा को क्लेश हो। कृपा कर यहाँ से जाइए अपनी श्रीमती जी के पास; मुझे उस पाप की छाया में घसीट कर ले जाने का विफल प्रयास न कीजिए। मैं अपने हिस्से की सारी धन-सम्पत्ति आप ही के लिए छोड़ देता हूँ; मुझे कुछ नहीं चाहिए। जाइए, कृपा कीजिए। बड़के भैया फिर कभी उनके पास नहीं आए।

कुछ दिनों तक तो बचे-खुचे रुपयों से काम चलता रहा, उसके बाद ही कठिनाई आ खड़ी हुई। लाचार होकर उन्हें कॉलेज की पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी। उन्होंने दो-तीन ट्यूशन कर लिए। पत्र-पत्रिकाओं में भी बराबर उनके लेख निकला करते थे। उधर से भी कुछ रुपए आने लगे। सब मिला कर वे महीने में सौ रुपए से अधिक ही कमा लेते थे। ख़र्च-वर्च का सारा हिसाब मेरे ही ज़िम्मे रहता था। मैं बहुत सावधानी से ख़र्च करने लगी। कुछ महीनों में हम लोगों का अर्थ-कष्ट बिलकुल जाता रहा। कुछ रुपए भी इकट्ठे हो गए।

छोटके भैया दिन-रात लिखने-पढ़ने में लगे रहते थे। कठिन परिश्रम और उद्योग उनकी जीवन-सृष्टि के प्रधान उपकरण थे। जब अपना काम कर चुकते तब वे मुझे पढ़ाया करते थे। धीरे-धीरे मेरे अध्ययन की रुचि और गति बढ़ती गई। अङ्गरेज़ी और हिन्दी-साहित्य का मर्म समझ सकने लायक़ उन्होंने मुझे बना दिया। मेरा जीवन ही दूसरा हो गया।

दिन के तीसरे पहर का समय था। भैया ट्यूशन पर गए हुए थे। उनके लौटने का वक़्त हो रहा था। मैं बिस्तरे पर लेटी हुई प्रेमचन्द जी की 'रङ्गभूमि' पढ़ रही थी। उसकी 'सोफ़िया' का प्रणय-चित्र मेरी सजल आँखों के सामने फिर रहा था। इसी समय किसी ने बाहर से पुकारा—'प्रमोद!'

आवाज़ सुनते ही मैंने किताब रख दी और उठ कर झरोखे से देखा, सड़क पर वही युवक खड़ा था जो छोटके भैया के पास प्रायः आया करता था। यही एक आदमी उनके मित्रों में था, जिसे वे बहुत प्यार करते थे।

उसे मैंने कई बार देखा था, भैया के साथ जलपान कराया था, मगर बातचीत कभी नहीं की थी। आज वह मुझे असाधारण रूप से सुन्दर मालूम हुआ। उसकी उस सौन्दर्य-सुषमा ने मेरे हृदय में एक नई आग लगा दी। मैं मुग्ध होकर उसे उसी तरह खड़ी-खड़ी देखती ही रह गई। मालूम होता था, दृष्टि-पथ पर एक देवदूत ही खड़ा है।

उसने फिर पुकारा—प्रमोद!

अब मेरा ध्यान टूटा। मैंने दौड़ कर नीचे जा किवाड़ खोल दिया और कहा—वे अभी लौट कर नहीं आए हैं।

उसने एक बार मेरी ओर देखा और लाज के मारे आँखें झुका लीं।

मैंने कहा—आते ही होंगे; आइए न, तब तक उनके कमरे में चल कर बैठिए।

बड़े सङ्कोच से उसने उत्तर दिया—अभी जाता हूँ; फिर शाम को आऊँगा।

मैं उसी जगह ज्यों की त्यों खड़ी रही, जब तक वह आँखों की ओट न हो गया।

शाम को मैंने बड़े हुलास के साथ, बड़े ही प्रेम से, जलपान के लिए कई तरह की बहुत ही अच्छी-अच्छी चीज़ें तैयार कीं। उसके बाद मैं कभी दरवाज़े पर जाती, कभी अपने कमरे की उस खिड़की के पास। प्रतीक्षा करते-करते आँखें थक गईं। लाचार होकर, अकेले छोटके भैया को ही जलपान कराना पड़ा। उस समय उस युवक की अनुपस्थिति ने मेरे हृदय को पागल बना दिया।

मुझसे जलपान की एक भी चीज़ नहीं खाई गई। भैया की थाली में बची हुई कोई चीज़ मैं कभी नहीं फेंकती थी, उस दिन फेंक दी। उसी समय से मेरा किसी काम में मन न लगता। खिड़की के पास खड़ी रहना ही अच्छा मालूम होता था। इसी उद्विग्नता ने मेरी रात की रसोई बिगाड़ दी। दाल में नमक देना भूल गई थी, तरकारी में हल्दी अधिक गिर पड़ी। चावलों के नीचे का हिस्सा कुछ जल गया। रोटियाँ भी जैसी ही तैसी हो पाईं।

खाते समय भैया ने हँस कर कहा—आज दाल बहुत ही मीठी लगती है नीरो! नमक के बदले चीनी तो नहीं छोड़ दी?

मैंने घबड़ाकर कहा—"ओहो! नमक देना ही भूल गई भैया!" और उनकी थाली में नमक के बदले चुटकी भर मिर्च की बुकनी रख दी!

वे क़हक़हा मारकर हँसते हुए बोले—तो क्या अब दाल को मीठी से तीती बना दूँ?

मुझे अब होश हुआ। लाज के मारे मर-सी गई। मगर अपनी झेंप मिटाने के लिए तुरन्त बोल उठी—"अब अकेली रसोई बनाने में मन नहीं लगता भैया! मुझे एक सखी ला दीजिए—अब आप अपना विवाह कर लीजिए।"

भैया चकित होकर मेरी ओर देखने लगे। मानों इस परिहास के भीतर कोई ऐसा सत्य छिपा हुआ था जिसे वे आज तक नहीं परख सके थे।

मैंने बिना कुछ समझे-बूझे ही फिर कह दिया—बस, इतनी सी मेरी विनती मान लीजिए भैया! मुझे एक अच्छी सी भौजी ला दीजिए।

भैया ने चुपचाप सिर झुका लिया। उनकी आँखों से टपाटप आँसू की बूँदें टपकने लगीं।

७

उसी दिन से भैया बहुत उदास रहने लगे। न जाने बैठे-बैठे क्या सोचा करते थे? मगर मेरे सामने आते ही वे अपनी उदासी और चिन्ता को प्रसन्नता के परदे में छिपा देते थे।

धीरे-धीरे इसी तरह दिन बीते जा रहे थे। अब उस युवक के साथ मेरी कुछ-कुछ घनिष्ठता-सी हो चली थी। पहले वह उस समय मेरे घर में पाँव भी नहीं रखता था, जब भैया नहीं रहते, अब अवसर ताक कर उसी समय आता और बड़ी रुचि के साथ मुझसे बातें करता था।

एक दिन वह न जाने किस काम से दोपहर का खाना खाने के बाद ही भैया के पास चला आया। आषाढ़ की धूप थी। पसीने से लथपथ हो गया था। भैया ने उसे देखते ही कहा—"तुम बड़े ही हठी हो गए हो, इतना समझाता हूँ कि धूप में बिना छाता के मत चला करो, पैर में जूते पहना करो, मगर तुम मानते नहीं हो। बीमार पड़ जाओगे तो सारी तपस्या हवा हो जायगी।"

"तब क्या होगा?"—उसने हँस कर पूछा

"तब" भैया ने मुस्कराते हुए उसकी ठुड्डी हिला कर गाल पर हलकी-हलकी दो-तीन चपतें जड़ते हुए कहा—"तब इसी तरह मेरी चपतें खाया करोगे, और क्या होगा? नीरो! पङ्खा लेती आओ। देखो तो ज़रा इसकी शकल! मालूम होता है किसी के खेत में हल चला कर आ रहा हो।"

मैं पङ्खा झल रही थी। वे दोनों पढ़ रहे थे। अमर बाबू पढ़ते ही पढ़ते सो गए।

भैया ने पढ़ना बन्द करते हुए कहा—अब यह दो-तीन घण्टे के पहले जागेगा थोड़े ही? जाता हूँ तब तक ट्यूशन पर से हो आऊँ। यह उठे तो इसे जलपान-उलपान करा देना। शायद मुझे लौटने में दो-चार मिनट की देर हो जाय।

आकाश में बादल लटक आए! आस-पास की पुष्प-वाटिकाओं से सौरभ बटोर कर, मदमत्त कर देने वाली ठण्ढी-ठण्ढी हवा मेरे कमरे में उन्माद बिखेरने लगी। मैं सिर से पैर तक काँप उठी। वहाँ से भागी

और फिर उसी जगह पहुँच गई, जहाँ अमर बाबू सोए हुए थे। मैं चुपचाप उनके पास जाकर बैठ गई। आँखें उनके मुखड़े पर बिछ गईं। मेरी सुध-बुध न जाने कहाँ खो गई!

बहुत देर के बाद उन्होंने अपनी आँखें खोलीं। मेरी समाधि टूट गई। फ़ौरन बोल उठी—जलपान ले आऊँ?

"मुँह-हाथ धोने के पहले ही?"—उन्होंने मुस्करा कर पूछा।

मैं लजा कर वहाँ से हट गई। फिर जलपान की थाली और मुँह-हाथ धोने का पानी ले आई।

खाने को कहा तो बोले—प्रमोद के बिना जलपान का लुत्फ़ नहीं आएगा। तब तक रुक जाऊँ तो कोई हर्ज है?

मैंने जवाब दिया—मैं यह सब नहीं जानती, आपको खाना पड़ेगा।

"कोई ज़बरदस्ती है?"—वे हँस कर बोले।

"हाँ" कह कर मैं एक गुलाबजामुन उनके मुँह के पास तक ले जाती हुई बोली—"ज़बरदस्ती मुँह में डाल दूँगी।"

उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया और हँस कर कहा यही गुलाब-जामुन छीन कर अब तुम्हारे मुँह में डाल दूँ?

इसी समय छोटके भैया आकर कमरे में दाख़िल होगए। मेरे तो सारे होश-हवास गुम होगए। मैं मूरत बनी वहीं बैठी रही। उन्होंने चटपट वही गुलाब-जामुन अपने मुँह में रख लिया।

भैया ने आते ही उनकी खोपड़ी पर एक चपत जमाते हुए कहा—पेट नहीं भरता है तो मुँह भी नहीं दुखता? ज़रा अपने थैले को छोटा बना लो।

"बस इतने ही में घबरा गए?" इन्होंने रसगुल्ला चाभते हुए जवाब दिया—"कभी दावत-ऊवत तो खिलाते नहीं; सड़ी-सड़ी चीज़ें खिला कर ऊपर से कहते हो पेट छोटा करने को!"

भैया ने हँसते हुए हाथ जोड़ कर कहा—कोप मत कीजिए दुर्वासा जी महाराज! इस अपराध के दण्ड-स्वरूप मैं कल ही आपकी एक बड़ी सुन्दर दावत दूँगा।

फिर उन्होंने मेरी ओर देख कर हँसते हुए कहा—नीरो! कल बनाओ तो ख़ूब बढ़िया-बढ़िया पदार्थ। देखें, इनका पेट कितना बड़ा है।

मेरे हृदय की हलचल बहुत-कुछ दबी थी और थोड़ी ही देर में फिर वह धीरे-धीरे बढ़ने भी लगी।

८

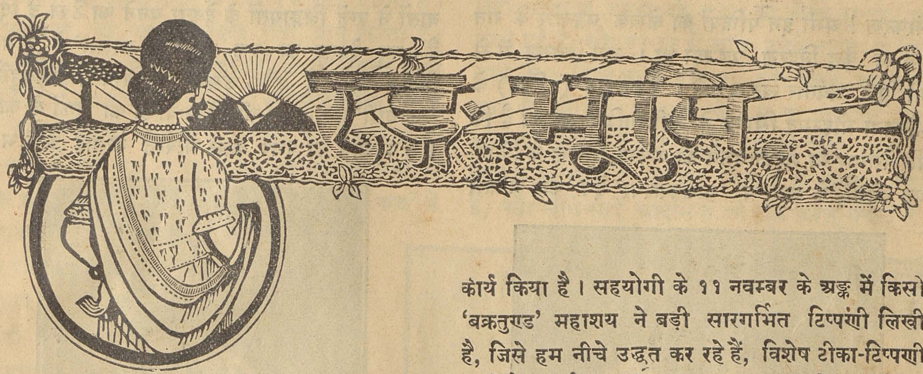
उस दिन चार ही बजे सवेरे उन्होंने मुझे जगा कर कहा—जाओ नीरो! जल्दी से नहा आओ। आज पूर्णिमा है, घाट पर बड़ी भीड़ होजायगी। मैं भी नहाने जाता हूँ।

मैं नहा-धोकर लौटी तो देखती हूँ, दोनों मित्र मुग्ध भाव से मेरे कमरे में खड़े हैं। भैया उनके ललाट पर तिलक लगा रहे थे।

भैया ने मुझे पास बुला कर मेरा हाथ उनके हाथों पर रख दिया और अश्रु-गद्गद् कण्ठ से बोले—अमर! मैं अपने जीवन की एक बहुत ही अनमोल निधि तुम्हारे चरणों पर चढ़ा रहा हूँ। आशा है, इसे पाकर तुम सुखी होगे। और मेरी लाड़िली बहिन! तुमने मुझसे एक सखी माँगी थी उसके बदले में तुम्हें अपना सबसे प्यारा 'सखा' भेंट कर रहा हूँ। परमात्मा सदैव तुम दोनों को सुखी रक्खें।

देखते ही देखते वह काम हो गया, जिसकी कभी आशा तो क्या, कल्पना भी नहीं की थी। हम दोनों आनन्द-विभोर होकर एक साथ ही उनके चरणों पर गिर पड़े।

आँसू पोंछते हुए वे चुपचाप कमरे से बाहर निकल गए, तभी से लापता हैं। कह नहीं सकती, मरने के पहले उस देव-दुर्लभ भाई को एक बार देख भी पाऊँगी या नहीं!

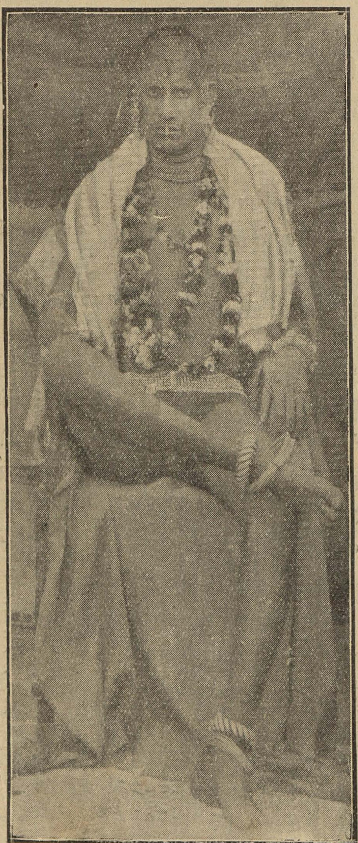


हिन्दुओं की पाखण्ड-पूजा

इसी अङ्क के अग्र-लेख में हमने अभागे हिन्दुओं के भयङ्कर पतन और ह्रास का जो चित्र चित्रित किया है, उसे ही हम अन्तिम शब्द नहीं मान सकते। हिन्दुओं के सुधार का प्रश्न वास्तव में बड़ा जटिल है। उन्हें बाहिरी शत्रुओं की अपेक्षा सर्व-प्रथम घरेलू शत्रुओं का सुधार अथवा संहार का सिंहनाद करना होगा—अपनी पाखण्ड-पूर्ण धार्मिक संस्थाओं के सुधार की ओर विशेष रूप से ध्यान देना होगा। यह घर के जातीय शत्रु वह भयङ्कर घुन हैं, जो धीरे-धीरे—भीतर ही भीतर—हमारी जड़ खोखली कर रहे हैं और जिनके पाखण्ड-पाश में पड़ कर हमारी अनेक बहू-बेटियाँ अपना सर्वस्व इन धूर्तों को समर्पित कर रही हैं। आज हमारे अधिकांश धर्म-गुरुओं की पाप-लीला नरक से भी अधिक दारुण सिद्ध हो रही है, हमारे अधिकांश तीर्थस्थान आज सण्ड-मुसण्ड और ढोंगी साधुओं, पण्डों और पुरोहितों के विलास-कानन बने हुए हैं! अधिकांश मठ और मन्दिर आज भ्रूण-हत्याओं के रक्त से रञ्जित हो रहे हैं, और इन भयङ्कर कीटाणुओं के नाश की ओर अभी तक हिन्दुओं का ध्यान भी नहीं गया है! कलकत्ते के 'गोविन्द-भवन' जैसी नारकीय संस्था के भण्डाफोड़ से होने वाला हृदय का घाव अभी भरने भी न पाया था कि सहयोगी 'प्रताप' ने साईं-खेड़ा के एक दूसरे 'श्रीकृष्ण' के नारकीय कृत्यों का भण्डाफोड़ कर, जनता को सचेत करने का अभिनन्दनीय कार्य किया है। सहयोगी के ११ नवम्बर के अङ्क में किसी 'बक्रतुण्ड' महाशय ने बड़ी सारगर्भित टिप्पणी लिखी है, जिसे हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं, विशेष टीका-टिप्पणी व्यर्थ है। साईंखेड़ा के 'श्रीकृष्ण' महाशय के तीन भिन्न-भिन्न रूपों के चित्र भी नीचे दिए जा रहे हैं। एक में रासलीला करते हुए कलियुगी 'कृष्ण' का चित्र स्त्री-वेष में है, दूसरे चित्र में यही साहब बहादुर बना हुआ है और तीसरे में नर-पिशाच ने छैले का वेष बना रक्खा है। क्या इन धर्म के नाम पर घोर अधर्म करने वाले नर-पिशाचों का इतना नग्न-चित्र देख कर भी शिक्षित स्त्रियाँ अपने घरों का सुधार करने में तत्पर न होंगी? क्या देश की माताएँ और बहिनें इस प्रकार की धार्मिक संस्थाओं का बहिष्कार कर अपने कर्त्तव्य का पालन न करेंगी? लेख इस प्रकार है :—

"पाखण्ड-पूजा, ऐसा मालूम पड़ता है कि हिन्दुओं की घुट्टी में पड़ गई है। दुनिया का कौन सा प्राणी और कौन सा पदार्थ हिन्दुओं की पूजा से बचा हुआ है? 'टाइम्स ऑफ़ इण्डिया' में मील के पत्थर की पूजा का एक चित्र छपा था। मील के सीधे-साधे पत्थर-देवता पर फूल और पत्रों का ढेर लदा हुआ था, और भक्त जी बहुत विनय के साथ उसके सामने सिर झुकाए हुए बैठे थे। रोज़ ऐसी ही घटनाएँ देखने में आया करती हैं। कहीं चौराहे के पत्थरों के ढेरों पर श्रद्धा और मुरादों के फूल चढ़े हुए होते हैं और कहीं पेड़ों पर धज्जियाँ झूलतीं और बाँबियों पर दूध रक्खा रहता है! चालाक लोग, यदि श्रद्धा, पूजा और सरलता की इस बाढ़ में जी भर-भर कर नहाने और ग़ोता लगाने की चालें चला करें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या? इसीलिए देश भर में सदा अवतारों की झड़ी लगी रहती है। पीर-पैग़म्बर उतने पैदा नहीं होते, जितने विष्णु और शिव के नए-नए

संस्करण ! अभी इन पंक्तियों का लेखक बङ्गलोर के गत दङ्गे का कुछ विवरण पढ़ रहा था। उस विवरण में से भी एक अवतार खसक पड़े। हैदराबाद (दक्षिण) के मौलाना मोहम्मद सिद्दीक़ ने यही वाजिब समझा है कि पीर-पैग़म्बर या मेहदी बनने की अपेक्षा, दक्षिण के लिङ्गा-यत लोगों के आराध्य 'चन्निवशेश्वर' देव का अवतार



साईखेड़ा का कलियुगी "कृष्ण" रासलीला के समय स्त्री-वेश में

बन जाया जाय। कहीं की दन्त-कथा है कि इस कलिकाल में, इस देवता का अवतार किसी विधर्मी के यहाँ होगा, और उसके शरीर पर कुछ चिह्न होंगे, उन्हीं से वह पह-चाना जायगा। मौलाना अपने शरीर पर चिह्नों की भरमार दिखाते-फिरते हैं। विधर्मी हैं ही। बस, इन दोनों बातों ने उन्हें लिङ्गायतों के देवता बनने का ठेका दे दिया है। नए देवता का एक पत्र 'दीने-आलम' के नाम से निकल रहा है और उसके पट्ट-शिष्य मोहम्मदहुसैन 'ब्रह्मचारी' नए देवता की दिव्य वाणी को भक्तों के कानों तक पहुँचाने का पुण्य काम अत्यन्त उत्साह और भक्ति



साईखेड़ा का कलियुगी "कृष्ण" छैला-वेष में

के साथ कर रहे हैं। कुछ लोग अब चौंके भी हैं। नए देवता की एक किताब है 'सदवरे-आलम'। उसमें यह सिद्ध किया गया है कि गो-हत्या करना तो हिन्दुओं का पुराना धर्म है, अर्जुन और कृष्ण तक ने उसे की, इस समय के हिन्दू अर्जन और कृष्ण के ख़िलाफ़ कैसे चलते हैं। पुस्तक में अर्जुन और कृष्ण के गायों के मारते हुए चित्र हैं !! इस पर हैदराबाद के कुछ हिन्दुओं ने वावेला मचाया, और राज्य ने उस पुस्तक को ज़ब्त कर लिया। बङ्गलोर के झगड़े की जड़ में ये नए देवता साहब भी समझे जाते हैं। मैसूर सरकार ने उनके श्रीचरणों के राज्य में पड़ने से मनाही कर दी, किन्तु तो भी भक्तों की कमी नहीं है, और भक्ति की भी कमी नहीं।"

किन्तु यहीं हद तो होती नहीं, नए देवताओं की महिमा उतनी ही अनन्त है, जितनी उनकी संख्या ! आग़ा ख़ाँ का नाम तो जग-ज़ाहिर है। पक्का मक्कार, भारत में

तो अपने को पुजवाता है और यूरोप में मौजें मारता है। मुसलमानों का बड़ा ज़बरदस्त नेता बना फिरता है। दिसम्बर में, देहली में, मुसलमानों का जो जमघट लगने वाला है, उसका अधिनायक यही आग़ा ख़ाँ होगा। बहुत से हिन्दुओं का भी उपास्यदेव बना बैठा है। 'हिन्दी-श्रद्धानन्द' के पिछले अङ्क से यह मालूम पड़ा कि आग़ा ख़ाँ के एक छोटे भाई कोई मोटे मियाँ हैं, जो 'पीराना पन्थ' के अगुआ कहे जाते हैं। इन पर भी हिन्दुओं की दृष्टि रहती है, या यह कहना ठीक है कि बगुला की तरह इनकी दृष्टि भी हिन्दुओं पर रहती है। हाल में श्रीनिवास पोद्दार की अध्यक्षता में बम्बई के माधव बाग़ में सनातन-धर्मियों की एक सभा इसलिए हुई थी कि बम्बई के स्कूलों में सब प्रकार के लड़कों के लिए पानी का समान प्रबन्ध करके धर्म पर जो गहरा वज्रपात किया गया है उसका गहरा विरोध करके छुआछूत-धर्म की गहरी रक्षा की जाय। हिन्दुओं के धर्म की रक्षा के लिए ये मोटे मियाँ भी उस सभा में आदर के साथ बुलाए गए थे। कितना अच्छा योग था, और कितनी अच्छी धर्म-रक्षा! इसी समय एक देवता और याद आ रहे हैं। १९२६ में चम्पारन में एक रतूदास नाम के देवता पकड़े गए थे। उन्होंने नेपाल की सीमा में यज्ञ रचा था। चम्पारन की सीमा में भी उनकी बड़ी महिमा थी। अन्त में पुलिस ने पकड़ा और जेल का मेहमान बना दिया। पता लगा कि पुराना पापी है, धर्म के नाम पर लोगों को ठगता और अपनी पूजा करवाता फिरता है, और कई बार बदमाशी और जालसाज़ी में सज़ा पा चुका है। यह भी मालूम हुआ कि इस आदमी के कई नाम हैं, एक नाम गौहरशाह है, इस नाम से मुसलमानों का पीर बनता है, और रतूदास के नाम से हिन्दुओं का देवता! एक-दो सप्ताह में वह जेल से रिहाई पाने वाला है। मालूम हुआ है कि अब भी हिन्दुओं में से बहुत से उसको सिर-आँखों पर रखने के लिए तैयार हैं, और उसके स्वागत की तैयारी हो रही है!!

नरसिंहपुर ज़िला के गाड़रवारा तहसील के साईं-खेड़ा स्थान के प्रमुख बड़े दादा की कीर्त्ति दूर-दूर तक फैली हुई है, और दूर-दूर से लोग उनके दर्शन के लिए जाते हैं। किन्तु उनके नाम पर और उनके स्थान की आड़ में धर्मभक्तों को धर्म के नाम पर बहकाने वाले लोग भी मौजूद हैं। एक भले आदमी 'छोटे दादा' के नाम से प्रसिद्ध हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार बनते हैं, और सीधे-सादे आदमियों को ख़ूब उल्लू बनाते हैं।



साईंखेड़ा का कलियुगी "कृष्ण" अपने असली वेष में। कम्बख़्त साहब बहादुर बना बैठा है!!

पूरे छैल-चिकनियाँ हैं, और मनमाने ढङ्ग से रहते हैं। साधारण आदमियों की धर्म-भावना किस प्रकार बुरी तरह से छली जाती है और एक चलता-पुरज़ा आदमी साधारण लोगों को धर्म के नाम पर कितना ठग सकता है, यह इस नए श्रीकृष्ण के इन चित्रों से प्रकट है। जिस देश के लोगों में साधारण समझ की इतनी कमी

हो, और जिससे साधारण आदमी बने हुए लोगों से क़दम-क़दम पर इस प्रकार ठगे जाते हों, उसे यदि व्यापार और बल में विदेशी भी बहुत-कुछ बेवक़ूफ़ बनाते रहते हों, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?"

* * *

हिन्दू अबला-आश्रम, कलकत्ता

आज से चार वर्ष पूर्व कलकत्ते के कुछ उत्साही तथा समाज-सेवी सज्जनों ने उपरोक्त संस्था की नींव डाली थी। हमें यह देख कर वास्तव में बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि इस संस्था ने पिछले ४ वर्षों में हिन्दू-समाज की बड़ी ठोस सेवा की है। इस संस्था के प्रधान मन्त्री श्री० पद्मराज जी जैन ने—जो कलकत्ते के प्रतिष्ठित कार्यकर्त्ताओं में से एक हैं—१ली जून १९२७ से ३१ मई १९२८ तक संस्था की चतुर्थ वार्षिक रिपोर्ट हमारे पास भेजने की कृपा की है। हमें यह देख कर बड़ा हर्ष हुआ कि प्रायः हर श्रेणी और हर जाति के हिन्दू संस्था के सहायक और संरक्षक हो गए हैं और कार्य बड़े सुचारु रूप से हो रहा है। इस संस्था के संरक्षक निम्न-लिखित सज्जन हैं:—

सर देवप्रसाद सर्वाधिकारी के० टी०; सी० आई० ई०; सी० वी० ई०; एम० ए० एल्० एल्० डी०
सर पी० सी० राय, के० टी०
श्रीयुत घनश्यामदास जी बिड़ला, एम० एल्० ए०
माननीय महाराजा बहादुर क़ासिम-बाज़ार
श्रीयुत जे० एम० सेन गुप्ता, बी० ए०, बार-एट-लॉ
सर ओङ्कारमल जी जेटिया
श्रीयुत छाजूराम जी चौधरी, सी० आई० ई०, एम० एल्० सी०
श्रीयुत रामानन्द चट्टोपाध्याय, एम० ए० (सम्पादक "मॉडर्न रिव्यु")

कार्यकारिणी सभा के सदस्य निम्न-लिखित सज्जन हैं :—

बाबू प्रभुदयाल हिम्मत सिंह, एम० एल्० सी० एटर्नी, काउन्सिलर कलकत्ता कॉरपोरेशन (सभापति)
बाबू दुर्गाप्रसाद जी खेतान, एम० ए०, बी० एल्० एटर्नी एट्-लॉ (उप-सभापति)
श्री० कृष्णकुमार मित्र, मन्त्री नारी-रक्षा-समिति, कलकत्ता (उप-सभापति)
श्री० नन्दलाल जी पुरी, मैनेजर सेन्ट्रल बैंङ्क ऑफ़ इण्डिया (उप-सभापति)
श्री० भागीरथमल जी कनाडिया (उप-सभापति)
श्री० पद्मराज जी जैन (प्रधान-मन्त्री)
श्री० बालकृष्ण जी मोहता (सहायक मन्त्री)
श्री० डॉक्टर कृष्णगोपाल जी भट्टाचार्य काउन्सिलर कलकत्ता कॉरपोरेशन (सहायक मन्त्री)
श्री० गङ्गाप्रसाद जी भोतिका, एम० ए०, बी० एल०, ऑडिटर (आय-व्यय परीक्षक)

इनके इलावा कार्यकारिणी समिति के १९ सदस्य और अनेक सहायक भी हैं। प्रधान मन्त्री महोदय के शब्दों में इस संस्था की रिपोर्ट तथा उनका अनुभव इस प्रकार है :—

"कलकत्ते का हिन्दू-अबलाश्रम हिन्दू-जाति की सामाजिक कुप्रथाओं और सामाजिक अत्याचारों का एक सचात् प्रतिबिम्ब है। मैंने चाहा था कि मैं इस रिपोर्ट में समाज की कुछ सच्ची घटनाओं का उल्लेख करूँ, परन्तु इससे समाज की माता और बहिनों के प्रति दिए हुए इस पवित्र वचन का उल्लङ्घन होता है कि "आप पर बीती हुई सारी घटना कोई भी नहीं जान सकेगा"। यही कारण है कि मेरी और मेरे सहयोगी बा० बालकृष्ण जी मोहता की इच्छा रहने पर भी हम उन घटनाओं का उल्लेख नहीं कर सके।

अबलाश्रम ने हिन्दू-जाति की सभी वर्ण, जाति और उपजातियों की माता और बहिनों को स्थान दिया है। आज भारतवर्ष में उच्च कहलाने वाली जातियाँ अपनी माता और बहिनों पर कैसा भीषण अमानुषिक अत्याचार कर सकती हैं, इसे यदि कोई सज्जन प्रत्यक्ष देखना चाहें तो उन्हें आश्रमवासिनी बहिनों की आत्म-कहानियाँ ही अच्छी तरह दिखला सकेंगी। यह विशेष लक्ष्य करने की बात है कि जितना अत्याचार उच्च कहलाने वाली जातियों में होता है, उतना नीच कहलाने वाली छोटी जातियों में नहीं होता। इस कथन की सत्यता हिन्दू-अबलाश्रम का विवरण प्रकट कर सकेगा।

मुझे तो यह कहने में भी कोई सङ्कोच नहीं होता कि हिन्दू-नारियाँ केवल गार्हस्थिक अत्याचार, सामाजिक उत्पीड़न और विधवाओं के प्रति घृणा के भाव के कारण

ही अपना घर छोड़ने के लिए बाध्य हुआ करती हैं ! पुरुष-जाति की यह धारणा कि हिन्दू-विधवाएँ कुत्सित काम-वासना की तृप्ति के लिए अथवा अन्य सांसारिक प्रलोभनों के कारण विधर्मियों के साथ अथवा अन्य किन्हीं व्यक्तियों के साथ घर से निकल जाया करती हैं, सर्वथा नहीं तो बहुत अंशों में मिथ्या है।

आश्रम ने समाज की विधवाएँ, विशेष कर घर छोड़ने को बाध्य क्यों होती हैं, ऐसी घटनाओं का संग्रह अलग ही कर रक्खा है। मैंने चाहा था कि समाज के कुछ लोग उन घटनाओं को देख कर यह निश्चय करें कि विवाह के सिवाय उनका और कौन सा अच्छा उपाय हो सकता है, परन्तु मुझे दुख है कि मेरे इस निवेदन पर किसी भी सज्जन ने ध्यान नहीं दिया। गत वर्ष आश्रम ने आश्रम-निवासिनी ३६ विधवा और कुमारी बालिकाओं का विवाह किया है।

इस वर्ष आश्रम का काम विशेष सङ्गठित रूप में चलने के कारण कई नवीन समस्याएँ उपस्थित हुई हैं। हिन्दू-भाइयों का कर्त्तव्य है कि वे इन गुरुतर समस्याओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें और इनका उपाय सोचें। केवल सोचने से ही काम नहीं चलेगा। मैं तो कहूँगा कि यथा-शीघ्र इनका प्रबन्ध होना चाहिए।

१—जिन निराश्रित स्त्रियों की आयु ३५ और ४० वर्ष से ऊपर है अथवा जिनकी मनोवृत्ति सांसारिक प्रलोभनों से हट गई है और जो केवल धार्मिक जीवन व्यतीत करना चाहती हैं, उनके लिए बहुत ही शीघ्र कलकत्ते के इन प्रलोभनमय वातावरण से बाहर किसी ऐसे स्थान में एक आश्रम निर्माण करने की आवश्यकता है कि जहाँ का वातावरण केवल धार्मिक और उन स्त्रियों की मनोवृत्ति के अनुकूल बनाकर उन्हें अपने मनोवाञ्छित जीवन-निर्वाह का सुगम उपाय कर दिया जा सके। शायद मेरे इस कथन के उत्तर में कुछ सज्जन नवद्वीप, काशी और वृन्दावन आदि के भजनाश्रमों का निर्देश करना चाहें तो मैं उन महानुभावों से इतना ही कहूँगा कि इन आश्रमों के स्थापनकर्त्ता महापुरुषों के विचार इनकी वर्त्तमान कार्य-प्रणाली से अवश्य ही कोसों दूर रहे होंगे। ये आश्रम आज धार्मिक जीवन-निर्वाह की ओर समाज की माता और बहिनों को एक पग भी आगे नहीं बढ़ाते। इन आश्रमों के जो कई गुप्त विवरण प्रकाशित हुए हैं वे बड़े ही भीषण हैं, इसलिए जहाँ धार्मिक शिक्षाओं के साथ-साथ उनका जीवन राष्ट्र के उपयोगी बनाया जा सके, ऐसे प्रयत्न की अनिवार्य आवश्यकता है।



आश्रम में रहने वाली देवियाँ, जिनका सर्वस्व हिन्दू-समाज ने अपहरण करके उन्हें राह की भिखारिणी बना दिया है !

२—उन बच्चों की रक्षा का प्रबन्ध कि जिनकी माताएँ सामाजिक कुप्रथाओं के कारण अपनी गर्भजात सन्तान को मार डालने पर उतारू होती हैं अथवा वे बच्चे, जिनकी देख-रेख करने वाला कोई न रहने के कारण अकाल में ही मर जाते हैं। यद्यपि अबलाश्रम ने जब से मकान परिवर्त्तन कर दिया है, तब से यथासाध्य ऐसे निराश्रित मातृ-पितृहीन बालकों को भी लेना प्रारम्भ

किया है, तो भी अर्थाभाव के कारण उन बच्चों के लिए जैसे प्रबन्ध की आवश्यकता है वह अभी तक नहीं हो सका, न आश्रम उन्मुक्त द्वार से ऐसे बच्चों को ले ही सकता है। ऐसे बच्चों के लालन-पालन में ख़र्च की कहीं अधिक आवश्यकता होती है।

३—उन बालिकाओं के लिए एक जुदा स्थान, जो अप्राप्त वयस (नाबालिग़) हैं अर्थात् जिनकी आयु १६ वर्ष से कम की हो, होना चाहिए। यद्यपि वर्त्तमान समय में आश्रम ऐसी बालिकाओं को भी स्थान दे रहा है, परन्तु वह उन्हीं बालिकाओं को स्थान दे सकता है कि जिनको उनके अभिभावक या माता-पिता दे जायँ अथवा जो किसी कारणवश आश्रम में आ गई हों, परन्तु पुलिस और सरकार जिन बालिकाओं का उद्धार वेश्यालयों आदि बहुत से कुत्सित स्थानों से करती है, उनके लिए हिन्दुओं का कोई स्थान न होने के कारण वे विधर्मियों के हाथ सौंप दी जाती हैं !!

यदि हिन्दू-जाति को अपनी आत्म-रक्षा करनी है और सम्मान-पूर्वक करनी है, तो उसे इन उपरोक्त संस्थाओं का प्रबन्ध अविलम्ब करना होगा, अन्यथा हिन्दू-सन्तान यदि एक भी विवश होकर अपना पैतृक धर्म और समाज छोड़ने को बाध्य होती है तो उसका कलङ्क और महा पाप हिन्दुओं पर ही है ! आज न जाने हिन्दू-जाति का कितना धन केवल धर्म के नाम पर अपव्यय होता होगा, यदि उस धन का सदुपयोग ऐसे कामों में किया जाय तो न जाने उसका कितना सदुपयोग और लाभ हो।

देश में दहेज की प्रथा ने आज कितने पवित्र कुलों को कलङ्कित किया है, इसकी गणना नहीं हो सकती। अर्थहीन, दरिद्र, सामान्य स्थिति के गृहस्थ घर में जब कोई कन्या उत्पन्न होती है, तो मानो उनका मरण हो जाता है। वर्षों धन-संग्रह करने के बाद भी जब वर-पक्ष वालों की धन-लिप्सा तृप्ति नहीं होती और अपनी कन्या के लिए सुयोग्य वर मिलना दुर्लभ हो जाता है और इधर सात पीढ़ी नरक में चले जाने वाला डर भीषण रूप धारण कर सर पर नाचा करता है, उस विभीषिका का वर्णन लेखनी द्वारा नहीं हो सकता—उसका तो केवल अनुभव ही होता है। इस भीषण कुप्रथा के हाथों आज कई युवती कुमारी कन्याओं को अपने सतीत्व का बलिदान करना पड़ता है। एक ओर दिन-रात माता-पिताओं की ताड़ना, दूसरी ओर "मेरे ही कारण मेरे पिता का घर नरक बन रहा है" यह नित्य की भावना उन कुमारी बालिकाओं को एक बिन्दुमात्र जहाँ शान्ति मिलने की आशा हो उसकी ओर दौड़ाता है। चातक स्वाति-बूँद की तरह यदि उस बालिका से किसी ने एक शब्द मधुर कहा तो वह बालिका अपने को धन्य समझने लगती है। वे ही मधुरभाषी नर-पिशाच, कुलाङ्गार पुरुष उन अबोध कन्याओं का जीवन भ्रष्ट करते हैं। ऐसी कई गर्भवती कुमारी कन्याओं को अबलाश्रम ने इस वर्ष आश्रय दिया है। पुरुष-समाज का यह कैसा घोर कलङ्कमय भीषण दृश्य है, इसे समाज को सोचना चाहिए। इस वर्ष आश्रम में ऐसी १९ कुमारी बालिकाएँ आई हैं जो कुमारी अवस्था में ही गर्भवती हो गई थीं !! समाज के सामने नाक न कट जाय, इससे उनके अभिभावकों ने बच्चा पैदा हो जाने पर बच्चों को आश्रम में ही छोड़ कर उन लड़कियों को घर ले जाकर उनका विवाह कर दिया है। लिखते हृदय विदीर्ण होता है कि आज न मालूम कितनी कुमारी बालिकाओं का जीवन भ्रष्ट किया जाता है। समाज के भय से उनका गर्भपात कराया जाता है और पीछे कुलीनता और धर्म की दुहाई दी जाती है। हिन्दू-समाज को यदि जीना है तो उसको सबसे पहले अपनी बुराइयों को देखना होगा और समाज की चिन्ता न करते हुए समाज से उनका उन्मूलन कर देना होगा। इस प्रकार से बराबर ऐसी गर्भवती कुमारी बालिकाएँ आश्रम में आती हैं और दुधमुँहे बच्चों को बिलखती हुई छोड़ अपने अभिभावकों के साथ चली जाती हैं। ऐसी परिस्थिति समाज के लिए बहुत ही चिन्ताजनक और भयावह है। समाज के शुभचिन्तकों को चाहिए कि इसका कोई उचित उपाय करें। प्रायः जितनी कुमारी बालिकाएँ गर्भवती आश्रम में आती हैं उनमें से अधिकांश अपने सगे-सम्बन्धी परिवार वालों द्वारा ही गर्भवती बनाई हुई आती हैं। लिखते लज्जा मालूम पड़ती है, लेखनी थर्राती है, कितनी ऐसी ही बालिकाएँ आई हैं जिनकी दुख-कहानी सुन कर हृदय दुख से जल उठा है और उन नर-पिशाच पिता, भाई और चाचा कहलाने वालों के प्रति क्रोधाग्नि अपने आप उत्पन्न हो जाती है। मैं इस सम्बन्ध में विशेष न लिख कर, इतना ही कहता

हूँ कि हिन्दू-समाज के महानुभावो ! आँखें खोलो और समाज की छाती पर से इस कलङ्क को मिटा कर ही चैन लो।

इस वर्ष आश्रम में ७२ बच्चे आए, जिनमें ३२ तो अपनी-अपनी माताओं के साथ चले गए, १८ बच्चों का देहान्त हो गया, १ बच्चा एक सज्जन को गोद दे दिया गया, और १ लड़का हिन्दू-अनाथालय में भेज दिया गया। बाक़ी २० लड़के आश्रम में हैं। बच्चों की देख-रेख, लालन-पालन में कितने ख़र्च की आवश्यकता है, यह प्रत्येक विचारवान् सज्जन विचार सकते हैं। आश्रम के पास ऐसा कोई आर्थिक साधन नहीं है कि बच्चों के लिए अलग-अलग धाइयाँ रक्खी जायँ। आश्रम-वासिनी देवियाँ ही इन बच्चों का लालन-पालन करती हैं। बच्चे प्रायः सभी १ वर्ष से कम अवस्था के हैं। जो १८ बच्चे मर गए हैं वे सभी माता के अभाव में मरे हैं। उनकी माताओं को आश्रम में एक-दो मास तक ठहराने पर ज़ोर देने पर भी उनके अभिभावकों ने बच्चों को छोड़ कर अपनी मान-रक्षा के लिए लड़कियों को ले जाना ही उचित समझा। समझाने पर भी वे नहीं समझे और लाचार होकर बच्चों को आश्रम में रखना ही पड़ा। एक-एक मास और पन्द्रह-पन्द्रह दिन के बच्चे माता के अभाव में जीवित कैसे रह सकते हैं, यह आप महानुभाव सोच और विचार सकते हैं।



अबला-आश्रम के आश्रित कुछ अनाथ बच्चे। दाहिनी और बाईं ओर जिन अबोध शिशुओं को लड़के गोद में लिए बैठे हैं, उनकी दयनीय दशा पर किस सहृदय की आँखों से आँसू न निकल पड़ेंगे ?

ऐसे बच्चों के लालन-पालन के लिए वर्तमान आश्रम का भवन पर्याप्त नहीं है, तिस पर लालन-पालन करने वाली धाइयों की विशेष आवश्यकता है। मैंने पहले ही समाज के अन्दर अबलाओं पर होने वाले अत्याचारों का दिग्दर्शन करा दिया है। किस प्रकार प्रतिदिन हिन्दू-विधवाएँ घर छोड़-छोड़ कर बाहर आने के लिए बाध्य की जाती हैं, इसका प्रत्यक्ष दर्शन चारों ओर होता है। रात-दिन यही समाचार सुनने में आता है कि अमुक विधवा को अमुक स्थान पर अमुक विधर्मी भगा ले गया, अमुक की विधवा पुत्री, स्त्री या भगिनी भाग गई आदि। दुख है कि विधवाओं की इस भगदड़ से हिन्दू-समाज अभी तक जितना चाहिए उतना सचेत नहीं हुआ है। ऐसी दयनीय दशा समाज की हो रही है कि प्रत्येक समाज-हितैषी को आँसू बहाना पड़ रहा है। समाज का नग्न-चित्र विधवाओं के ऊपर होते हुए अत्याचारों का प्रतिफल आज स्पष्ट प्रकट कर रहा है। इस वर्ष आश्रम में इस प्रकार से समाज द्वारा सताई हुई एवं विधर्मियों के फन्दे से छुड़ाई हुई सब ३१० अबलाएँ आईं। इनमें से १७४ अपने अभिभावकों के पास भेज दी गईं। ३६ का विवाह कर दिया गया, जो अपने-अपने पति-गृह में बहुत ही प्रसन्न तथा सुखी हैं। आश्रम की ओर से बराबर उनकी सुधि ली जाती है और उनका पत्र आता-जाता रहता है।

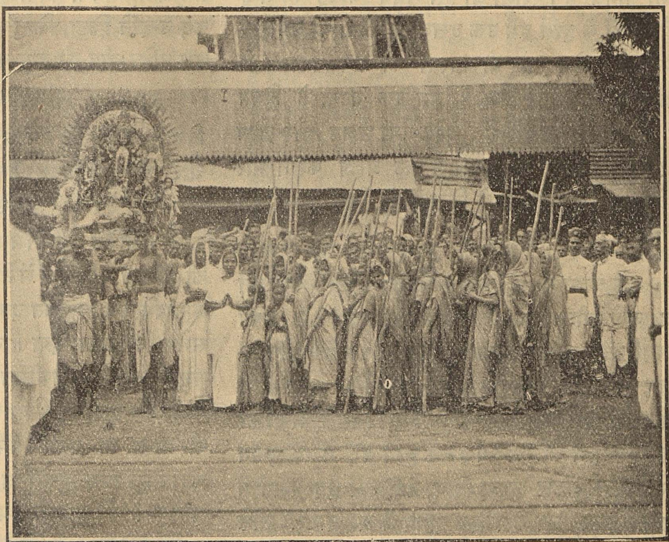
इन पंक्तियों का लेखक कार्यवश कलकत्ते गया था, तब आश्रम के प्राण-स्वरूप श्रीबालकृष्ण जी मोहता ने उस संस्था का हमें निरीक्षण कराया था, पर आग्रह करने पर भी इस संस्था की निरीक्षकों की सम्मति-पुस्तक (Visitors Report Book) में हम एक पंक्ति भी लिखने का साहस नहीं कर सके। उसका कारण था। आश्रम में रहने वाली देवियों की दिनचर्या और उनके व्यवहार हम पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं डाल सके। हमने इस संस्था में वही बातें देखीं जो हलवाई की दूकान पर प्रायः देखी जाती हैं। चूल्हे पर कढ़ाई चढ़ी है, ढेर की ढेर स्त्रियाँ कुछ बच्चों को गोद में अथवा पेट में लिए हुए और कुछ ख़ाली हाथ खाना छीनने में मस्त थीं—आपस में कलह हो रहा था। वे कढ़ाई पर गिरी पड़ती थीं। कमरों में जाकर देखा—स्त्रियाँ ठीक उसी प्रकार पड़ी हुई मिलीं, जिस प्रकार तीसरे दर्जे के मुसाफ़िरख़ाने में यात्री गाड़ी की प्रतीक्षा में पड़े रहते हैं। बरामदे में एक ओर एक ५-६ दिन का जना हुआ बच्चा एकान्त में पड़ा अपने पापपूर्ण जीवन की घड़ियाँ गिन रहा था और उसी के समीप ५-६ स्त्रियाँ आपस में इसलिए झगड़ रही थीं कि इसकी देख-भाल कौन करे, एक दूसरे को आगे ढकेल रही थीं और वह दूसरे के सिञ्चित पाप को छूने से घृणा प्रदर्शित कर रही थीं; हालाँकि सब का जीवन समान था—किसी के पाप की गठरी पेट में थी तो किसी की गोद में! आश्रम में रहने वाली अधिकांश स्त्रियाँ बङ्गालिनें थीं, जो मोहता जी तथा उनकी धर्मपत्नी से बार-बार आग्रह कर रही थीं कि भोजन के साथ उन्हें मछलियाँ अवश्य दी जाया करें, इसके बिना वे जीवित नहीं रह सकतीं। कुछ स्त्रियाँ धोतियाँ माँग रही थीं। कुल की संख्या उस समय सम्भवतः ७० थी, जिनमें ४८ थीं बङ्गालिनें, ३ कायस्थ-युवतियाँ थीं जो बिहार से भाग कर आई थीं तथा ५ उच्च कुल की ब्राह्मण महिलाएँ थीं और शेष फुटकर थीं; जिनका हमें स्मरण नहीं हो रहा है। उसी रोज़—हमारे निरीक्षण के दिन—एक कायस्थ-युवती बक्सर ज़िला से भाग कर पुरुष-वेष में आई थी, उसकी आत्म-कथा बड़ी लज्जापूर्ण थी। अपने श्वसुर से उसका अनुचित सम्बन्ध हो गया था। किसी प्रकार भी इस आश्रम में रहना उसने स्वीकार नहीं किया—बहुत रोई-पीटी। अन्त में मोहता जी तथा उनकी आदर्श धर्मपत्नी श्रीमती गङ्गादेवी—जिनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य ऐसी अनाथ बहिनों की सेवा करना है—अपने घर उसे ले गईं। फिर क्या हुआ, हम नहीं कह सकते। इस अप्रिय चर्चा का एकमात्र ध्येय है आश्रम के प्रमुख कार्य-कर्त्ताओं का ध्यान इन त्रुटियों की ओर आकर्षित करना, जिनके सुधार में ही ऐसी संस्थाओं का उज्ज्वल-भविष्य छिपा हुआ है। हमारा विचार है कि केवल भरण-पोषण करके ही हम ऐसी अभागिनी महिलाओं का उपकार नहीं कर सकते, बल्कि उन्हें भविष्य में स्वावलम्बी बनाना ही हमारा ध्येय होना चाहिए, उनकी दिनचर्या, एक आदर्श दिन-चर्या होनी चाहिए। इन स्त्रियों और बच्चों की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए और कूट-कूट कर उनके हृदय में सेवा का भाव भरना चाहिए, ताकि ये ही स्त्रियाँ देश तथा समाज की सेवा करने में समर्थ हो सकें। हम संस्था के अधिकारियों का ध्यान 'चाँद' में प्रकाशित संरक्षण-गृह की योजना की ओर सादर आकर्षित करना चाहते हैं, जिसमें इन सभी बातों पर समुचित रूप से प्रकाश डाला गया है।

आश्रम के वार्षिक व्यय का जो विवरण हमारे सामने उपस्थित किया गया है, उसके सम्बन्ध में भी दो-एक त्रुटियों की ओर अधिकारियों का ध्यान आकर्षित करना हमारा दुखद, किन्तु आवश्यक कर्त्तव्य हो गया है। जबकि संस्था को धनाभाव के कारण इतनी कठिनाइयाँ हो रही हैं तो उसे साहूकारी करने की क्या ज़रूरत थी? हम नहीं समझ सकते ४००) रु० भागीरथराम जी को क़र्ज़ क्यों दिए गए? इसका कोई क्षम्य कारण रिपोर्ट में नहीं दिया गया है। केवल कहा गया है "४००) रु० भागीरथराम जी को क़र्ज़ दिया गया—बदले में उन्होंने तब तक अपनी तीन सीने की मैशीनें आश्रम को दे दी हैं", हम इस व्यय से सन्तुष्ट नहीं हैं। भागीरथराम जी से मैशीनें लेने की ज़रूरत ही क्या थी, जबकि हाथ की सिङ्गर मैशीनें आजकल लगभग १२५) की बिक रही हैं। यदि तीन मैशीनें नक़द मोल ले ली गई होतीं तो उनका मूल्य भी ३७५) रु० ही होता। हालाँकि यही मैशीनें ५) रु० मासिक किश्त पर भी आसानी से मिल जाती हैं और कम्पनी के अमेरिका-स्थित अधिकारी ऐसी संस्थाओं के

लिए विशेष रियायत करने को प्रस्तुत रहते हैं—यदि उचित लिखा-पढ़ी की जाय। संस्था द्वारा इस प्रकार का व्यय होना हम सरासर अनुचित समझते हैं। रिपोर्ट में इस प्रकार की एक-दो और भी रक़में हैं, जिन पर हमें इसलिए आपत्ति है कि जब तक संस्था पूर्ण रूप से स्वावलम्बी न हो जाय, ऐसे व्यय न होने चाहिए। उदाहरण के लिए टेलीफ़ोन के लिए आश्रम को इस वर्ष २१५॥=) देने पड़े, यदि यह व्यय न होता तो क़रीब १८) रु० मासिक की बचत रहती और यही धन अनाथ बच्चों के पालन में—उन क्षीण और अभागे बच्चों के पोषण में जो छटाँक भर दूध के अभाव में हिन्दू-समाज को कोसते हुए अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देते हैं :—व्यय किया जा सकता था। फिर टेलीफ़ोन की इतनी आवश्यकता भी तो नहीं थी। जहाँ टेलीफ़ोन नहीं होते वहाँ भी कार्य तो हो ही जाता है। हमें आशा है, इसके सुयोग्य मन्त्री महोदय हमारे इस मित्र-भाव से दिए गए परामर्श पर अवश्य विचार करेंगे।

अन्त में हमें शब्द नहीं मिलते, जिनसे हम उन उदार और समाज-सेवी सज्जनों की प्रशंसा कर सकें, जिन्होंने कलकत्ते-जैसी पापपूर्ण नगरी में इस पुण्य-कार्य की नींव डाली है। श्रीपद्मराज जी जैन महोदय से तो हमारा व्यक्तिगत परिचय नहीं है, पर बालकृष्ण जी मोहता तथा उनकी विदुषी धर्मपत्नी श्रीमती गङ्गादेवी जी की तल्लीनता हमने स्वयं देखी है। जिस उत्साह से आश्रम का कार्य यह आदर्श दम्पति कर रहे हैं वह उन्हीं के उपयुक्त है। प्रधान मन्त्री महोदय के शब्दों में—"सचमुच यह दम्पति आश्रम के माता-पिता हैं!"

* * *



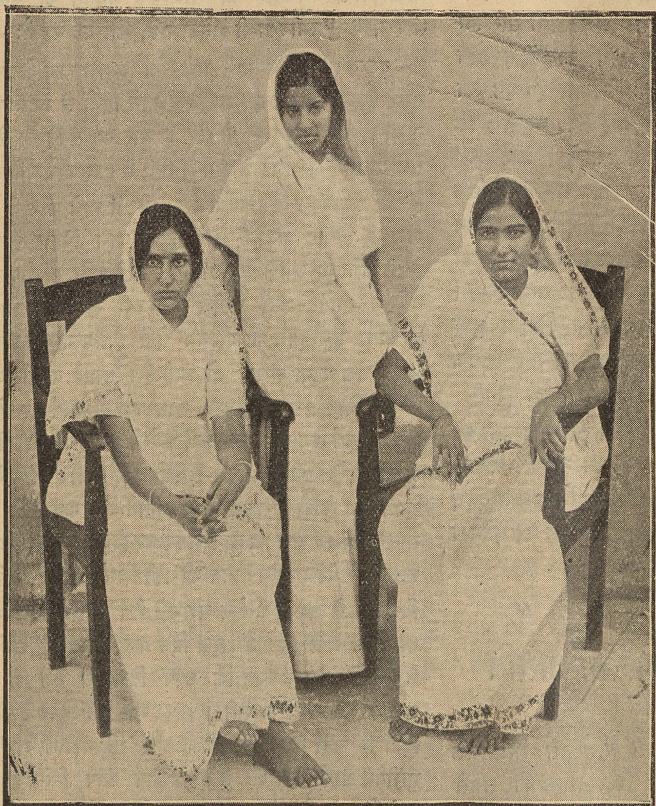
इस वर्ष आश्रम की महिलाओं ने बड़ी धूमधाम से दुर्गापूजा का उत्सव मनाया था। मूर्ति का विसर्जन करने हाथ में लाठियाँ लेकर ये गंगा की ओर जा रही हैं

समाज की बलि

'चाँद' के इसी अङ्क में अन्यत्र हिन्दी के उदीयमान लेखक श्री० जनार्दनप्रसाद जी झा की 'छोटके भैया' शीर्षक एक कहानी छप रही है, यह केवल कहानी नहीं है, दहेज की कुप्रथा के कारण आज हमारे अभागे देश में बालिकाओं का जो अमानुषिक बध हो रहा है, उसका ज्वलन्त चित्र है—मूक बहिनों की आत्म-कथा है। दहेज की कुप्रथा के कारण आज तक न जाने इस देश में कितने बलिदान हुए और नित्य ही होते जा रहे हैं, पर बड़े आश्चर्य की बात है कि इतनी अधिक क़ुर्बानियाँ भी भारतीय समाज के हृदय में सुधार की प्रवृत्ति उत्पन्न नहीं कर सकीं, नवयुवकों की उदासीनता का इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है। सहयोगी 'माहेश्वरी' की सारमयी टिप्पणी है :—

"पाठकों ने बङ्गाल की एक वीर कन्या के आत्म-बलिदान की करुण कथा पढ़ी होगी। आज हम उस विषय

और उदाहरण पेश करने पर वे इस सुधार के लिए बढ़ने को तैयार हो गए और पूरे ६ वर्ष के बाद—बड़ी-बड़ी कोशिशों के बाद—अब उन्होंने अपनी धर्मपत्नी और बच्चों को यहाँ बुला लिया है। उनका जाति-बहिष्कार



बाईं ओर से—प्रथम स्वर्गीय मगनलाल जी गांधी की पुत्री कुमारी राधाबहिन, बीच म स्वर्गीय दलबहादुर जी गिरि की कन्या और तीसरी श्रीमती राजकिशोरी देवी, आपही श्री० रामनन्दन जी मिश्र की धर्मपत्नी हैं, जिनके कारण बिहार में परदा-प्रथा को तोड़ने के लिए ऐसा प्रभावशाली आन्दोलन प्रारम्भ हुआ है !

हुआ कि नहीं, हमने अभी तक यह नहीं पूछा है। सारांश यह कि एक तो बिहार फिर बिहार का गाँव, कोढ़ और कोढ़ में खाज की लोकोक्ति चरितार्थ करता है। श्री० रामनन्दन मिश्र के श्वसुर महाशय भला क्यों अपनी छिपा-लुका कर पाली हुई लड़की को महात्मा गाँधी जैसे 'किरिस्तानी' के आश्रम में भेजने के लिए अनुमति देते ? बड़े जड्डो-जेहाद के बाद मिश्र जी की पराजय हुई, लड़की बिदा नहीं की गई। सनातन-धर्म की रक्षा तो हो गई, जामाता सन्तुष्ट हो या असन्तुष्ट; धर्म के सामने जामाता एक तुच्छ अपदार्थ है। मिश्र महोदय को अपनी इस परवशता पर बड़ी ग्लानि हुई। अपनी पत्नी-पत्नाई स्त्री पर अपना कोई भी अधिकार न पाकर रोष और ग्लानि का होना स्वाभाविक ही था। बेचारों ने महात्मा गाँधी से सहायता माँगी। महात्मा जी ने मुस्कुराकर आपकी यथाशक्ति सहायता करने का वचन दे दिया और फल-स्वरूप स्वर्गीय मगनलाल जी गाँधी की पुत्री कुमारी राधा बहिन, स्वर्गीय दलबहादुर गिरि की कन्या इस परदा की कुप्रथा के विरुद्ध बिहार में बग़ावत करने को भेज दी गईं, फिर स्वर्गीय मगनलाल जी गाँधी स्वयं भी पधारे और बड़े ज़ोरों से परदा-प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन होने लगा। बिहार के प्रायः सभी प्रतिष्ठित नेताओं ने पूरा सहयोग दिया और बड़े ज़ोरों से कार्यारम्भ किया गया। मिश्र जी की धर्मपत्नी भी उन्हें मिल गईं। अस्तु—

८ वीं जुलाई को इस परदा की कुप्रथा के विरुद्ध समस्त बिहार में सार्वजनिक सभाएँ करने का निश्चय किया गया और हमें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि

समस्त बिहार के लगभग सभी शहरों में सफलता-पूर्वक सभाएँ हुईं, जिनमें आन्दोलन की व्यापकता, दृढ़ता और प्रभाव का प्रदर्शन किया गया। मुज़फ़्फ़रपुर, छपरा, मोतिहारी, आरा, समस्तीपूर, बेतिया, भागलपुर, लहरियासराय, हाजीपुर आदि अनेक स्थानों में बड़ी प्रभावशाली सार्वजनिक सभाएँ हुईं और कार्यकर्त्ताओं ने बड़ा उत्साह प्रदर्शित किया। प्रायः सभी सार्वजनिक सभाओं में आई हुई स्त्रियों ने—जिनकी संख्या बहुत अधिक थी—परदा-प्रथा के मस्तक पर पाद-प्रहार किया। पटने के श्रीराधिकासिंह इन्स्टीट्यूट में स्त्री-पुरुषों की एक विशाल सार्वजनिक सभा श्रीमती अलखराज देवी के सभापतित्व में हुई, जिसमें समस्त एकत्र स्त्रियों ने बड़ा उत्साह प्रदर्शित किया। जिन स्त्रियों ने यौवन के आरम्भ से सूर्य का विमल प्रकाश स्वतन्त्रता-पूर्वक कभी न देखा था, उन्होंने आज देखा; उनके हर्ष और उल्लास की सीमा नहीं थी। अनेक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए, जिनमें सिद्ध किया गया कि परदा-प्रथा भारत की संस्कृति के सर्वथा विरुद्ध है और ईश्वर-प्रदत्त वायु-प्रकाश से स्त्रियों को वञ्चित रखना घोर अमानुषिक कार्य है। अन्य सभी सभाओं में लगभग इसी प्रकार के प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पास हुए तथा स्त्रियों की अनिवार्य शिक्षा पर बहुत ज़ोर दिया गया। तभी से बिहारी महिलाओं में अपूर्व जाग्रति की लहर हिलोरें ले रही है, जो यदि इसी प्रकार क़ायम रही तो देश का भारी सुधार करने में समर्थ होगी, हमारी अन्तरात्मा बार-बार यह कह रही है।

इस आन्दोलन के सिलसिले में श्रीमती कमला चट्टोपाध्याय का नाम, जो भारत-कोकिला श्रीमती सरोजिनी देवी की भावज हैं, विशेष उल्लेखनीय है। आपने समस्त भारत में स्त्रियों की दशा सुधारने का व्रत ले रक्खा है और इसी सदुद्देश्य से आप देश के एक छोर से दूसरे छोर का दौरा कर रही हैं। आपने अनेक महिला-समितियों का निर्माण तथा पूर्व निर्माणित समितियों में एक नए जीवन का सञ्चार किया है, जिसकी चर्चा हम फिर कभी सुविधानुसार करेंगे। आप बिहारी महिलाओं के सुधार का विशेष प्रयत्न कर रही हैं। आप ही के उद्योग से शिक्षा-सुधार-सम्बन्धी अखिल भारतवर्षीय महिला-कॉन्फ़्रेन्स (All India Women's Conference on Educational Reform) का तीसरा अधिवेशन पटने में निमन्त्रित किया गया है, जिसकी बैठक ३ से ७ जनवरी तक पटना के श्री० राधिकासिंह हॉल में होनी निश्चित हुई है। इसमें समस्त भारत से लगभग २०० महिला-प्रतिनिधियों के आने की पूर्ण सम्भावना है। हम श्रीमती कमला चट्टोपाध्याय तथा उनकी सहयोगिनी बहिनों को इस सामयिक सुधार और जाग्रति के आन्दोलनों के लिए बधाई देते हैं और इस आन्दोलन की हृदय की समस्त शक्ति से सफलता चाहते हैं।

हे करुणाकर !

[रचयिता—श्री० चन्द्रनाथ जी मालवीय "वारीश"]

घनघोर घटा दुख का तम-तोम घिरा सब व्योम न जात कहा।
भव-सिन्धु अगाध न जात तरा, मद-मत्सर-मोह अपार महा।
निरद्वन्द्व-निरङ्कुशता-शठता पशुता-अघ-ओघ न जात सहा
करुणा कर हे—करुणा-कर को करुणा कर दे करुणाकर हा !!

1929-01 -Chand Magazine (1333)



[ले० श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

लतखोरीलाल

६

गिरता-पड़ता, मरता-खपता आख़िर किसी न किसी तरह एक बजे रात को मैं अपने घर के दरवाज़े के सामने जाकर खड़ा हुआ। तक़दीर बहुत तेज़ थी जो उल्टी हुई बैलगाड़ी के नीचे और पानी के भीतर से, घण्टों के बाद भी, मैं ज़िन्दा निकल आया था, वरना वहीं न ठण्ढा हो जाता ? यहाँ तक पहुँचने की नौबत ही काहे को आती ? ख़ैर! मकान पर आ तो गया, मगर यहाँ आके एक अजीब उलझन में जकड़ गया। इसलिए न तो अब मुझे दरवाज़ा खुलवा कर भीतर ही जाते बन पड़ा और न बाहर सोते हुए किसी नौकर को जगाते। धत् तेरे की! इस रोग की पहले अगर कुछ भी भनक मालूम होती तो इतनी मुसाफ़िरत तय ही क्यों करता? वहीं जङ्गल ही में मज़े में बैठे-बैठे मलार गाता। क्योंकि जिस मनसूबे के बल पर यहाँ तक सैकड़ों मुसीबतें झेलता और सर पर पाँव रख कर दौड़ता हुआ आया था, वह कम्बख़्त मेरे पीछे अब दबक रहा और मैं अपने ही दरवाज़े पर एक अजनबी, मुहताज और चोर की तरह थर-थर काँपने लगा। कुछ डर के मारे नहीं ; मगर बात ही ऐसी थी जिसमें मैं क्या, दुनिया के बड़े-बड़े बहादुरों के बाप की भी वीरता कुछ काम नहीं कर सकती, क्योंकि भला कौन ऐसा माई का लाल होगा जो दो अङ्गुल की लँगोटी बाँधे, वह भी भीगी हुई, अपनी सबसे प्यारी, प्राणप्यारी, हृदयेश्वरी, दिलरुबा, सनम, जानेमन, वग़ैरा-वग़ैरा के सामने जाना पसन्द करेगा ? जब शक्ल दिखने क़ाबिल होती है तभी किसी को मुँह दिखाते भी बन पड़ता है। मगर यहाँ तो सूरत पर फटकार बरस रही थी ; वह भी छाती फाड़ कर। कहाँ तो मैं उनकी एक झलक के लिए तरस रहा था, तड़प रहा था और बेमौत मर रहा था और कहाँ अब इस डर से मरने लगा कि कहीं उनकी नज़र मुझ पर न पड़ जाय। वाह री मेरी कम्बख़्ती ! जो न करे वह थोड़ा है।

इतने में कोठे पर मेरा कुत्ता जैक भूँक उठा। चौंक कर जो मैंने ऊपर निगाह की तो देखा कि आप छज्जे पर से झाँक रहे हैं। पहले शायद उसने मुझे कोई पत्थर की मूर्ति समझा था, जो वह एक ही दफ़े भूँक कर रह गया। मगर अब मेरे चौंक कर ऊपर ताकने से मुझे हिलता-डुलता पाकर उस कम्बख़्त ने भूँक-भूँक कर आसमान सर पर उठा लिया। भीतर "कौन है, क्या है, बाहर जाकर देखो" की चिल्लाहट गूँज उठी और बाहर नौकर भी कुनमुना उठे। मैं इस सूरत में नौकरों के सामने किस तरह खड़ा रह सकता था ? इसलिए हाय ! मुझे वहाँ से सर पर पाँव रख कर अपनी आबरू बचानी

ही पड़ी। तो भी कम्बख़्तों ने मेरा पीछा न छोड़ा। दौड़ कर इन हरामज़ादे नौकरों ने दो-एक डण्डों से मेरी पीठ पर वार कर ही तो दिया। ख़ैरियत हो गई कि मुझे उस वक़्त घबड़ाहट में इसका पता न चला, वरना उसी वक़्त उन सालों को 'डिसमिस' कर देता। क्योंकि मालिक पर इस तरह हाथ छोड़ना भला कितनी बड़ी बदतमीज़ी है, आप ही समझिए।

मैं सरपट भागता जाता था कि इतने में मेरे पीछे कुत्ते की भूँकने की आवाज़ सुनाई पड़ी। घूम कर देखा कि नौकर तो सब पीछे छूट गए, मगर 'जैक' मुझ पर हमला करने के लिए छलाँगें मारता इस चाँदनी रात में दौड़ता आ रहा है। हाय! हाय! इस साले शिकारी कुत्ते को जो मैं जानता कि बड़ा होने पर मेरा ही शिकार करेगा तो भूल कर भी उसे न पालता। मगर तक़दीर की दाँव-पेंच ही ऐसी होती है कि दिन बिगड़ते हैं तो अपने भी बेगाने हो जाते हैं। उस पर मुसीबत यह हुई कि मैं अपनी बदहवासी में अपने कुत्ते का नाम भी भूल गया। तब किस तरह उसे चुचकार-पुचकार कर अपनी जान बचाता? समझ लिया कि अब मेरा ख़ात्मा होगया। इसलिए श्रीमती जी का नाम लेकर मैंने किचकिचा कर आँखें बन्द कर लीं और सूखे लट्ठे की तरह खड़ा हो गया।

मगर भई, आदमियों से जानवर हज़ार गुने अच्छे होते हैं। क्योंकि इनमें अपने-बेगाने और भले-बुरे की पहचानने की तमीज़ तो होती है, इसलिए जैक मेरे पास पहुँच कर बजाय काटने के, उछल-उछल कर मेरा मुँह चाटने लगा। उस वक़्त मेरे जान में जान आई। मगर भूख और थकावट के मारे मैं खड़ा न रह सका। भद् से वहीं ढेर हो गया और रो-रोकर कुत्ते से मैं कहने लगा—"मेरे प्यारे जैक, मेरे अच्छे दोस्त, जाओ, घर से एक रोटी का टुकड़ा ले आओ। बला से तुम कुत्ते हो, मगर इस वक़्त जात-पाँत गई भाड़ में, मैं उसके पाखण्ड में पड़ कर भूखों मरना नहीं चाहता।"

मगर बेचारा जैक इसके जवाब में ख़ाली दुम हिला कर कूँ-कूँ करने लगा। इतने में थिएटर वाली सड़क से एक बाइसिकिल आई। जैक एक प्यार के लहज़े में उसके पीछे भूँकता हुआ दौड़ा। बाइसिकिल वाले ने चाल धीमी करके कहा—अरे जैक! तुम इतनी रात को घर के बाहर कैसे हो? चलो मेरे पीछे-पीछे चले आओ।

मैंने आवाज़ से पहचान लिया कि यह तो मेरा चचेरा भाई मदन है, जो मेरी श्रीमती जी को ससुराल से बिदा कराने गया था। मालूम होता है, यह इस वक़्त थिएटर देख कर लौटा है। मैंने बहुत-कुछ चाहा कि उसे पुकार कर अपना परिचय दूँ और अपने पास बुलाऊँ, मगर मुँह से आवाज़ न निकली। और बाइसिकिल और कुत्ता दोनों दूर निकल गए। मगर थोड़ी ही देर के बाद जैक फिर लौट आया। मदन की सीटी पर तुरन्त पलट पड़ा। मगर वैसे ही फिर मेरे पास दौड़ आया। जब किसी तरह जैक मुझे छोड़ कर मकान अकेला न जा सका, तो मदन उसे मना ले जाने के लिए झख मार कर मेरे पास तक आया और उसने आते ही मुझे घुड़की बताई। मैंने जवाब में क्या कहा, यह तो याद नहीं, मगर इतना मालूम है कि उसने चौंक कर पूछा—अरे! श्यामू दादा, आप हैं? वाह! आपने तो ख़ूब स्वाँग बना रक्खा है कि पहचान ही नहीं पड़ते।

मैं—ले अब जले पर निमक न छिड़को। पहले मुझे तुम कहीं से कुछ खाने को ला दो। मारे भूख के मर रहा हूँ, उठा नहीं जाता, और बदन ढकने के लिए कुछ कपड़ा दो, ताकि मुँह तो किसी को दिखा सकूँ तब बातचीत करना।

उसने बहुत-कुछ इधर-उधर की बातें करने की कोशिश की, मगर मैं अपनी ज़िद पर अड़ा ही रहा कि बिना कुछ खाए और कपड़े पहने मैं बोलूँगा नहीं और न यहाँ से एक इञ्च हटूँगा। तब वह बाइसिकिल पर थिएटर वाली सड़क पर लौट पड़ा। शायद कुछ नाश्ता-पानी लाने की नीयत से, क्योंकि थिएटर के पास इस वक़्त भी दूकानें खुली रहती हैं। आख़िर यही बात निकली। क्योंकि थोड़ी देर में वह अपने रूमाल में बाँधे पूड़ी-तरकारी, मिठाई और जेब में दो बोतल सोडा-वाटर के लेते आया। उफ़! उस वक़्त मैं खाने पर किस तरह झपटा हूँ कि क्या कोई मरभुक्खा कुत्ता झपटेगा!

मैं उन पूड़ियों के आगे दीन-दुनिया सब कुछ भूल गया। अगर कोई बात याद रही, तो सिर्फ़ यही कि बस अब थोड़ी ही देर में अपनी प्राण-प्यारी से नहा-धोकर और कपड़े पहन कर मिलूँगा। जब ज़रा भूखे पेट में अनाज की कुछ गर्मी पहुँची और आँख उठा कर देखा तो मालूम हुआ कि मदन वहाँ पर नहीं है। अब तो उसके और अपने दोनों के ऊपर बड़ा ग़ुस्सा मालूम हुआ।

क्योंकि वह मुझे अकेला ही छोड़ कर चला गया, मुझे कपड़े पहना कर मकान ले चलने का उसने कुछ भी इन्तज़ाम नहीं किया। पेट की ज्वाला तो देखी, मगर कम्बख़्त ने मेरे हृदय की ज्वाला नहीं देखी—जो बिना श्रीमती जी से मिले भला कब शान्त हो सकती है? अपने ऊपर इसलिए बिगड़ रहा था कि मैंने उसका कोट क्यों नहीं ले लिया, न पूरा धड़ सही, कम से कम ऊपर का हिस्सा तो कुछ ढक जाता। तब किसी तरह अपने मकान के अन्दर घुसने की कुछ हिम्मत भी कर सकता था, वरना इस सूरत में जहाँ दरवाज़े के पास पहुँचा तहाँ फिर वही मुसीबत और वही डण्डेबाज़ी शुरू हो जायगी।

चलो, बड़ी बात कि मकान की तरफ़ से बाइसिकिल आती दिखाई दी। मैं जल्दी से सोडा-वाटर से हाथ मुँह धोकर उठ खड़ा हुआ कि आने वाला चाहे कोई भी हो, उसका कपड़ा बिना छीने उसे जाने न दूँगा। ख़ैरियत हो गई कि वह मदन ही था और वह अपने 'लगेजकैरियर' पर कपड़ों का बण्डल भी बाँधे था। उसमें अपने कपड़े देख कर मैं निहाल हो गया और दो ही मिनट में चट धोती, क़मीज़, कोट वग़ैरह पहन कर मैं भलामानुस बना गया। अब क्या पूछना था। बाछें खिल गईं और मैं श्रीमती जी से मिलने के लिए बेताब हो गया। इसलिए मदन का हाथ पकड़ कर मैं बड़ी तेज़ी से अपने मकान की तरफ़ लपका। क्योंकि अब उनसे मिलने में भला क्या कसर थी? बासी भात में भी अल्ला मियाँ का साझा? नौकरों की ऐसी-तैसी। अब तो वह लोग मुझे पहचान कर अदब से अलग हट जायँगे और मैं झट अन्दर पहुँच कर पहले दाढ़ी बनाऊँगा। उसके बाद मुँह पर साबुन रगड़-रगड़ के ख़ूब नहाऊँगा, फिर अपनी श्रीमती जी के चरणों पर चट नाक रगड़ूँगा। वाह रे मैं! उफ़ ओह! इतनी मुद्दतों के बाद जाकर तक़दीर जगी? इन मनसूबों में मैं अपना सारा दुखड़ा भूल गया। क्यों न हो भाई, प्रेयसी से मिलने की ख़ुशी ऐसी ही होती है, और प्रेयसी भी कैसी, जिससे ज़िन्दगी भर अब तक मैं मिलने को तरसता ही रहा। मगर इतने में मदन ने मुझे रोक कर कहा—अरे! उधर कहाँ चले? ज़रा बात तो सुनिए।

मैं—बात पीछे करना। पहले मकान पर तो चलने दे।

मदन—मकान? क्या अपने साथ घर वालों पर भी आफ़त ढाइएगा?

मैं—आफ़त कैसी?

मदन—क्या आपको नहीं मालूम कि इञ्जीनियर साहब की मोटर-बाइसिकिल चोरी करने, सड़कों पर बकरियाँ कुचलने, एक गाड़ीवान को अधमरा कर देने, एक मेम साहबा को बुरी तरह घायल कर देने और किसी औरत को भगा ले जाने की इल्लत में पुलिस आपको ढूँढ़ रही है? घण्टे-घण्टे बाद मकान पर आकर आपका पता पूछा करती है।

मेरी हक्की-बक्की बन्द हो गई और मैं रुवासा होकर उसका मुँह निहारने लगा। उसने फिर कहना शुरू किया—सुनिए! जैसे ही मोटर-बाइसिकिल की वारदात शहर भर में फैली, वैसे ही इञ्जीनियर साहब ने अपनी जान बचाने की ग़रज़ से चट थाने में रिपोर्ट कर दी कि मेरी बाइसिकिल कोई चुरा ले गया। उनकी बाइसिकिल तो न जाने कैसे उनके पास फिर पहुँच गई और वह इन वारदात की ज़िम्मेदारियों से अपने को बरी पाकर चुप हो गए, मगर पुलिस वालों ने यह पता लगा लिया है कि चोर आप ही हैं और आप ही ने यह सब आफ़तें ढाई हैं, इसलिए घड़ी-घड़ी कॉन्सटेबिल आकर आपकी ख़ातिर सब घर वालों को तङ्ग किया करता है। चाचा जी इस मामले को दबा देने के लिए सैकड़ों ख़र्च कर चुके हैं और कर रहे हैं। बस, वह गाड़ीवान, जिसकी गाड़ी फ़िटन से लड़ कर उलट जाने से बुरी तरह अधमरा हो गया है, अभी अस्पताल में कराह रहा है। अगर वह अच्छा हो गया और आपका पता पुलिस को कुछ दिनों बाद मिला तब तो मामला रुपयों के ज़ोर से दबा ले जाने की उम्मीद पाई जाती है। इसलिए ईश्वर से दोआ मनाइए कि वह अच्छा हो जाय और आप तब तक एकदम लापता हो जाइए। जब आप 'देशबन्धु' अख़बार में मेरा यह विज्ञापन देखें कि मुझे एक अध्यापिका की ज़रूरत है, तब आप समझ जाइएगा कि मामला दब गया और उस वक्त मज़े से आप आइएगा। मगर अभी तो आप फ़ौरन परदेस चले जाइए और वहाँ कुछ दिनों भेष बदल कर अपने को छिपाए रहिए। इसीलिए मैं चुपचाप चाची से एक सख़्त ज़रूरत का बहाना करके आपके लिए ७०) लाया हूँ। किसी तरह आप अपना इससे गुज़र-बसर कीजिए; क्योंकि घर में और ज़्यादा रुपए हैं ही नहीं।

(शेष मैटर ५६० पृष्ठ के दूसरे कॉलम में देखिए)



कुमारी प्राणुज्ञम ठाकोर, एम० ए०

कुमारी ठाकोर उन इनी-गिनी शिक्षित महिलाओं में हैं, जिनकी हमारे देश को आज आवश्यकता है। अपने देश में समुचित शिक्षा का प्रचार और शिक्षा-प्रणाली में सुधार कराना ही आपके जीवन का उद्देश है। इसी अभिनन्दनीय उद्देश को सामने रख कर देवी जी सन् १९१९ में इङ्गलैण्ड उच्च शिक्षा प्राप्त करने गई थीं। डॉक्टर मॉन्टेसरी द्वारा आविष्कृत मॉन्टेसरी शिक्षा-प्रणाली आपको बहुत पसन्द आई और इन्हीं डॉक्टर महोदया की अध्यक्षता में आपको जो प्रत्यक्ष अनुभव हुए उसकी वे सदा प्रशंसा करती हैं। आपने थोड़े ही समय में अपना अध्ययन पूर्ण करके अध्यापन कार्य का सर्वोच्च डिप्लोमा (Diploma of the Montessori Training Course for Teachers) प्राप्त कर लिया और सन् १९१९ के अन्त में आपने लन्दन-विश्वविद्यालय (University of London) में अध्ययन आरम्भ किया और वहीं से बी० ए० तथा सम्पादन-कला की परीक्षाएँ (Certificate of Journalism) सम्मान-सहित पास कीं। जून १९२३ में आप विश्व-भ्रमण के लिए विलायत से रवाना हुईं। समस्त यूरोप और अमेरिका की शिक्षा-सम्बन्धी प्रायः सभी विख्यात संस्थाओं का आपने निरीक्षण किया और शिक्षा-प्रणाली का अध्ययन भी। १९२६ के ही अन्त में आपको अमेरिका की शिक्षा-सम्बन्धी सर्वोच्च छात्रवृत्ति (Scholorship of the International Institute) प्रदान की गई। आपने अमेरिका के कोलम्बिया टीचर्स कॉलेज (Columbia Teachers College) की सर्वोच्च डिगरी प्राप्त कर साहित्य में एम० ए० की परीक्षा दी और उसमें भी सम्मान-सहित उत्तीर्ण हुईं। आपने अपने छात्र-जीवन में कई बार भारतीय सभ्यता और भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में सारगर्भित व्याख्यान देकर अमेरिका तथा इङ्गलैण्ड के सभ्य समाज के सम्मुख भारत का मुखोज्ज्वल किया है। हाल ही में आप भारत लौटी हैं। हम देवी जी का हृदय से स्वागत और उनकी मङ्गल-कामना करते हैं।

* * *

कुमारी बचुबेन लोटवाला

आप एक उच्च कोटि की शिक्षित महिला हैं। आप माननीय मिस्टर वी० जे० पटेल के साथ हाल ही में यूरोप-भ्रमणार्थ गई थीं। इस यात्रा ने देवी जी को जो अनुभव प्रदान किया है, उससे आप बहुत अधिक प्रसन्न हैं। आप बम्बई के म्युनिसिपल कॉरपोरेशन की सदस्या हैं और हाल ही में 'हिन्दोस्तान' नामक सुप्रसिद्ध दैनिक का सम्पादन-भार भी ग्रहण किया है। आपके भाग्य-शाली पिता श्री० आर० बी० लोटवाला, जिन्होंने इस उपयोगी पत्र का जन्म देकर भारत-माता की प्रशंसनीय सेवा की थी, सारा कार्य-भार अपनी पुत्री को सौंप दिया है, जिसे वे बड़ी उत्तमता से निबाह रही हैं। यह पहली ही महिला-रत्न हैं जिन्होंने इतने बड़े दैनिक पत्र का सम्पादन-भार ग्रहण कर भारतीय महिलाओं के समक्ष एक प्रशंसनीय आदर्श उपस्थित किया है। हम देवी जी की सफलता चाहते हैं।

* * *

श्रीमती हंसा मेहता, बी० ए०

'चाँद' के पाठकों से देवी जी अपरिचित नहीं हैं। आप भूतपूर्व बड़ोदा के दीवान और बीकानेर के वर्त्तमान प्राईम मिनिस्टर सर मनुभाई की आदर्श पुत्री हैं। आपने बम्बई-विश्वविद्यालय से सम्मान-सहित बी० ए० की परीक्षा पास करने के अतिरिक्त इङ्गलैण्ड में भी काफ़ी अध्ययन किया है। यूरोप और अमेरिका का आप ख़ूब भ्रमण कर चुकी हैं। आप बड़ी उच्च कोटि की लेखिका और नाट्यकार भी हैं, आपकी गल्पें-कहानियाँ भी बड़ी पसन्द की जाती हैं। आप समाज-सुधार के कार्य में बेहद दिलचस्पी लेती हैं, स्वयं नागर-ब्राह्मण होते हुए भी एक बनिया जाति के रत्न से अपना विवाह किया है। आपका शुभ नाम डॉक्टर जीवराज मेहता एम० डी० है। आप बम्बई की सुप्रसिद्ध भगिनी समाज की मन्त्रिणी और बम्बई (शहर) के स्कूल-कमेटी की सदस्या भी हैं। गुजराती महिलाओं की आप वास्तव में बड़ी सेवा कर रही हैं। बारदोली-आन्दोलन में आपने जो आदर्श कार्य किए हैं वह सर्वथा प्रशंसनीय हैं। देवी जी के इस आदर्श जीवन से आजकल की शिक्षित कही जाने वाली महिलाओं को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

* * *

श्रीमती शारदा दीवान, एम० ए०

आप बम्बई के सुप्रसिद्ध नर्मदल के नेता सर चिम्मनलाल सीतल-वाद—जो बम्बई-विश्वविद्यालय के वायस-चेन्सलर भी हैं—की आदर्श पुत्री हैं। आपने भारत की जन-संख्या की समस्या (Thesis on Population Problem in India) पर एक बड़ा ही विद्वत्तापूर्ण निबन्ध लिख कर भारतीय शिक्षित पुरुषों तक के दाँत खट्टे कर दिए थे। आपने सम्मान-सहित एम० ए० की परीक्षा पास की है और आजकल आप बड़े मनोयोग से बम्बई की बनिता-विश्राम-जैसी सुप्रसिद्ध और लोक-प्रिय संस्था की अवैतनिक मन्त्रिणी का कार्य कर रही हैं। आपके अधीन रह कर इस संस्था ने जो अभूतपूर्व उन्नति की है उसकी चर्चा हम 'चाँद' के किसी आगामी अङ्क में करेंगे। इस स्थान पर हम देवी जी के स्वार्थ-त्याग की प्रशंसा करते हैं और आपकी उत्तरोत्तर उन्नति चाहते हैं।

(५५८ पृष्ठ का शेषांश)

मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। मैंने लड़खड़ा कर कहा—और मेरी श्रीमती जी × × ×

मदन—उनका नाम न लो। मैंने घर में किसी से आपके आने का हाल नहीं बताया। सिर्फ़ उन्हीं से कहा। वह भी इस इरादे से कि शायद वह इस वक्त आपकी कुछ मदद करें, मगर कह कर पछताया।

मैं—हाँ-हाँ, बताओ, उन्होंने मेरे बारे में तुमसे क्या पूछा? भई, हाथ जोड़ता हूँ, उनसे ज़रा मुलाक़ात तो करा दो। चाहे जैसे बने। बाहर वाले पाख़ाने ही में मैं खड़े-खड़े उनसे दो बातें कर लूँगा। किसी के कानों-कान ख़बर न होगी। मैं सैकड़ों मील से उन्हीं की ख़ातिर पाँव-पैदल हज़ारों मुसीबतें झेलता आ रहा हूँ × × ×

मदन—देखिए, वक्त ख़राब न कीजिए। तीन बज चुके हैं। इसी तरह बातों में सुबह हो जायगी और आप पकड़ जाइएगा। इसलिए आप इस वक्त चुपके से चार बजे वाली गाड़ी से निकल जाइए। अभी वक्त है।

मैं—भई, मुझे उनसे मिलने में कुछ ही मिनट लगेंगे। क़सम खाकर कहता हूँ कि मैं बिलकुल ही छोटी मुलाक़ात करूँगा।

मदन—कहा था, मगर × × ×

मैं—मगर क्या? कहो-कहो भाई।

मदन—उनकी भौंहें सिकुड़ गईं। एकदम गर्म हो उठीं × × ×

मैं—मेरा आना सुन कर?

मदन—हाँ भाई!

मैं—अच्छा, बोलीं क्या, यह तो बताओ।

मदन—यही कि अपनी ऐसी-तैसी में जाएँ। उसी के साथ जाकर रहें जिस नानी को अपने साथ भगा ले गए थे। मैं अब उनका मुँह तक देखना नहीं चाहती।

ऐसी आवभगत इतनी मुसीबतों के बाद? उफ़! कलेजे में गोला चल गया। मैं वहीं टूटे पेड़ की तरह धम् से बैठ गया। अगर तक़दीर रूठे तो आदमी रोकर दुखड़ा हल्का करे, मगर जब वही मार रही हैं, तब हाय! मैं क्या करूँ?

(क्रमशः)



[शब्दकार तथा स्वरकार—श्री० किरणकुमार जी मुखोपाध्याय (नीलू बाबू)]

ठुमरी धानी (३ ताल)

स्थायी—गगरिया मोरि काहे गिराई मोहन,
बिनती करूँ छुल जिन कर मान।

अन्तरा—भयो पिया तुम निपट अनारी,
रोकत पनघट पै पर नारी,
निरखो गिरिधारी चितवत सखियन ॥

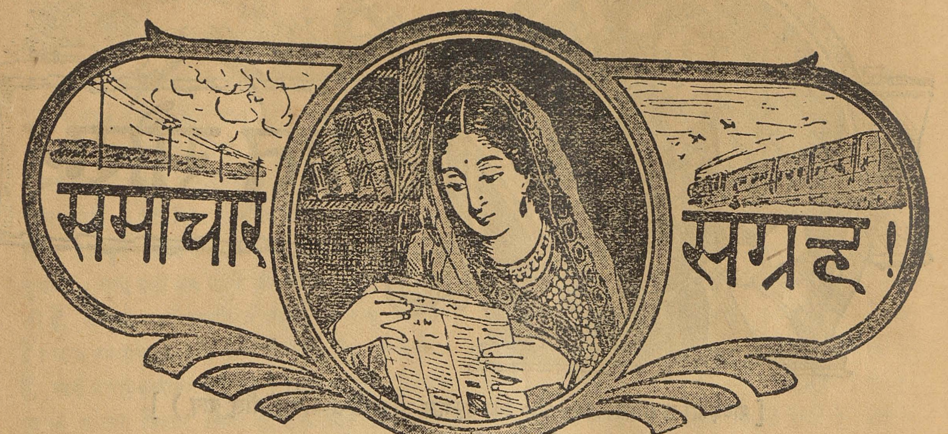
स्थायी

३				०				१				×			
क		क		°	क			क	क	क		क			
ग	म	नि	प	स	नि	प	म	ग	मग	सनि	स	ग	—	—	म
ग	ग	रि	य	मा	रि	का	हे	गि	राआ	इ	मों	ह	—	—	न
	क	क		क				क		क		°क	क		क
प	ग	ग	म	ग	—	म	प	ग	म	नि	प	सनि	पनि	पम	गस
वि	न	ती	क	रूँ	—	छु	ल	जि	न	क	र	मा	.,.	...	न

अन्तरा

	क			क	क		क			क		क		°	
प	ग	—	म	गम	पनि	पम	गम	प	प	नि	प	नि	—	स	—
भ	यो	—	पि	या	...	तु	... म	नि	प	ट	अ	ना	—	री	—
°		°	°	क	°	°क	°क	°	°क	°	°	क			
स	—	स	स	नि	स	ग	ग	स	ग	स	स	नि	—	प	—
रो	—	क	त	प	न	घ	ट	प	ए	प	र	ना	—	री	—
क		क		क		क			क			क		क	
ग	म	ग	स	नि	स	ग	म	प	नि	प	म	ग	म	ग	स
नि	र	खो	ई	गि	रि	धा	री	चि	त	व	त	स	खि	य	न

नोट—इस राग में ग और नि सर्वदा कोमल लगते हैं; रे और ध वर्जित हैं।



मैसूर महिला-कॉन्फ्रेन्स

गत ६ ठी दिसम्बर को बङ्गलोर के बानी-विलास इन्स्टीक्यूट में मैसूर महिला-कॉन्फ्रेन्स का तृतीय अधिवेशन मैसूर-दीवान की धर्मपत्नी श्रीमती मिरज़ा इस्माईल के सभापतित्व में हुई थी। सभा की उपस्थिति बड़ी सन्तोषजनक थी। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि हर जाति की स्त्रियाँ बहुतायत से शरीक हुई थीं। (१) स्त्रियों को वोट देने का अधिकार दिया जाना चाहिए (२) उनके क़ानूनी अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए प्रचलित क़ानून में सुधार होना चाहिए (३) बाल-विवाह के विरुद्ध प्रत्येक राज्य तथा भारतीय सरकार को कड़ा क़ानून बना कर अपनी सुधारात्मक प्रवृत्ति का परिचय देना चाहिए, आदि-आदि अनेक महत्वपूर्ण तथा उपयोगी प्रस्ताव पास हुए। एक बड़ी महत्वपूर्ण बात यह हुई कि समस्त मैसूर-राज्य की लगभग २,००० महिलाओं का हस्ताक्षरित प्रार्थना-पत्र महाराजा बहादुर मैसूर की सेवा में इस आशय का भेजा गया है कि स्त्रियों की उन्नति के सारे प्रयत्न बाल-विवाह प्रथा के कारण नष्ट हो रहे हैं और उन्हें बड़ी अड़चनों का सामना करना पड़ रहा है, इसलिए मैसूर-राज्य में बाल-विवाह के विरुद्ध शीघ्र ही एक कड़ा क़ानून पास होना चाहिए। हमें आशा है, मैसूर के यशस्वी महाराजा बहादुर अवश्य इस नैतिक सुधार की ओर ध्यान देने की कृपा करेंगे।

* * *

देहली का प्रान्तीय महिला-सम्मेलन

विगत २४ नवम्बर को श्रीमती जे० सी० चैटर्जी के सभापतित्व में दिल्ली प्रान्तीय महिला-सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन देहली में बड़ी सफलतापूर्वक हुआ, जिसमें कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए। एक बड़ा प्रशंसनीय प्रस्ताव यह पास हुआ कि भारतीय सरकार से प्रार्थना की जाय कि सन् १९३० के बाद इन्ट्रेन्स की परीक्षा में किसी भी विवाहित विद्यार्थी को न बैठने दिया जाय, ताकि बाल-विवाह का प्रचार रुक सके। एक विदेशी सरकार ऐसा करेगी, हमें इसमें सन्देह है। जो भारतीय सरकार बाल-विवाह-जैसे उपयोगी बिल का खुला विरोध कर सकती है, उससे यह आशा करना सर्वथा व्यर्थ है। सभानेत्री महोदया ने पिछले वर्षों में स्त्री-शिक्षा के प्रचार में जो असाधारण उन्नति हुई है, उस पर बड़ा सन्तोष प्रकट किया। आपने कहा कि दो-तीन वर्ष पूर्व देहली में लड़कियों के लिए केवल ३ छोटे-छोटे स्कूल थे, किन्तु आज दो कॉलेज, तीन हाईस्कूल और लगभग ५० अन्य स्कूल हो गए हैं। पहले स्त्रियाँ घर की चहारदीवारी में सदा बन्द रहती थीं, किन्तु अब ये सार्वजनिक कार्यों में बहुत-कुछ भाग लेने लगी हैं। अगले वर्ष आपने और भी अनेक सुधारों में स्त्रियों को हाथ बटाने के लिए आह्वान किया। परमात्मा इन देवियों के स्तुत्य कार्य में सहायक हों।

* * *

पारवार जैनों में विधवा-विवाह

बम्बई के सुप्रसिद्ध हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय के अध्यक्ष श्री० नाथूराम जी प्रेमी का परिचय हिन्दी-संसार को कराने की आवश्यकता नहीं। आप सच्चे समाज-सुधारक हैं। हमें यह जानकर वास्तव में बड़ा हर्ष हुआ कि आपने अपने भाई श्री० नन्हेंलाल का शुभ-विवाह कराघाट (सागर, सी० पी०) की एक बाल-विधवा बालिका से जैन-रीत्यनुसार कराया है। यह शुभ-विवाह ९वीं दिसम्बर को बड़े समारोह से सम्पन्न हुआ। विवाह में लगभग ५०० जैनी तथा अन्य जातियों के प्रतिष्ठित व्यक्ति सम्मिलित हुए थे। इस शुभ अवसर पर विधवा-विवाह की आवश्यकता पर कई विद्वानों के प्रभावशाली भाषण भी हुए। नवयुवकों को उत्साहित किया गया कि सारहीन रूढ़ियों की पोषक पुरानी टकसाल की पञ्चायतों की ज़रा भी परवा न कर, उन्हें विधवा-विवाह का प्रचार कर अपनी जाति के खोखलेपन को दूर करना चाहिए। हम नव-दम्पति को हृदय से शुभाशीर्वाद देते हैं और प्रेमी जी को बधाई !

* * *

मद्रासी महिलाओं की विराट् सभा

विगत २४ नवम्बर को मद्रास-प्रान्त की स्त्रियों की एक विराट् सभा मद्रास के गवर्नर की धर्मपत्नी लेडी गोशें के सभापतित्व में हुई। लेडी गोशें ने कहा कि इस समय भारत में इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि देश की नारी-शक्ति सजग होकर अपनी ज़िम्मेदारी को पहचाने और तदनुकूल कार्य करे, सुधार के सारे प्रयत्नों का यही सार है। मद्रास-प्रान्त के प्रधान मन्त्री डॉक्टर सुब्बारायन की धर्मपत्नी ने अपने सारगर्भित भाषण में कहा कि आज भारतवासियों को एक सङ्गठित और सबल जाति बनाने के लिए यह प्रथम सोपान है कि स्त्रियाँ पुरुषों के सारे कार्यों में हाथ बटावें। आपने कहा कि समाज-सुधार का तो सारा आन्दोलन स्त्रियों को अपने हाथ में ही ले लेना चाहिए और उसे सफल बनाना ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लेना चाहिए। अन्य कई उपयोगी प्रस्ताव भी पास हुए, स्त्रियों में एक विशेष उत्साह की झलक थी।

* * *

एक आदर्श विधवा-विवाह

दो वर्ष पूर्व श्रीमती गार्गी देवी स्थानीय क्रॉस्थवेट कॉलेज में पढ़ती थीं। बी० ए० तक पढ़ने के बाद उच्च शिक्षा प्राप्त करने आप विलायत गई थीं। और हमें यह जान कर प्रसन्नता हुई कि आपने लन्दन-विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की कठिन परीक्षा सम्मान-सहित पास की। डॉक्टरा गार्गी देवी लखनऊ के सुप्रसिद्ध रईस राय साहब ज्वालाप्रसाद अस्थाना की पुत्री हैं। आप बाल-विधवा थीं। हमें यह जानकर दोहरी प्रसन्नता हुई कि गत ६ठी दिसम्बर को प्रोफ़ेसर कृष्णकुमार माथुर से, जो स्वयं भी विलायत से पढ़ कर लौटे हैं और जो हिन्दू-विश्वविद्यालय में जीव-शास्त्र (Geology) के प्रोफ़ेसर हैं, आपका पुनर्विवाह बड़ी धूमधाम से हो गया। अनेक प्रतिष्ठित सज्जन इस आदर्श विवाह में सम्मिलित हुए थे। हमें शब्द नहीं मिलते, जिनसे हम ८० वर्ष के वयोवृद्ध राय साहब मुन्शी ज्वालाप्रसाद जी के इस क्रियात्मक समाज-सुधार की प्रशंसा कर सकें। निश्चय ही समस्त कायस्थ-समाज पर इस कार्य का ख़ासा प्रभाव पड़ेगा—कोरे व्याख्यानों की अपेक्षा कहीं अधिक !

* * *

श्रीमती गुलाबदेवी-अस्पताल

स्वर्गीय लाला लाजपतराय जी ने अपने जीवन-काल में अपनी माता श्रीमती गुलाब देवी जी के स्थायी स्मृति-स्वरूप लाहौर में स्त्रियों के क्षय-रोग की चिकित्सा के लिए एक विशाल अस्पताल उपरोक्त नाम से खोलने का निश्चय किया था, जिसके लिए ५ लाख रुपयों की आवश्यकता थी। स्वयं लाला जी ने एक लाख दिया था और ७५,००० अन्य प्रान्तों से दान-स्वरूप इकट्ठा कर लिया था और २०,००० देने के उन्हें वचन मिल चुके थे। एक ट्रस्ट के हाथ में इस उपयोगी अस्पताल का सारा भार सौंप कर लाला जी मरे हैं। अस्पताल में केवल स्त्रियों की चिकित्सा होगी और अछूत स्त्रियाँ ख़ास तौर से इससे लाभ उठा सकेंगी। लाहौर से कई प्रसिद्ध डॉक्टरों ने फ़राड के लिए अपील की है, हमें आशा है जनता इस परम पुण्य-कार्य में दान देकर अपना औचित्य पालन करेगी।

* * *

खत्रियों में विधवा-विवाह

हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि १२ वीं दिसम्बर को मेरठ में एक ढाई घर कपूर विधवा खत्री-बालिका का पुनर्विवाह देहली के लाला कन्हैयालाल मेहरोत्रा (ढाई घर) के पुत्र के साथ बड़े समारोह से सम्पन्न हुआ। विवाह के शुभ अवसर पर अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति सम्मिलित हुए थे। मेरठ के खत्रियों में यह पहला विधवा-विवाह था।

* * *

पाँच फ़ीट की अध्यापिका

अनेक पाश्चात्य देशों में, ख़ास कर इङ्गलैण्ड, अमेरिका और इजिप्ट आदि में, बालिकाओं को ही नहीं, बल्कि बालकों को पढ़ाने का काम महिलाएँ ही करती हैं। अभी हाल ही में शिक्षा-विभाग के अधिकारियों (New York Board of Education) ने निश्चय किया है कि भविष्य में पाँच फ़ीट से कम लम्बी स्त्री को अध्यापिका का पद नहीं मिला करेगा। अधिकारियों का कहना है कि बालक-बालिकाएँ नाटी स्त्रियों का रोआब (आतङ्क) नहीं मानतीं और इस प्रकार उनकी शिक्षा में बाधा पड़ती है। बोर्ड के इस फ़ैसले से वहाँ की स्त्रियों में—ख़ासकर नाटी स्त्रियों में—बड़ा असन्तोष फैल रहा है। उनका कहना है कि वे अपनी लम्बाई की कमी की पूर्ति अपने अन्य गुणों से कर सकती हैं।

* * *

एक कायस्थ-परिवार का आदर्श

काशी के सुप्रसिद्ध नेता श्री० सम्पूर्णानन्द जी के निकट सम्बन्धी श्री० महेन्द्रनाथ वर्मा महोदय का शुभ-विवाह, जो अभी तक अविवाहित थे, मुन्शी गणेशप्रसाद की बाल-विधवा पुत्री से उस दिन काशी में बड़े समारोह से हुआ है। शादी सनातन-धर्मानुसार हुई है। काशी के कायस्थ-समाज में यह पहला ही विधवा-विवाह सम्पन्न हुआ है। नगर के अनेक प्रतिष्ठित सज्जन विवाह में बड़े उल्लास से शरीक हुए थे। कन्या-पक्ष के अनेक सम्बन्धी, जो पिण्डरा (मध्य-प्रान्त) में थे, इस विवाह में शरीक होने को अच्छी संख्या में पधारे थे। हमें आशा है, यह विवाह कायस्थ-समाज में एक आदर्श उपस्थित करेगा और नवयुवकों को उनके कर्तव्य की ओर आकर्षित करने में सहायक होगा।

बारडोली में समाज-सुधार

बारडोली ताल्लुक़ा में जब से सरकारी अन्यायपूर्ण कर न देने का आन्दोलन चला है, तब से वहाँ के सार्वजनिक जीवन में एक विशेष क्रान्ति उत्पन्न हो गई है; और प्रगति को देखते हुए हमारा तो विश्वास है कि यह तब तक शान्त न होगी जब तक वहाँ पूर्ण रूप से राजनैतिक तथा सामाजिक सुधार न हो ले। बारडोली तथा इसके आस-पास के सभी ताल्लुक़ों की जनता ने शपथ खा ली है कि चाहे कुछ भी हो, १४ वर्ष की कम उम्र वाली कन्याओं का तथा १६ वर्ष से कम उम्र वाले बालकों का विवाह वे कदापि न होने देंगे। शायद हमें यह बतलाना न होगा कि कुछ दिन पहले तक बारडोली ताल्लुक़ा जहालत का केन्द्र समझा जाता था, जहाँ के लोग ९ वर्ष के भीतर ही कन्याओं का विवाह कर देना अपना परम धर्म समझते थे। जाति-पाँति के विरुद्ध भी बड़ा आन्दोलन हो रहा है।

* * *

भाई खड्गबहादुर की रिहाई

बड़ी व्यवस्थापिका के लगभग सभी सदस्यों ने वायसराय महोदय की सेवा में इस आशय का एक मेमोरियल दिया था कि स्त्रियों का सम्मान-रक्षा के लिए ही वीर खड्गबहादुर ने नर-पिशाच हीरालाल की हत्या की थी—उसने किसी व्यक्तिगत स्वार्थ से यह कार्य नहीं किया था। मातृत्व का मुखोज्ज्वल करना ही इस वीर-युवक का ध्येय था, इसलिए उसे अब सरकार को क्षमा कर अपनी उदारता का परिचय देना चाहिए। वायसराय महोदय ने बहुत दिनों तक सोच-विचार कर एसेम्बली के मेम्बरों को विश्वास दिलाया है कि मार्च १९२९ तक इस पर विचार किया जायगा। हमें समाचार मिला है कि आगामी मार्च में भाई खड्गबहादुर, बी० ए० अवश्य कारागार से मुक्त कर दिए जाएँगे। हमारा विचार है, कलकत्ते में राष्ट्रपति के स्वागत की भाँति इस वीर युवक का भी अपूर्व स्वागत होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं हुआ तो यह व्यक्तिगत ही नहीं, भारतीय मातृत्व का अपमान होगा।

तार का पता:—"गोल्डमाइन" कलकत्ता टेलीफ़ोन नं०—बड़ा बाज़ार १५९०, कलकत्ता

सोना चाँदी और जवाहरात के ज़ेवरों का

अपूर्व संग्रह-स्थान

[इस प्रतिष्ठित फ़र्म के सञ्चालकों से हमारा पूर्ण परिचय है। यहाँ किसी प्रकार का धोखा होगा, इस बात का स्वप्न में भी भय न करना चाहिए। सारा काम सञ्चालकों की देख-भाल में सुन्दर और ईमानदारी से होता है ; हमें इसका पूर्ण विश्वास है।

—सम्पादक 'चाँद']

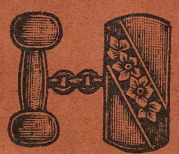
कुछ मन लुभाने वाली फ़ैन्सी चीज़ों पर ध्यान दीजिए !

बिजली की तरह चमकीले बेटर सोने का और मोती, माणिक, हीरे, पन्ने का न्यू डिज़ाइन के नाना प्रकार के हार और नेकलेस

चमकीले आइनों को मात करने वाली बेटर सोने की और जवाहरात की निहायत नफ़ीस और डायमण्ड कट की हर एक क़िस्म की चूड़ियाँ













पुष्पों से आकर्षक, दीपक से भी भड़कीला उम्दा से उम्दा कड़ा; तारा सा चमकता हुआ ईयरिङ्ग और प्रेम में वृद्धि करने वाली सुन्दर अँगूठियाँ

गले का अनुपम शृङ्गार, बिजली सी भड़कीली चित्ताकर्षक सीकलियाँ, हाथ और गले का मनोरञ्जक बटन

और

चाँदा के हाई-पॉलिश के हर एक क़िस्म के बर्तन—जैसे थाली, लोटा, गिलास, कटोरा, गङ्गासागर, कुञ्जा, ताँबड़ी, पञ्चपात्र, कप-सोसर्स, पहलदार कटोरा, टिफ़िन-बॉक्स,

और

अतरदान, गुलाबपास, फ़्लावर वास, पानदान, सिंहासन, फ़ुवारा, ग्लास्ट्रे वग़ैरह हमारी नोवेल्टी है।

पताः—मुरारजी गोविन्दजी जौहरी,

पोस्ट-बॉक्स ६७९३, १५६ हैरिसन रोड, कलकत्ता

चाँदी और सोने का विशाल सूचीपत्र मुफ़्त। डाक-ख़र्च के लिए चार आने का टिकट भेजिए।

लूटो ! ६१ इनाम लूटो !!

दौलत का ख़ून ! सिर्फ़ नाम के लिए

३ रु० १५ आ० में ६१ इनाम और १२ डिब्बी दाद की दवा

इनाम के देखते ही दिल फड़क उठेगा

जिनका ऑर्डर ३० इनामी चीज़ों का आ चुका है, उनको भी इनाम में ६१ ही चीज़ें भेजी जायँगी



३।।।≡) में १ दर्जन दाद की डिब्बी ख़रीदने पर ऊपर के ६१ इनाम। फ़ैशनेबुल द्वायरिष्ट वाच और पॉकेट वाच भी इनाम !

दाद कैसा ही पुराने से पुराना और ख़राब से ख़राब क्यों न हो, बग़ैर किसी जलन के २४ घण्टे में जड़ से मिटा देता है। इनामी चीज़ें :—

फ़ैशनेबुल द्वाय पॉकेट वाच, घड़ी की चेन, अँगूठी, बढ़िया ताश, झुनझुना, सूता की गुल्ली, सुन्दर खिलौना, सुन्दर सुइज़ बण्डल, ख़ूबसूरत नगीने वाली अँगूठी, फ़ैशनेबुल चश्मा, जलछवी, क़ीमती इत्र की शीशी, पानडब्बी, बुरुश, जेन्टिलमैन फ़ाउन्टेन पेन, बढ़िया रूमाल, क़ैंची, शीशी, कङ्घा, ४० तमाशे वाला बड़ा बाइस्कोप, चाक़ू, जलछवी, इञ्जिन, बटन, कफ़ के बटन, बाली, पियानो बाजा या जर्मनी हारमोनियम, साबुन, जापानी, खिलौना, पेन्सिल, पिस्तौल, बाइस्कोप, रबड़ की गेंद, बाँसुरी, बेंदी का डब्बा, मनीबेग, सिर में लगाने का सुन्दर काँटा, चम्मच, चाबी, मज़बूत ताला, उस्तरा, दूध या चाय छानने का नया यन्त्र, सेफ़्टीपेन, घुँघरू, कान का बुन्दा, गोली, तेल की शीशी, तमाशे की गेंद, कान का फूल, अटोमेटिक ख़ूबसूरत बतख़, अटोमेटिक मसख़रा, चिमटी की रिङ्ग, विचित्र जिभी, क्लीप, फूलदार सेफ़्टी पेन, बढ़िया निब, मज़बूत गाटर, पेपर सेफ़्टी पेन, हजामत बनाने का सेफ़्टी रेज़र, रङ्गीन फ़ीता, द्वायरिष्ट वाच, ६१ वाँ हँसी का गोल गुप्पा। मँगाने वाले पता साफ़-साफ़ लिखें।

नोट—ध्यान रहे कि पार्सल के साथ सूचना-पत्र साथ जायगा, ६१ चीज़ों से कम का पार्सल वापस कर दें।

पता—फ़्रेण्ड्स ऑफ़ इण्डिया, २८१ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता

हृदय में एक बार ही क्रान्ति उत्पन्न करने वाला मौलिक सामाजिक उपन्यास

प्रकाशित हो गया ! **अपराधी** प्रकाशित हो गया !!

[ले० श्री० यदुनन्दनप्रसाद जी श्रीवास्तव]

G. P. Srivastava, B. A., LL. B., *writes from Gonda.*

I happened to read your publication—Sri Jadunandan Prasad Srivastava's "APRADHI." Though a fiction, yet it is teeming with bitter realities. The author has cleverly depicted 'Human frailties' 'Social weaknesses' & 'Circumstantial effects' in their true colour with touches of psychological truths, which are of greater importance indeed.

सच जानिए, अपराधी बड़ा क्रान्तिकारी उपन्यास है। इसे पढ़कर आप एक बार टॉल्सटॉय के "रिज़रेक्शन" विक्टर ह्यूगो के "लॉ मिज़रेबुल" इबसन के "डॉल्स हाउस" गोस्ट और ब्रियो का "डैमेज़्ड गुड्स" या "मेटरनिटी" के आनन्द का अनुभव करेंगे। किसी अच्छे उपन्यास की उत्तमता पात्रों के चरित्र-चित्रण पर सर्वथा अवलम्बित होती है, और इस उपन्यास के चरित्र-चित्रण में सुयोग्य लेखक ने वास्तव में कमाल कर दिया है। उपन्यास नहीं,

यह सामाजिक कुरीतियों और अत्याचारों का जनाज़ा है !!

सच्चरित्र, ईश्वर-भक्त विधवा बालिका सरला का आदर्श-जीवन, उसकी पारलौकिक तल्लीनता, बाद को व्यभिचारी पुरुषों की कुदृष्टि, सरला का बलपूर्वक पतित किया जाना, अन्त को उसका वेश्या हो जाना, यह सब ऐसे दृश्य समुपस्थित किए गए हैं, जिन्हें पढ़कर आँखों से आँसुओं की धारा बह निकलती है।

इधर सरला के वृद्ध चचा का षोड्शी बालिका गिरिज़ा से विवाह कर नरक-लोक की यात्रा करना और गिरिज़ा का स्वाभाविक पतन के गह्वर में गिरना, कम करुणाजनक दृश्य नहीं है।

रमानाथ नामक एक समाज-सुधारक नवयुवक के प्रयत्न पढ़कर नवयुवकों तथा नवयुवतियों की छाती एक बार फूल उठेगी !! प्रत्येक उपन्यास-प्रेमी तथा समाज-सुधार के पक्षपाती को यह पुस्तक पढ़कर लाभ उठाना चाहिए। छपाई-सफ़ाई सुन्दर, समस्त कपड़े की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २॥) रु०; स्थायी तथा 'चाँद' के ग्राहकों से १॥।=); डाक-व्यय अलग। पुस्तक पर रङ्गीन Protecting Cover भी चढ़ा है ! पुस्तक हाथोंहाथ बिक रही है। आज ही एक प्रति मँगा लीजिए, नहीं तो फिर दूसरे संस्करण की राह देखनी होगी।

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

६,००० प्रतियाँ हाथोंहाथ बिक चुकी हैं !!

तीसरी बार ! **प्राणनाथ** तीसरा संस्करण !!

लेखक—

लम्बी दाढ़ी, नाक में दम, मार-मार कर हकीम, लतखोरी लाल, आदि-आदि अनेक पुस्तकों के रचयिता—हास्यरस के प्रधान लेखक

श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०

इस सुन्दर उपन्यास की उत्तमता का अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसकी ६,००० प्रतियाँ हाथोंहाथ बिक चुकी हैं और नित्य माँगें चली आ रही हैं ! वह चीज़ है, जिसे पढ़कर आपको अपनी सामाजिक स्थिति पर घण्टों विचार भी करना होगा और सामाजिक सुधार के क्षेत्र में अपने को उतारने की शपथ खानी होगी। पहले संस्करण का मूल्य २॥।) था, पर केवल प्रचार की दृष्टि से इसे घटा कर २॥) कर दिया गया है, छपाई-सफ़ाई दर्शनीय हुई है। पुस्तक सजिल्द है। आज ही एक प्रति मँगा लीजिए। स्थायी ग्राहकों से मूल्य केवल १॥।=)

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

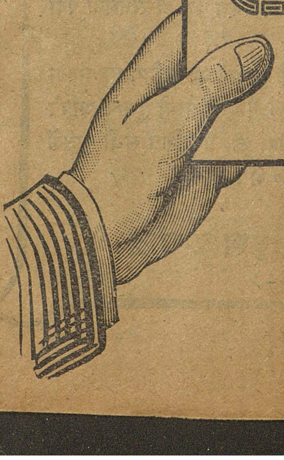
केवल थोड़ी सी प्रतियाँ शेष बची हैं, फ़ौरन मँगा लीजिए !

अफ़्रिका-प्रवासी अफ़्रिका-प्रवासी

भाई भवानीदयाल जी संन्यासी लिखित

दक्षिण अफ़्रिका के मेरे अनुभव

दक्षिण अफ़्रिका के प्रवासी-भारतवासियों की नरक-यातना की कहानी आजकल प्रत्येक समाचार-पत्र में छप रही है। बड़े-बड़े भारतीय नेता इनके उद्धार के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न कर रहे हैं। महात्मा गाँधी, मि० सी० एफ़० एण्ड्र्यूज़, मि० पोलक आदि बड़े-बड़े नेताओं ने इन प्रवासी-भाइयों की करुण-स्थिति देखकर खून के आँसू बहाए हैं। पं० भवानीदयाल जी (सम्पादक 'हिन्दी') ने अपनी सारी ज़िन्दगी ही इन अभागे प्रवासी-भाइयों के सुधार में बिताई है। संन्यास ले चुकने पर भी आपको चैन नहीं पड़ा, आप फिर दक्षिण अफ़्रिका गए हैं। इस पुस्तक में आपके निजी अनुभवों का समावेश है। पुस्तक बड़ी रोचक है। पढ़ने में अच्छे उच्च-कोटि के उपन्यास का आनन्द आता है। इस एक पुस्तक को पढ़ लेने से सारे अफ़्रिका की सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक स्थिति का सहज ही दिग्दर्शन हो जाता है, और वहाँ के स्थायी गोरों की स्वार्थपरता और धन-लोलुपता एवं अन्याय-प्रियता का अच्छा पता लग जाता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रवासी भारतीयों की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति जानने के लिए यह पुस्तक दर्पण-स्वरूप है। पुस्तक सजिल्द है और Protecting Cover भी लगाया गया है। मूल्य लागत मात्र केवल २॥) रक्खा गया है। स्थायी ग्राहकों से १॥।=); प्रत्येक स्त्री-पुरुष को पुस्तक एक बार अवश्य पढ़कर अपनी ज्ञान-वृद्धि करनी चाहिए।



व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय,
इलाहाबाद

विधवा-विवाह मीमांसा

[नवीन संशोधित संस्करण]

[ले० श्री० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय, एम० ए०]

यह महत्वपूर्ण पुस्तक प्रत्येक भारतीय गृह में रहनी चाहिए। इसमें नीचे लिखी सभी बातों पर बहुत ही योग्यतापूर्ण और ज़बरदस्त दलीलों के साथ प्रकाश डाला गया है :—

(१) विवाह का प्रयोजन क्या है? मुख्य प्रयोजन क्या है और गौण प्रयोजन क्या? आजकल विवाह में किस-किस प्रयोजन पर दृष्टि रक्खी जाती है? (२) विवाह के सम्बन्ध में स्त्री और पुरुष के अधिकार और कर्त्तव्य समान हैं या असमान? यदि समानता है, तो किन-किन बातों में और यदि भेद है, तो किन-किन बातों में? (३) पुरुषों के पुनर्विवाह और बहुविवाह धर्मानुकूल हैं या धर्म-विरुद्ध; शास्त्र इस विषय में क्या कहता है? (४) स्त्री का पुनर्विवाह उपर्युक्त हेतुओं से उचित है या अनुचित? (५) वेदों से विधवा-विवाह की सिद्धि (६) स्मृतियों की सम्मति (७) पुराणों की साक्षी (८) अङ्गरेज़ी क़ानून (English Law) की आज्ञा (९) अन्य युक्तियाँ (१०) विधवा-विवाह के विरुद्ध आक्षेपों का उत्तर—(अ) क्या स्वामी दयानन्द विधवा-विवाह के विरुद्ध हैं? (आ) विधवाएँ और उनके कर्म तथा ईश्वर-इच्छा (इ) पुरुषों के दोष स्त्रियों को अनुकरणीय नहीं (ई) कलियुग और विधवा-विवाह (उ) कन्यादान-विषयक आक्षेप (ऊ) गोत्र-विषयक प्रश्न (ऋ) कन्या-दान होने पर विवाह वर्जित है? (ॠ) बाल-विवाह रोकना चाहिए, न कि विधवा-विवाह की प्रथा चलाना (ऌ) क्या विधवा-विवाह लोक-व्यवहार के विरुद्ध है? (ॡ) क्या हम आर्यसमाजी हैं, जो विधवा-विवाह में योग्य दें? (११) विधवा-विवाह के न होने से हानियाँ—(क) व्यभिचार का आधिक्य (ख) वेश्याओं की वृद्धि (ग) भ्रूण-हत्या तथा बाल-हत्या (घ) अन्य क्रूरताएँ (ङ) जाति का ह्रास (१२) विधवाओं का कच्चा-चिट्ठा।

इस पुस्तक में १२ अध्याय हैं, जिनमें क्रमशः उपर्युक्त विषयों की आलोचना की गई है। कई सादे और तिरङ्गे चित्र भी हैं। इस मोटी-ताज़ी सचित्र और सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३) रु० है, पर स्थायी ग्राहकों को पौने मूल्य अर्थात् २।) रु० में दी जाती है! पुस्तक में दो तिरङ्गे, एक दुरङ्गा और चार रङ्गीन चित्र हैं!!

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

उपयोगी चिकित्सा

[ले० प्रोफ़ेसर (कविराज) पं० धर्मानन्द जी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य]

इस महत्वपूर्ण पुस्तक की एक प्रति प्रत्येक सद्गृहस्थ के यहाँ होनी चाहिए। इस पुस्तक को आद्योपान्त एक बार पढ़ लेने से फिर आपको डॉक्टरों की ख़ुशामदें न करनी होंगी—आपके घर के पास तक बीमारियाँ न फटक सकेंगी। इस पुस्तक में रोगों की उत्पत्ति का कारण, उसकी पूरी व्याख्या, उनसे बचने के उपाय तथा उसके इलाज दिए गए हैं। रोगी की परिचर्या किस प्रकार करनी चाहिए, इसकी भी भरसक व्याख्या आपको मिलेगी। स्त्रियों के लिए तो यह पुस्तक वास्तव में बड़े काम की है। पृष्ठ-संख्या लगभग २२५; सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १॥) रु०; स्थायी ग्राहकों के लिए १=)

—निर्मला—

[ले० सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्रीयुत प्रेमचन्द जी, बी० ए०]

इस मौलिक उपन्यास में लब्धप्रतिष्ठ लेखक ने समाज में बहुलता से होने वाले वृद्ध-विवाहों के भयङ्कर परिणामों का एक वीभत्स एवं रोमाञ्चकारी दृश्य समुपस्थित किया है। जीर्ण-काय वृद्ध अपनी उन्मत्त काम-पिपासा के वशीभूत होकर किस प्रकार प्रचुर धन व्यय करते हैं; किस प्रकार वे अपनी वामाङ्गना षोडशी नवयुवती नवल-लावण्य-सम्पन्ना के कोमल अरुण वर्ण अधरों का सुधा-रस शोषण करने की उद्भ्रान्त चेष्टा में अपना विष उसमें प्रविष्ट करके, उस युवती का नाश करते हैं; किस प्रकार गृहस्थी के परम पुनीत प्राङ्गण में रौरव-काण्ड प्रारम्भ हो जाता है, और किस प्रकार ये वृद्ध अपने साथ ही साथ दूसरों को लेकर डूब मरते हैं; किस प्रकार उद्भ्रान्ति की प्रमत्त सुखद कल्पना में उनका अवशेष ध्वंस हो जाता है—यह सब इस उपन्यास में बड़े मार्मिक ढङ्ग से अङ्कित किया गया है। यह वही क्रान्तिकारी उपन्यास है, जो गत वर्ष धारावाही रूप से 'चाँद' में प्रकाशित हो चुका है और जिसने एक बार ही समाज में खलबली पैदा कर दी है। पुस्तक बहुत साफ़ छपी है, सुन्दर जिल्द से मण्डित है; फिर भी प्रचार की दृष्टि से इसका मूल्य केवल २॥) रक्खा गया है; स्थायी ग्राहकों से १॥।=) मात्र !

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

छप गई ! प्रकाशित हो गई !!

काम-विज्ञान सम्बन्धी अनमोल (सचित्र) पुस्तक

दाम्पत्य जीवन

[लेखिका—श्रीमती सुशीलादेवी जी निगम, बी० ए०]

इस पुस्तक के सम्बन्ध में प्रकाशक के नाते हम केवल इतना ही कहना काफ़ी समझते हैं कि ऐसे नाज़ुक विषय पर इतनी सुन्दर, सरल और प्रामाणिक पुस्तक हिन्दी में अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। इसकी सुयोग्य लेखिका ने काम-विज्ञान (Sexual Science) सम्बन्धी अनेक अङ्गरेज़ी, हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी तथा गुजराती भाषा की पुस्तकें मनन करके इस कार्य में हाथ लगाया है। जिन अनेक पुस्तकों से सहायता ली गई है, उनमें से कुछ मूल्यवान् और प्रामाणिक पुस्तकों के नाम ये हैं :—

(1) Motherhood and the Relationship of the Sexes by *C. Gasquoine Hartley* (2) Confidential Talks with Husband and Wife by *Layman B. Sperry* (3) Youth's Secret Conflict by *Walter M. Gallichan* (4) The Threshold of Motherhood by *R. Douglas Howat* (5) Radiant Motherhood (6) Married Love and (7) Wise Parenthood by *Dr. Marie Stopes*

जिन महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डाला गया है, उनमें से कुछ ये हैं :—

(१) सहगमन (२) ब्रह्मचर्य (३) विवाह (४) आदर्श-विवाह (५) गर्भाशय में जल-सञ्चय (६) योनि-प्रदाह (७) योनि की खुजली (८) स्वप्न-दोष (९) डिम्ब-कोष के रोग (१०) कामोन्माद (११) मूत्राशय (१२) जननेन्द्रिय (१३) नपुंसकत्व (१४) अति-मैथुन (१५) शयन-गृह कैसा होना चाहिए ? (१६) सन्तान-वृद्धि-निग्रह (१७) गर्भ के पूर्व माता-पिता का प्रभाव (१८) मनचाही सन्तान उत्पन्न करना (१९) गर्भ पर तात्कालिक परिस्थिति का असर (२०) गर्भ के समय दम्पति का व्यवहार (२१) यौवन के उतार पर स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध (२२) रबर-कैप का प्रयोग (२३) माता का उत्तरदायित्व आदि-आदि सैकड़ों महत्वपूर्ण विषयों पर—उन विषयों पर, जिनके सम्बन्ध में जानकारी न होने के कारण हज़ारों युवक-युवतियाँ बुरी सोसाइटी में पड़कर अपना जीवन नष्ट कर लेती हैं—उन महत्वपूर्ण विषयों पर, जिनकी अनभिज्ञता के कारण अधिकांश भारतीय गृह नरक की अग्नि में जल रहे हैं; उन महत्वपूर्ण विषयों पर, जिनको न जानने के कारण स्त्री पुरुष से और पुरुष स्त्री से असन्तुष्ट रहते हैं—भरपूर प्रकाश डाला गया है। हमें आशा है, देशवासी इस महत्वपूर्ण पुस्तक से लाभ उठाएँगे। पृष्ठ-संख्या लगभग ३५०, तिरङ्गे Protecting Cover सहित सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २॥) रु०; 'चाँद' तथा पुस्तक-माला के स्थायी ग्राहकों से १॥।=) मात्र ! पुस्तक सचित्र है !!

☞ केवल विवाहित स्त्री-पुरुष ही पुस्तक मँगावें !

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

नाम ही से पुस्तक का विषय इतना स्पष्ट है कि इसकी चर्चा करना व्यर्थ है। एक-एक चुटकुले पढ़िए और हँस-हँस कर दोहरे हो जाइए, इस बात की गारण्टी है। एक विशेषता इस पुस्तक में यह है कि सारे चुटकुले विनोदपूर्ण और चुने हुए हैं। कोई भी चुटकुला पढ़कर अगर दाँत बाहर न निकल पड़ें तो मूल्य वापस। बच्चे-जवान, बड़े-बूढ़े—सभी समान आनन्द उठा सकते हैं—यह इस

विदूषक

[लेखक—श्री० कैलाशचन्द्र जी भटनागर, एम० ए०]



[लेखक—श्री० कैलाशचन्द्र जी भटनागर, एम० ए०]

चाँद प्रकाशक कार्यालय प्रयाग

पुस्तक की एक विशेष विशेषता है। पृष्ठ-संख्या लगभग १२५, काग़ज़ ४० पाउण्ड एण्टिक, छपाई-सफ़ाई दर्शनीय, पुस्तक सजिल्द है, ऊपर सुन्दर Protecting Cover चढ़ा है, फिर भी मूल्य क्या? केवल १) रु०; स्थायी तथा 'चाँद' के ग्राहकों से ।।।) मात्र !!!

नवीन संस्करण ! संशोधित संस्करण !!

अबलाओं का इन्साफ़

नवीन संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण के तिरङ्गे

Protecting Cover का नमूना

स्मरण रहे, यह उसी क्रान्तिकारी, पुस्तक का नया संस्करण है, जिसने मारवाड़ी-समाज को तिलमिला दिया था, और जिसके विरुद्ध इतना प्रभावशाली आन्दोलन उठाया गया था, कि पुस्तकें

मोटाई पहिले संस्करण से दूनी, मू० ३) रु०, स्थायी ग्राहकों से २।) !



व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

ख़रीद-ख़रीद कर जला दी गई थीं !!

पर जब से गोविन्द-भवन जैसी नारकीय संस्था का इसने भण्डाफोड़ किया तब से मारवाड़ी-समाज का सारा जोश ठण्डा हो गया और आज वह स्वयं इसका प्रचार चाह रहा है। अनेक प्रतिष्ठित मारवाड़ी-भाइयों के अनुरोध से ही यह नवीन संस्करण प्रकाशित किया गया है। इस संस्करण की विशेषता यह है कि नवीन संशोधन के बाद मारवाड़ी-समाज के लिए सीमित न कर, पुस्तक का क्षेत्र और भी विस्तृत कर दिया गया है ! प्रत्येक समाज इससे समान लाभ उठा सकता है।

Printed and Published by R. SAIGAL—Editor—at The Fine Art Printing Cottage
Twenty-eight, Elgin Road Allahabad.

realpatidar.com

This PDF you are browsing now is in a series of several scanned documents by the Centre for the Study of Developing Societies (CSDS), Delhi

CSDS gratefully acknowledges the enterprise of the following savants/ institutions in making the digitzation possible:

Historian, Writer and Editor Priyamvad of Kanpur for the Hindi periodicals (Bhavishya, Chand, Madhuri)

Mr. Fuwad Khwaja for the Urdu weekly newspaper Sadaqat, edited by his grandfather and father.

Historian Shahid Amin for faciliating the donation.

British Library's Endangered Archives Programme (EAP-1435) for funding the project that involved rescue, scan, sharing and metadata creation.

ICAS-MP and India Habitat Centre for facilitating exhibitions.

Digital Upload by eGangotri Digital Preservation Trust.

CSDS

centre for the study of developing societies

BRITISH LIBRARY